धर्मशास्त्र साहित्य में अपराध एवं दण्ड विधान

(मनु तथा याज्ञवल्क्य के विशेष सन्दर्भ में)

डॉ. (श्रीमती) विभा

धर्मशास्त्र साहित्य में अपराध एवं दण्ड विधान

(मनु तथा याज्ञवल्क्य के विशेष सन्दर्भ में)

डॉ० (श्रीमती) विभा

एम०ए०, बी०एड०,

साहित्याचार्य, पी-एच०डी०

संस्कृत ग्रन्थागार

दिल्ली

प्रकाशक :
संस्कृत ग्रन्थागार
४६, संस्कृत नगर
से० १४, रोहिणी, दिल्ली-८५
फोन - ७८६२१८३

वितरक
परिमल पब्लिकेशन्स
27/28, शक्ति नगर,
दिल्ली-110007
फोन - ७४४ ५४५६
E-Mail : parimal@ndf.vsnl.net.in

प्रथम संस्करण 2002
मूल्य – रू0 200.00

लेजर टाईपसेटर :
ए-वन ग्राफिक्स
एक्स-4, गली नं० 2, ब्रह्मपुरी,
दिल्ली-110053

मुद्रक :
हिमांशु प्रिन्टर्स
मेन यमुना विहार रोड़
दिल्ली ११००९२

समर्पण

जिनके स्नेहिल शुभाशीज से लेखिका को संस्कृत-अध्ययन से इस ग्रन्थ-लेखन
की महती सहायता एवं प्रेरणा पाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ,
उन हिन्दी-संस्कृत साहित्य एवं प्राच्य विद्या के मर्मज्ञ विद्वान्
प्रख्यात लेखक, कवि तथा समीक्षक, पूज्य पिता-
'साहित्यवारिधि' डॉ० कैलाश नाथ द्विवेदी डी०लिट्०
(प्राचार्य, म०प्र० स्नातकोत्तर महाविद्यालय, कोंच-जालौन)
के
कर कमलों में सादर-सश्रद्ध
समर्पित।

— विभा

प्राक्कथन

सर्वाङ्ग समृद्ध संस्कृत साहित्य में बहुआयामी सामाजिक जीवन कालोकधर्मी यथार्थ चित्रण प्राप्त होता है। इसके विशाल धर्मशास्त्र साहित्य में पुरातन भारतीय जन-जीवन भी अनस्पृष्ट नहीं रहा है, जिसमें मानव सुलभ विविध सामाजिक अपराधों के साथ ही तत्सम्बन्धित दण्डों की मनु, याज्ञवल्क्य, बृहस्पति, नारद, पराशर, गौतम, कौटिल्य आदि धर्मशास्त्रियों ने सुन्दर मीमांसा की है।

इस दृष्टि से धर्मशास्त्र साहित्य में मनु तथा याज्ञवल्क्य के स्मृति ग्रन्थ अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं।

विविध सामाजिक अपराध तद्युगीन धार्मिक एवं सामाजिक मान्यताओं के साथ राजनियमों (विधि या कानून) द्वारा निर्धारित दण्डों से नियंत्रित होते थे इसका भी सुन्दर प्रतिपादन धर्मशास्त्रियों ने अपनी मौलिक चिन्तना के द्वारा अपने धर्मशास्त्रीय ग्रन्थों में किया है। संस्कृत धर्मशास्त्र में जितना स्मृति साहित्य विशेषतः मनु और याज्ञवल्क्य स्मृति सामाजिक अपराधों एवं तत्सम्बन्धित दण्डों के प्रति सजग और सचेष्ट दृष्टिगत होता है, उतना साहित्य का कोई भी अंग सामाजिक सुधार की दिशा में सचेष्ट नहीं है। अतः "धर्मशास्त्र साहित्य में अपराध एवं दण्ड विधान" (मनु तथा याज्ञवल्क्य के विशेष संदर्भ में) विषय पर मौलिक समीक्षण कार्य सम्बन्ध ी मेरा यह प्रस्तुत लघु प्रयास है।

प्रस्तुत ग्रन्थ के विवेच्य विषय का चयन और इस पर कार्य करने में मुझे अनवरत प्रेरित-प्रोत्साहित किया मेरे पूज्यपिता "डॉ० कैलाश नाथ द्विवेदी, प्राचार्य, म०प्र० महाविद्यालय, कोंच (जालौन) (उ०प्र०) ने तथा आत्मीयतापूर्वक सुयोग्य मार्गनिर्देशन किया, विद्वद्वर डॉ० पूरन सिंह निरंजन, संस्कृत प्राध्यापक, डी०वी० कालेज, उरई (जालौन) (उ०प्र०) ने— एतदर्थ इनके प्रति हार्दिक कृतज्ञता सादर ज्ञापित है। विवेच्य सामग्री को प्रयाग, वाराणसी, वनस्थली, कानपुर, अजीतमल आदि विश्वविद्यालय-महाविद्यालय ग्रन्थालयों से संजोने में मेरे अग्रज डॉ० कपिल देव द्विवेदी, और श्री अरुण देव, अनुज चिं० प्रणव देव, के अतिरिक्त भाभी श्रीमती डॉ० मीरा द्विवेदी, (संस्कृत प्राध्यापिका, वनस्थली विद्यापीठ) ने आत्मीयता पूर्वक जो अथक परिश्रम किया है, इसे धन्यवाद की औपचारिकता से हल्का नहीं करना

चाहती। पतिदेव श्री कौशल किशोर शुक्ल, इलाहाबाद ने गृहस्थी के दायित्वों से मुझे मुक्त रखा और मेरी ममतामयी माँ सौ. कुसुमा देवी ने नन्हें विभु और विभूति के लालन-पालन का गुरूतम दायित्व संभालते हुए गृहकार्यों से बचाकर मुझे शोधकार्य करने का यह सुअवसर प्रदान किया, जिसके लिए मैं उनकी सदैव ऋणी रहूंगी। श्री सुनील श्रीवास्तव, कोंच ने तत्परतापुर्वक टंकण कार्य किया-एतदर्थ इन्हें धन्यवाद देती हूँ। यदि कहीं टंकण सम्बन्धी त्रुटियाँ रह गई हों तो प्रबुद्ध पाठक गण उन्हें शुद्ध रूप में कृपया ग्रहण करें।

यद्यपि इस विषय पर प्रारम्भिक कुछ कार्य समग्र धर्मशास्त्र को दृष्टि में रखकर डॉ० प्रतिभा त्रिपाठी, डॉ० साधना शुक्ला, डॉ० हरिहरनाथ त्रिपाठी, डॉ० वाचस्पतिशर्मा आदि ने अपनी अपनी दृष्टि से किया है, तथापि मनु और याज्ञवल्क्य स्मृति परविशेष शोधात्मक दृष्टि इस सन्दर्भ में रखकर तुलनात्मक मौलिक अध्ययन करने का मेरा यह विनम्र प्रयास है।

आशा है, नीर-धीर विवेकी विद्वज्जन प्रस्तुत ग्रन्थ के दोषों पर ध्यान न देकर उदारतापूर्वक इसकी उपादेयता एवं गुणवत्ता को आत्मीयता पूर्वक ग्रहण करेंगे।

"हंसो हि क्षीरमादत्ते तन्मिश्रं वर्जयत्यः।"

यदि विद्वज्जनों और सामान्य पाठक सामाजिकों को मेरा यह सारस्वत प्रयास किञ्चिन्मात्र भी उपादेय लगा तो मैं अपने इस श्रमसाध्य लघु प्रयास को सर्वथा सार्थक समझूँगी।

विद्वदाराधिका,
विभा
(श्रीमती विभा)

प्राचार्य निवास, कोंच (जालौन) उ०प्र०
श्रावण पूर्णिमा (रक्षाबन्धन) सं० 2052
दिनांकः 10 अगस्त, 1995 ई०

विषयानुक्रम

भूमिका (विषय-प्रवेश)

भारतीय संस्कृति समस्त संसार में जिन महत्वपूर्ण उपादानों से समस्त संसार में समादृत होकर गौरवान्वित है, उनमें धर्म का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण है। वैदिक काल से ही धर्म का व्यापक स्परूप ऋत के रूप में सुपरिचित एवं सर्वमान्य रहा है। वैदिक वाङ्मय में अधर्म से बचने के लिए अपराध एवं दण्ड का विवेचन अत्यन्त सूक्ष्म है, किन्तु परिवर्तित धर्म सूत्रों एवं स्मृति ग्रन्थों में दण्ड व्यवस्था का स्वरूप अत्यन्त स्पष्ट है तथा अपराधों का भी वैज्ञानिक वर्गीकरण करते हुये उनके लिये पृथक्-पृथक् दण्ड व्यवस्था निर्धारित की गयी है।

धर्म सूत्रों मुख्यतः चार हैं जो इनके निर्माता महर्षियों के नाम से निम्नलिखित सुप्रसिद्ध है।

(1) आपस्तम्ब धर्म सूत्र. (2) गौतम धर्म सूत्र.

(3) बौधायन धर्म सूत्र. (4) विष्णु धर्म सूत्र.

धर्मसूत्रों में स्मृति को धर्म शास्त्र कहा गया है। जैसा कि गौतम धर्म सूत्र में प्रतिपादित किया गया है—

तस्माद्य व्यवहारो वेदो धर्मशास्त्राण्यङ्गान्युपवेदाः पुराणम्।

(गौ. ध. सू. 2/2/19)

धर्मशास्त्र साहित्य में स्मृतियों का स्थान एवं महत्व :

स्मृतियों की संख्या विवादास्पद है। गौतम केवल मनु का उल्लेख करते हैं। बौधायन ने सात, वशिष्ठ ने पाँच, तथा आतस्तम्ब ने दस स्मृतिकारों का उल्लेख किया है।

मनुस्मृति में छः और याज्ञ० स्मृति में बीस स्मृतिकारों का उल्लेख पाया जाता है। पाराशर ने उन्नीस स्मृतिकारों का परिगणन करते हुये छः नाम और जोड़ दिये गये हैं। विश्वरूप ने दस नाम और जोड़ दिये। स्मृति चन्द्रिका, हेमान्द्रि एवं सरस्वती विलास ने उपस्मृतिओं की संख्या छत्तीस बतायी है। यही संख्या भविष्य पुराण में भी मिलती है।[3] बुद्ध-गौतम स्मृति में सत्तावन स्मृतियों का उल्लेख है। निर्णय

सिन्धु और वीरमित्रोदय में यह संख्या सौ तक पहुंच जाती है।[4] इन सभी स्मृतियों में समाज के धार्मिक, आर्थिक नैतिक, आध्यात्मिक और राजनैतिक पक्षों का व्यावहारिक दृष्टि से विशद एवं समीचीन विवेचन की दृष्टि से ही मनु और याज्ञवल्क्य स्मृति ही विशेष महत्वपूर्ण मानी जाती है। स्मृति श्रुति (वेद) पर ही आधारित मानी जाती है।[5] वेदों पर आधारित होते हुए भी स्मृतियों में समकालीन सामाजिक सदाचारों तथा आचार व्यवहारों के नियमों के संकलन का प्रयास किया। उदाहरणार्थ-कलिवर्ज अट्ठावन निषेधों की सूची वैदिक विचारों का अपवाद प्रस्तुत करती है। ऐसी स्थिति में श्रुति, स्मृति-विरोध की स्थिति स्वाभाविक है। मीमांसकों ने श्रुति, स्मृति विरोध की स्थिति में श्रुति को सर्वमान्य वरीयता दी है। उनके अनुसार श्रुति का विषय धर्म, जबकि स्मृति के विषय अर्थ एवं काम है। अतः स्मृतियाँ उनकी दृष्टि में वेदों की अपेक्षा अप्रामाणिक, किन्तु मीमांसकों ने अपने-अपने मन्तव्यों में धर्म को मात्र संकुचित रूप में त्रतीय विधि से ही सम्बद्ध किया, जबकि धर्म के व्यापक अर्थ को गृहण करने पर स्मृतियाँ विशेषतः मनु एवं याज्ञवल्क्य स्मृति व्यक्ति एवं समस्त समाज के व्यावहारिक धर्म का सुदृढ़ आधार बनी। परिणामतः सम्पूर्ण धर्मशास्त्र साहित्य में व्यावहारिक दृष्टि से स्मृतियों का अधिक महत्वपूर्ण स्थान है।

पाश्चात्य विद्वान् मैन के मतानुसार— "श्रुति का कोई वैधानिक महत्व नहीं है। विधान में स्मृतियाँ ही मान्य हैं।" सुप्रसिद्ध विद्वान् जौली भी मानते हैं कि "श्रुतियाँ विधि की अपेक्षा आचार के लिए अधिक महत्वपूर्ण है। समाज को परम्परा रीति-रिवाज, आचार, व्यवहार एवं सदाचार को संहितावद्ध करने में स्मृतियों में श्रुति की परम्परा का समन्वय करने का प्रयास किया है।"[6]

हमारे भारतीय चिन्तकों ने चरित्र तथा लोकाचार का धर्मशास्त्र के साथ विरोध पाने पर धर्मशास्त्र को ही प्रमाण स्वरूप मानकर स्मृतियों की महत्ता प्रतिपादित की है। मनु और याज्ञवल्क्य दोनों ने धर्म, अर्थ, तथा काम तीनों पुरुषार्थों का समान महत्व दिया है।[7] साथ ही मनु ने स्थानीय सदाचार एवं सार्वभौम विधि को ही समान महत्ता प्रदान की है। अतः समस्त धर्मशास्त्र साहित्य में निर्विवाद रूप से स्मृतियों में विशेषतः मनु एवं याज्ञवल्क्य का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है।

धर्मशास्त्र सम्बन्धी विविध ग्रन्थों में मानव "धर्मशास्त्र अथवा मनुस्मृति अत्यन्त महत्वपूर्ण एवं सबसे प्रमुख तथा लोकप्रिय है। इस कृति को मनु की रचना बताया जाता है, किन्तु अपने वर्तमान परिवर्धित रूप में यह भृगु की रचना बतायी जाती है। पाश्चात्य विद्वानों द्वारा प्रतिपादित कतिपय उल्लेखों से मनुस्मृति की प्राचीनता एवं प्रमाणिकता प्रायः प्रतिपादित हुयी है। व्युहलर की अवधारणा है कि

"वर्तमान मानव धर्मशास्त्र अथवा मनुस्मृति मानव सूत्रकरण नाम से अवधीयमान सूत्रग्रन्थों की विद्या के किसी मौलिक ग्रन्थ पर आधृत पद्यवद्ध रचना है। मानव सूत्रकरण कृष्ण यजुर्वेद संस्करण पर प्रवर्तित मैत्रायणी शाखा का एक उपविभाग है। स्वयं मानव धर्मशास्त्र अपना मनुस्मृति का कर्तित्व ब्रह्म से सम्बद्ध किया गया है। ब्रह्म से ही वह मनु तथा भृगु के द्वारा मनुष्यों तक पहुँची है। नारदस्मृति में मनु विरचित 1,00,000 पद्यों की एक स्मृति का उल्लेख हुआ है। जिसके पद्यों को घटाकर नारद ने 12,000 मार्कण्डेय ने 8,000 और भृगु के पुत्र सुमति ने 4,000 श्लोक कर दिये। इस विवरण से ऐसा प्रतीत होता है कि किसी मौलिक सूत्र के कितने ही संस्करण प्रति संस्करण होते रहे होंगे। इसी कारण सम्भवतः मनुस्मृति में धर्मशास्त्र विषयक कुछ विरोधी तत्त्व का भी समावेश मिलता है।

धर्मशास्त्र साहित्य में विधि के क्षेत्र में मनु सर्वप्राचीन प्रमाण भूत आचार्य हैं। मनु भी अनेक हुये हैं। बृद्ध मनु, और बृहद् मनु के उल्लेख प्राप्त होते हैं। मनुस्मृति के रचनाकार मनु की प्राचीनता का सर्वाधिक प्रमाण प्राप्त होते हैं। यास्क के निरुक्त तथा महाभारत,[11] कालिदास कृत रघुवंश,[12] शूद्रक[13] कृत मृच्छकटिक आदि प्राचीन साहित्य ग्रन्थों में मनु का उल्लेख मिलता है। कहा जाता है कि मनुस्मृति के वर्तमान पाठ में अन्य तीन वर्णों पर ब्राह्मणों के वर्चस्व के सम्बन्ध में अनेक निर्देश उपलब्ध होते हैं। अतः अनेक विद्वानों[14] की परिकल्पना है कि मनुस्मृति की रचना उस काल में हुयी थी जब भारत वर्ष में ब्राह्मण राजाओं का एक छत्र शासन था तथा असली शक्ति और सत्ता उनके हाथ में थी। भारतीय इतिहास में यह काल शुंगकाल से लेकर प्रथम शताब्दी ईसवी पूर्व के भारत में काव्य राजाओं के लगभग अर्द्ध शताब्दी तक के शासन की अवधि से सम्बन्धित किया जा सकता है। अतः मनुस्मृति का रचनाकाल प्रथम शताब्दी ईसवी से 300 ई०पू० निर्धारित किया जा सकता है।

मनुस्मृति की रचनाकाल की यह प्राचीनता इस तथ्य से भी पुष्ट होती है कि इसके प्राप्त पाठ में बारह अध्यायों के अन्तर्गत 2684 श्लोकों पर वर्णाश्रय धर्म, राजधर्म व्यवहारिक एवं अपराध विषयक प्रकरणों पर व शताब्दी ई० (825 से 900 ई० तक) मेधा तिथि, 12 वीं शताब्दी कुल्लूक भट्ट के अतिरिक्त गोविन्दराज, नारायण, राघवानन्द तथा नन्दन अधिकारी आचार्यों ने टीकायें लिखी हैं, जिनमें मेधा तिथि की टीका अत्यन्त प्राचीन एवं प्रसिद्ध तथा धर्मशास्त्र साहित्य में अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

मनुस्मृति की पुरातनकाल से भारतीय जनजीवन में व्याप्त लोकप्रियता एवं

महत्ता से प्रभावित होकर बर्मा, श्याम जावा (हिन्देशिया) आदि देशों में भी इसका प्रचार प्रसार हुआ और इसकी उपादेयता को संसार भर में स्वीकार किया गया है।

धर्मशास्त्र साहित्य में मनुस्मृति के बाद दूसरी महत्वपूर्ण स्मृति याज्ञवल्क्य स्मृति है, जिसमें आचार्य, व्यवहार, और प्रायश्चित के सम्बन्ध में एक एक करके कुल तीन अध्यय हैं। अन्य स्मृतियों की भांति याज्ञवल्क्य के भी समय निर्धारण की समस्या धर्मशास्त्र जगत में उलझी पड़ी है। प्रायः विद्धद्वर्ग की दृष्टि इसके रचनाकाल को निश्चित करने के लिये ऐतिहासिक शुंग शासनकाल (ई० की प्रथम-द्वितीय शताब्दी) के आस-पास ही ठहरती है, जिसमें प्रायः स्मृति साहित्य की रचना हुई। याज्ञवल्क्य स्मृति का निर्माण काल निर्धारण करने में अधोलिखित प्रमाण प्रस्तुत किये जा रहे हैं।

अन्तः साक्ष्यः

(1) याज्ञवल्क्य स्मृति में तैत्तिरीय ब्राह्मण के अनुसार ही नक्षत्रों का उल्लेख है। तथा उनका क्रय कृत्तिका में भरणी तक तैत्ति० ब्राह्मण जैसा निर्दिष्ट किया गया है।

(2) याज्ञवल्क्य स्मृति में (Zodical Signs) (राशिमाला सम्बन्धी चिह्नों से) का उल्लेख नहीं है।

(3) याज्ञवल्क्य स्मृति के 'सुष्ठे दून्दौ' की टीकाकार विश्वरूप ने जो व्याख्या की है, वह वैदिक काल के (Zodical Signs) के संदर्भ से शून्य है।

(4) याज्ञवल्क्य स्मृति में पतिवस्त्रधारी लोगों की दृष्टि को An evil men रूप में माना गया है।

उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर याज्ञवल्क्य स्मृति का समय ई० 100 के बाद ही प्रतीत होता है।

इसके अतिरिक्त बृद्ध याज्ञवल्क्य योग याज्ञवल्क्य तथा बृहद् याज्ञ० का भी नाम विद्यमान है। योग याज्ञवल्क्य 800 ई० के बहुत पूर्व विद्यमान थे। क्यों कि श्री वाचस्पति मिश्र (800 ए०) ने योग याज्ञ० का एक आधा छन्द उद्धृत किया है तथा अपरार्क (200-700 ए० डी०) ने भी उसी से उद्धरण किया है।

बाह्य प्रमाण

(1) लंकावतार सूत्र की गाथा (814-816) में याज्ञवल्क्य का उल्लेख किया गया है।

(2) व्याख्याकार विश्वरूप (700–1000 ए०डी०) के मध्य के किसी समय में इस स्मृति की रचना के कई शताब्दियों बाद हुआ प्रतीत होता है।

(3) डॉ० जैकॉबी के सिद्वान्त के अनुसार— गृह नक्षत्रों के पश्चात् सप्ताह के दिनों का नामकरण प्रथम ग्रीक लोगों ने प्रचलित किया, तत्पश्चात् उन्हीं से भारतीयों ने ग्रहण किया। इस प्रकार याज्ञवल्क्य स्मृति का समय दूसरी शती के बाद ही वे निर्धारित करते हैं।

(4) डॉ० जॉली (Jolly) के विचार से चूँकि याज्ञवल्क्य ग्रीक (Astrology) से पूर्ण परिचित प्रतीत होते हैं, अतः अपनी इसी कल्पना के आधार पर वे याज्ञवल्क्य स्मृति का काल 400 ए०डी०निर्धारित करते हैं।

समीक्षा

उपर्युक्त बाह्य तथ्यों में से पाश्चात्य विद्वानों की धारणायें एवं सिद्धान्त भ्रम पूर्ण है। जो पूर्वाग्रही दृष्टिकोण से मुक्त नहीं है। भारतीय ज्योतिषशास्त्र ईसा की चतुर्थ शती के पूर्व ही यहाँ बहुत विकसित हो चुका था। डॉ० जॉली तथा जैकॉवी के सिद्धान्त के भ्रमपूर्ण आधार पर याज्ञवल्क्य स्मृति का वास्तविक रचनाकाल नहीं माना जा सकता है।

शुंग–शासनकाल तक प्रायः सभी स्मृतियों की रचना हो चुकी थी। महामहोपाध्याय डॉ० पी०वी० काणे भी इसी समय के आसपास ई० की प्रथम शताब्दियों या उसके कुछ पूर्व 300 ई०पू० तक याज्ञवल्क्य स्मृति का रचनाकाल मानते हुये लिखते हैं— "There is nothing to prevent is from hiding that extant smrit was composed during the first two conturies of the chirstian ere of even a little earlier."

(*History of Dharmshastra*, P.V. Kane)

अतः याज्ञवल्क्य स्मृति के निर्माण काल की सम्भावना 100 ई० पूर्व से लेकर 300 ई० तक में के मध्य की जानी चाहिये। मनुस्मृति जिसका रचनाकाल लगभग 200 ई० के मध्य माना जाता है, से याज्ञवल्क्य स्मृति की Phraseology प्रायः मिलती जुलती हैं तथा बहुत से सिद्वान्तों के प्रतिपादन में यह मनुस्मृति से प्रभूत मात्रा में प्रभावित जान पड़ती है। अतः उपर्युक्त तथ्यों को ध्यान में रखते हुये डॉ० कैलाशनाथ द्विवेदी के मतानुसार— याज्ञवल्क्य 200 ई० पू० के बाद 300 ई० तक

किसी समय में अपना वर्तमान स्वरूप ग्रहण कर चुके होंगे।[15]

मनुस्मृति की भाँति याज्ञवल्क्य स्मृति की महत्ता, प्राचीनता एवं लोकजीवन में उपादेयता इस तथ्य से पुष्ट होती है कि इस पर याज्ञवल्क्य मनुस्मृति के समान अनेक प्राचीन टीकायें आचार्यों ने लिखी। इन प्राचीन टीकाओं में आठवीं शताब्दी के आचार्य विश्वरूप की बालक्रीड़ा कल्याण के चालुक्य राजा विक्रमादित्य षष्ठ के सभा पण्डित एवं विद्वान् आचार्य विज्ञानेश्वर 120 ई० की मिताक्षरा, और अपरार्क (12 वीं शताब्दी का प्रथमार्द्ध) की आपारार्ककी याज्ञवल्क्यि धर्मशास्त्र निबन्ध टीका विख्यात है। इनमें भी आचार्य विज्ञानेश्वर की मिताक्षरा टीकासर्वाधिक प्रसिद्ध है, जो स्वयं में एक मौलिक रचना मानी जाती है। इस पर बैद्यनाथ पाय गुंडे (750 ई०) के पुत्र बालभट्ट (बालकृष्ण) ने बालम्भट्टीय या लक्ष्मी वैख्यान नाम की टीकालिखी है। कुछ विद्वान् इसे बैद्यनाथ की ही कृति मानते हैं। इसमें स्त्रियों के सम्पत्ति अधिकार पर अधिक बल दिया गया है।

याज्ञवल्क्य स्मृति तथा मनुस्मृति की तुलना

याज्ञवल्क्य और मनु दोनों स्मृतियों में अनेक समान एवं असमान तथ्यों के दर्शन होते हैं, जिन्हें हम इस प्रकार प्रस्तुत कर सकते हैं।

मनु एवं याज्ञवल्क्य दोनों स्मृतियों में समानता

(1) याज्ञवल्क्य स्मृति तथा मनुस्मृति दोनों की Phraseology में घनिष्ठ समानता दृष्टिगोचर होती है।

(2) याज्ञवल्क्य स्मृति में मनु समृति के ही सिद्धान्तों के स्वरूप को प्रायः संकुचित (संक्षेपीकृत) करने का प्रयास किया गया है। याज्ञवल्क्य स्मृति में वे स्वयं के मौलिक सिद्धान्त नहीं है— वह मनु स्मृति से भिन्न नहीं हैं।

दोनों स्मृतियों में असमानता

(1) याज्ञवल्क्य स्मृति सृष्टि उत्पत्ति के सम्बन्धों में अपना कोई दृष्टिकोण प्रस्तुत नहीं करती, जबकि मनुस्मृति में सृष्टि के उद्‌भव पर भी विचार व्यक्त किया गया है।

(2) सामान्यतः मनुस्मृति ब्राह्मण को शूद्र लड़की से भी विवाह करने की अनुमति देती है, जबकि याज्ञवल्क्य स्मृति के अनुसार ब्राह्मण को शूद्रा से विवाह करना अप्रशंसनीय होने से वर्जित किया गया है।

(3) मनु स्मृति नियोग, क्रिया की निन्दा करती है, जबकि याज्ञवल्क्य स्मृति नहीं है।

(4) इसी प्रकार जुआ खेलने की मनुस्मृति में निन्दा की गयी है, याज्ञ० स्मृति में नहीं।

(5) याज्ञवल्क्य स्मृति, विनायक शान्ति (जो मानव गृह्य रूप से ग्रहण किया है) गृहशान्ति तथा (जल, अग्नि से शुद्ध होने की) कठिन परीक्षाओं को समाविष्ट किये हैं, जबकि मनुस्मृति प्रथम दो (विनायक शान्ति गृहशांति) का उल्लेख नहीं करती है। उसमें तो केवल दो कठिन परीक्षाओं का उल्लेख है।

(6) याज्ञवल्क्य स्मृति की भाषा–शैली तथा नियमों की क्रमबद्धता मनुस्मृति की अपेक्षा अधिक सुन्दर तथा उपयुक्त है।

समीक्षा

यद्यपि दोनों स्मृतियों में कुछ साम्य होते हुए भी अनेक (तथ्यों) दृष्टिकोणों के अनुसार विभिन्नता दृष्टिगोचर होती है। जिसमें याज्ञवल्क्य स्मृति, मनु–स्मृति की अपेक्षा अधिक विकसित अवस्था को व्यक्त करती है। जैसा कि— म०म उपाध्याय डॉ० पी०वी० काणे ने भी अपना मत स्पष्ट किया है।

"Manu and yagn, differ on several points and yagn, represents a more advanced state of thouhgt than Manu."

(History of Dharmsastra)

इस प्रकार संस्कृत के धर्म शास्त्र साहित्य में महत्त्वपूर्ण इन दोनों स्मृतियों में अनेक दृष्टियों से विवेच्य विषयगत समानता–असमानता होते हुए भी अर्वाचीन आदर्श सामाजिक जीवन पद्धति निर्धारित करने की व्यापक दिशा में इन दोनों स्मृतियों की उपादेयता एवं महत्ता निर्विवाद एवं असंदिग्ध ही है। अतः वर्तमान विविध सामाजिक सन्दर्भों विशेषतः विद्यमान सामाजिक अपराध एवं तत्सम्बन्धित दण्ड विधान का अनुसन्धान पूर्ण तुलनात्मक अध्ययन इन दोनों स्मृतियों के आधार पर करना अत्यन्त समीचीन हैं।

प्रस्तुत ग्रन्थ की संक्षिप्त पृष्ठ भूमि :

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में भूमिका के अन्तर्गत विषय प्रवेश में संस्कृत धर्मशास्त्र साहित्य में स्मृतियों का महत्व, मनु एवं याज्ञवल्क्य स्मृति का स्थान, मनु स्मृति एवं

याज्ञवल्क्य स्मृति का समय निर्धारण, अनुसन्धानात्मक दृष्टि से करने के पश्चात् प्रथम अध्याय में मनुस्मृति के सामाजिक प्रतिपाद्य विषय के अन्तर्गत सामाजिक एवं पारिवारिक विविध मानवीय सम्बन्ध, वर्णाश्रम व्यवस्था. संस्कार, तथा आचार सम्बन्धी धार्मिक एवं सांस्कृतिक मान्यताओं में (सत्य, अकायता, अचौर्य, अहिंसा, संयम, अवैर्य, सहरवान-पान, आहार-विहार, दुराचारी की निन्दा आदि पर विचार करते हुए विविध सामाजिक अपराधों) ब्राह्मण गुरु आदि की हत्या, सुरापान, स्तेय, चोरी करना, व्यभिचार, बलात्कार, अपहरण, भोजन, में विष मिलाना, फसल या खलिहान में आग लगाना आदि पर विचार करते हुये इनसे सम्बन्धित विविध आर्थिक, शारीरिक, निग्रह निर्वासन, आदि दण्डों की गवेक्षणा की गयी है।

द्वितीय अध्याय, के अन्तर्गत याज्ञवल्क्य स्मृति के सामाजिक प्रतिपाद्य विषय, सामाजिक सांस्कृतिक तथा धार्मिक चेतना के साथ इसके और मनुस्मृति के परिप्रेक्ष्य में निरूपित विविध अपराध एवं तद्सम्बन्धित दण्डों का तुलनात्मक विवेचन किया गया है।

तृतीय अध्याय, में मनु एवं याज्ञवल्क्य द्वारा निरूपित क्रोध प्रेरित कायिक अनेक अपराधों (हाथ से किसी के शरीर पर दण्ड प्रहार, पाद प्रहार, थूक देना, केश पकड़ना, गाली देना अंगभंग करना, आदि) की विवेचना करते हुये तद् सम्बन्धित दण्डों की अनुसंधान पूर्ण विवेचना की गयी है।

चतुर्थ अध्याय, में मनु और याज्ञवल्क्य द्वारा निरूपित क्रोध प्रेरित कायिकविविध हिंसा, अपराध (प्राण हत्या, कुंये या तालाब या भोजन में विष मिलाना) घर में आग लगाना आदि से सम्बन्धित दण्डों की तुलनात्मक शोध पूर्ण समीक्षा की गयी है।

पंचम अध्याय, में सामाजिक नियमों के उल्लंघन एवं विभिन्न धार्मिक अपराधों ब्राह्मण के स्वर्ण की चोरी, ब्राह्मण को पीड़ित करना, देव मंदिर या देवमूर्ति को तोड़ना, प्रपा भेदन, हरे वृक्ष काटना, पुरोहित का यज्ञ अधूरा छोड़कर चले जाना, यजमान द्वारा पुरोहित को दक्षिणा न देना, विवाह हेतु अन्य कन्या को दिखाकर अन्य के साथ विवाह करना आदि की मनु और याज्ञवल्क्य के आधार पर समीक्षा करते हुये तुलनात्मक दृष्टि से तद्सम्बन्धित दण्डों की शोधपूर्ण समालोचना की गयी है।

षष्ठ अध्याय, में काम प्रेरित विविध सामाजिक अपराधों कन्या दूज्णि अंगुल निक्षेपणादि, स्त्रीहरण, परस्त्री गमन, आद्रि तथा तद्सम्बन्धित दण्डों का अनुसंधान पूर्ण तुलनात्मक अध्यापन मनु एवं याज्ञवल्क्य स्मृति के आधार पर किया गया है।

सप्तम अध्याय, में विविध व्यावसायिक (आजीविका सम्बन्धी अनेक अर्थमूलक सामाजिक अपराधों-निषेपाहार, मिथ्या चिकित्सन, कुबीज विक्रय, स्वर्णबंचक, जुआ खिलाने वाले, जुलाहे का सूत हरण करने वाले, वैश्य या श्रेष्ठी का तुलादि परीक्षा में दोषी रूप से वाणिज्य करना, नविक के दोष से बस्तु नाश आदि तथा तद्सम्बन्धित दण्डों का अनुसंधान पूर्ण तुलनात्मक अध्ययन किया गया है।

अष्ठम अध्याय, में अन्तर्गत मोहमद प्रेरित विविध अपराधों मोहवश मिथ्यावाद (मुकद्दमा) चलाना, झूठ गवाही देने वाले, धान्य, स्वर्ण पशु सूत कपासादि हरण करने, वाले, स्त्री का मदिरा पान करना, ब्रह्मचारी का मैथुन एवं मदपान करना आदि पर मनु और याज्ञवल्क्य स्मृतियों के आधार पर विचार करते हुये तद्सम्बन्धित दण्डों की तुलनात्मक गवेषणा की गयी है।

नवम अध्याय, में मनु और याज्ञवल्क्य स्मृति में निरूपित सामाजिक जनों एवं राजपुरुषों द्वारा किये विविध सामाजिक अपराधों (निक्षेप का ऋण न लौटाना, निक्षेप का मिथ्या कथन, सामाजिक साक्ष्य के अभाव में मिथ्या साक्ष्य देना, राजपथ, सीमाविवाह, सीमा स्थल, के अपराध, उत्कोच (घूस) लेना, राजकोष की चोरी, राजपत्नी के साथ व्यभिचार, राजद्रोह, राज्य अधिकारियों द्वारा निरपराध लोगों को दण्ड देना आदि पर तुलनात्मक दृष्टि से विचार करते हुये तद्समन्धित दण्डों की गम्भीर गवेषणा की गयी है।

प्रस्तुत ग्रन्थ के अंत में प्रतिपाद्य निष्कर्षों का मूल्यांकन निरूपित करते हुये सामाजिक अपराध परक दूषित परम्पराओं में परिष्कार की दृष्टि से दोषमूलक विभिन्न अपराधों के उन्मूलन की दिशा में धर्म शास्त्र के अन्तर्गत विशेषतः मनुस्मृति एवं याज्ञवल्क्य स्मृति में निर्धारित दण्डों की व्यावहारिक उपयोगिता समाज एवं राष्ट्र के सुधार की दृष्टि से प्रतिपादित की गयी है।

सन्दर्भ

1. ऋग्वेद 10/190/1,3 ऋतं च सत्यं चाभीद्धात तपसोऽप्यजायत।
   ततो रात्र्यजायत ततः समुद्रो अर्णवः।।
   समुद्राक्ष्र्या वारध्यि संवत्सरो अजायत।
   अहोरात्राणि धाता यथा पूर्वमकल्पयत्।
   दिवं च पृथिव्यां चा इन्तरिक्षमपो स्वः।।
2. मनुस्मृति 2/10-- "श्रुतिस्तु वेदो विषयो धर्मशास्त्र तु वै स्मृतिः।"
3. अष्टादशपुराणेशु यानि वावत्र्यानिपुत्रक, तान्यालोच्य महावाहोतथा स्मृत्वन्तरेषु च मन्वाथिस्मृतयो

साश्य वाहनिशंतपरिकीर्तिताः, तातां वाक्यानि क्रमशः समालोच्य बधोमिते।
----भविष्य पुराणम्

4. प्राचीन भारत में राज्य एवं न्यायपालिका, डॉ० हरिहर नाथ त्रिपाठी, दिल्ली।---1965 पृष्ठ 100.
5. ''रघुवंश 212---श्रुतेरिवार्थन, स्मृतिरन्वगच्छत्।
6. उद्धृत---प्राचीन भारत में राज्य एवं न्यायपालिका, 1965 पृष्ठ 106.
7. धर्मार्थाबुध्यते श्रेयः कामार्थो धर्म एव च,
अर्थ एवेह वा श्रेयस्त्रिवर्ग इति तुस्थिति।।---मनुस्मृति-2/224.
8. प्रत्यहं देशदृष्टैश्च शास्त्रदृष्टैश्च हेतुभिः।
धर्म शाश्वत माश्रित्य कुर्यात्कार्य विनिर्णयम्।।---मनुस्मृति 8/8.
9. उद्धृत--- याज्ञवल्क्य स्मूतिः (भूमिका) सं० डॉ० कैलाशनाथ द्विवेदी मेरठ 1966 पृ० 4-5.
10. निरुक्त (यास्क)।
11. महाभारत (मानव धर्म शास्त्र) मनु का उल्लेख.
12. रघु० (प्रथम एवं चतुदर्श सर्ग) व 13. मूच्छ कटिक, (नवम् अंक).
14. मनुस्मृति (षष्ठ अध्याय) सम्पादक, डॉ० कृष्णकान्त त्रिपाठी, भूमिका (मनुस्मृति की ऐतिहासिकता) कानपुर 1990, पृष्ठ 2.
15. याज्ञवल्क्य स्मृतिः (व्यवहाराध्याये दाय-विभाग प्रकरणम्), प्रकाशक साहित्य भण्डार, सम्पादक डॉ० कैलाश नाथ द्विवेदी. मेरठ, 1966 (भूमिका, पृष्ठ 1-11)

प्रथम अध्याय

मनुस्मृति के सामाजिक प्रतिपाद्य विषय

मानवीय समाज से सम्बन्धित समस्त गतिविधयों का चित्रांकन और उन पर गम्भीरता पूर्वक चिन्तनोपरान्त उनका सम्यक् विश्लेषण प्राचीन भारतीय एवं संस्कृति की प्रमुख विशेषतायें रही हैं। मानव जीवन का प्रत्येक पहलू, जन्म से लेकर मृत्यू तक उसकी समस्त गतिविधियाँ प्राचीन मनीषियों की गम्भीर विवेचना के विषय रहे हैं।

प्राचीन भारतीय समाज के अभिजागर, ऋषियों द्वारा मानवीय मनोवृत्तियाँ अच्छी व बुरी तथा मनुष्य मात्र के सम्पूर्ण कार्यकलापों की सामाजिक अनुबन्धों में इस प्रकार गठित, अनुशासित और कुछ अंशों तक सीमित रखने का प्रयास किया गया, जिससे उसका जीवन सफल हो सके और मानवजीवन की सार्थकता अनुभव हो सके। सामाजिक जीवन की सफलता को ध्यान में रखते हुए एक विपुल साहित्य, धर्मशास्त्र की रचना हुई। इसी धर्मशास्त्र को स्मृति ग्रन्थों की संज्ञा दी जा सकती है।[1] स्मृतियों में जिन विषयों का वर्णन है उनमें तीन मुख्य है---(1) आचार (2) व्यवहार (3) प्रायश्चित्। आधार वर्ग में राजधर्म के प्रकारों का वर्णन है। व्यवहार वर्ग में राजधर्म, प्रशासन विधि (न्याय व्यवस्था) आदि विषयों की समावेश है और प्रायश्चित्त वर्ग में अपराधों तथा पापों से मुक्त होने के विविध उपाय हैं। इस प्रकार स्मृतियों में वे सभी आचार विचार और व्यवहार हैं जो वेदज्ञ आचारवान् पुरुषों की स्मृति और आचरण में पाये जाते थे।

संस्कृत धर्मशास्त्र में मनुस्मृति का मूर्धन्य स्थान है। इसमें प्रतिपाद्य आर्य जीवन के, सामाजिक आदर्शों को दृष्टि में रखकर स्मृतिकार ने समय-समय पर बदलती हुई सामाजिक परिस्थितियों एवं परिवेशों को ध्यान में रखते हुए, जिन नियमों व मानवीय सम्बन्धों की विवेचना की वे सर्वथा उल्लेखनीय है। इतना ही नहीं मनुस्मृति को तो हिन्दू-कानूनों को प्रतिष्ठित करने वाला महान ग्रन्थ माना जाता है। मनुस्मृति केवल धर्मशास्त्र ही नहीं अपितु एक ऐसा ग्रन्थ है जिसमें मनुष्य के सम्पूर्ण सामाजिक जीवन के उन सिद्धान्तों का विवेचन किया गया है जिन्हें सभी कालों एवं देशों (Time

and Space) में लागू किया जा सकता है। अर्थात् जिन का महत्व सर्वव्यापी है।[2]

सामाजिक एवं पारिवारिक विविध मानवीय सम्बन्ध :

तत्कालीन समाज के संचालन में जिन उपादानों का अवदानया, मुन ने उनकी सटीक व्याख्या की है। चाहे वे मानवीय सम्बन्ध हों या फिर पारिवारिक। यहाँ इन सम्बन्धों का विस्तृत विवेचन करना सर्वथा संगत व समीचीन है।

पुत्र— परिवार का आरम्भ विवाह से होता है, और पूर्णता सन्तति से। विवाह का एक मुख्य प्रयोजन सन्तानोत्पत्ति है। इसके बिना मनुष्य अपूर्ण है। और सच्चे अर्थों में परिवार का निर्माण नहीं करता। धर्मशास्त्रों में पुत्र पाने के लिए पुंसवन संस्कार किये जाने का उल्लेख मिलता है। पुत्र प्राप्ति की आतुरता के प्रधान कारण अमरत्व की प्राप्ति, मनोवैज्ञानिक भावनाओं, पुत्र द्वारा मिलने वाले सुख, और धार्मिक विश्वास आदि है। यद्यपि विभिन्न धर्मशास्त्र ग्रन्थों में, विभिन्न प्रकार के पुत्रों का उल्लेख मिलता है। उनकी संख्या नाम, तथा स्वरूप व स्वत्वों के सम्बन्धों में स्मृतिकारों में मतभेद है। स्मृतिकार मनु मेजिन विभिन्न प्रकार के पुत्रों का उल्लेख किया है, वे निम्नांकित हैं :—

(1) औरस : जो पुत्र विवाह संस्कार युक्त समान वर्ण की पत्नी से उत्पन्न किया जाय तो उसे औरस पुत्र कहते हैं।[3] यद्यपि आपस्तम्ब[4] और बौधायन[5] इसके लिये सवर्णा पत्नी ही आवश्यक मानते हैं। किन्तु मनुस्मृति इसका कोई बन्धन नहीं मानते हैं। औरस पुत्र की अपेक्षा अन्य पुत्रों को गौण माना गया है। मनुस्मृति के अनुसार पिता की सम्पत्ति का वास्तविक अधिकारी केवल वही है। वह गौण पुत्रों को बराबर का हिस्सा नहीं देगा, किन्तु भरण पोषण का खर्चा देगा।[6] आशय यह है कि औरस पुत्र, अपने पिता का सच्चे रूप में अकेला ही उत्तराधिकारी होता है।

(2) क्षेत्रज : जो पुत्र मरे हुए या नपुंसक या रोगी पति की स्त्री के द्वारा शास्त्र प्रतिपादित नियोग प्रथा से उत्पन्न होता है उसे क्षेत्रज पुत्र कहते हैं।[7] गौण पुत्रों में क्षेत्रज का स्थान बहुत ऊँचा है। गौतम, वशिष्ठ, नारद, विष्णु और यम इसे दूसरा स्थान देते हैं। लेकिन बौधायन, कौटिल्य, याज्ञवल्क्य, देवल, महाभारत और ब्रह्मपुराण के साथ-साथ मनु तीसरा स्थान देते हैं। आपस्तम्ब[8] ने इसका इस आधार पर निषेध किया कि क्षेत्रज पर उत्पादक का ही अधिकार है पति का नहीं। मनु इसकी घोर निन्दा करते हैं और इसको मानते हैं।[9] क्षेत्रज पुत्र पर अधिकार के सम्बन्ध में स्मृतिकारों में बहुत बिवाद हैं। आपस्तम्ब और बौधायन के अनुसार बीजी ही पुत्र का स्वामी होता है।

(3) दत्तक : जब माता-पिता अपने सदृश (समान जातीय) किसी मनुष्य को जल से संकल्प करके प्रीतिपूर्वक अपने पुत्र को देते हैं तब उसे दत्तक पुत्र कहते हैं।[10] गौतम और वशिष्ठ दत्तकपुत्र को आठवाँ, याज्ञवल्क्य ने सातवाँ, तथा कौटिल्य और नारद ने नवाँ स्थान दिया है। जबकि मनु ने इसे बारह पुत्रों में तीसरा स्थान देते हैं। मनु दत्तक पुत्रों को माता-पिता को कठिनाई देने वाला मानते हैं।

(4) कृत्रिम : जब गुण दोष के विचार में चतुर पुत्र के गुणों से युक्त अपने सदृश (समान-जातीय) बालक को अपना पुत्र बनाया जाय, तो कृत्रिम पुत्र कहलाता है।[11]

(5) गूढज : यदि किसी परिवार के पुत्र के बारे में ज्ञान नहीं है, कि वह किसके वीर्य से उत्पन्न हुआ है, तो उसे गूढोत्पन्न मान, उसी आर्या के पति का पुत्र माना जाता है।[12] वशिष्ठ, याज्ञवल्क्य तथा कौटिल्य ने भी इसका उल्लेख किया है। यह पुत्र प्रभावित व्यभिचार वाला नहीं, किन्तु संदिग्ध पितृत्व वाला माना जाता है।

(6) अपविद्ध : जब माता-पिता या दोनों में से कोई एक अपने पुत्र छोड़ दें और कोई दूसरा ग्रहण कर ले तो वह अपविद्ध पुत्र कहलाता है।[13]

(7) कानीन : कन्या अवस्था में पिता के घर उत्पन्न पुत्र कानीन पुत्र कहलाता है।[14] मनु के साथ साथ विष्णु, नारद तथा ब्रह्मपुराण कानीन पुत्र पर उस कन्या के साथ विवाह करने वाले का स्वामित्व स्वीकार करते हैं।

(8) सहोढ़ : बिना जाने अथवा जानकर जब गर्भवती कन्या से विवाह किया जाता है। तो उस पुत्र को सहोद पुत्र कहते हैं।[15] वह पुत्र विवाह करने वाले का होता है। सहोढ़ को पुत्रों की सुची में गूढ़ज के पश्चात् रखा गया है। क्योंकि गर्भवती कन्या के साथ विवाह लज्जास्पद माना गया है।

(9) क्रीतक : पुत्र बनाने के लिए जिस पुत्रको माता पिता से मूल्य देकर खरीद लिया जाता है तो वह क्रीत या क्रीतक पुत्र कहलाता है।[16]

(10) पौनभर्व : जब स्त्री पति द्वारा छोड़े जाने पर अथवा विधवा होने पर अपनी इच्छा से पुनः अन्य पुरुष की भार्या बनकर जब पुत्र उत्पन्न करती है, तो वह पुनर्भव कहलाता है।[17] विधवा विवाह को बुरा माने जाने से पुनर्भव पुत्र को औरस होते हुए भी बड़ी हीन स्थिति प्रदान की गई है।

(11) स्वयंदत्त : माता पिता से हीन अनाथ या बिना कारण माता द्वारा छोड़ा हुआ जो पुत्र स्वयं जाकर, किसी का पुत्र बनता है। तो वह उस लेने वाले का स्वयंदत्त

पुत्र होता है।[18]

(12) पारशव : जिस पुत्र को ब्राह्मण कामवश शूद्र से उत्पन्न करे उसको पारशव कहते हैं।[19] स्मृतिकारों ने ब्राह्मण के शूद्र के साथ विवाह की घोर निन्दा की है। इसी कारण पारशव या निषाद संज्ञा को 12 पुत्रों में बहुत नीचा स्थान दिया गया है। पारशव के सम्पत्ति के अधिकार को केवल कौटिल्य ने स्वीकार किया है। कौटिल्य के अनुसार पारशव को पैतृक सम्पत्ति का तीसरा हिस्सा प्राप्त होता है।[20]

(क) पुत्री का पुत्र व दौहित्र : औरस पुत्र के अभाव में पिता वंश चलाने के लिए जब लड़की के लड़के को अपना पुत्र बना लेता था, तब वह पुत्री का पुत्र कहलाता है। पिता अपनी भ्रातृहीन पुत्री का विवाह करने से पहले जामाता के साथ स्पष्ट रूप से यह समझौता कर लेता है कि इससे उत्पन्न सन्तान मेरी होगी। मनु की दृष्टि में पौत्र और दोहित्र में कोई अन्तर नहीं है।[21] मनु के साथ-साथ बौधायन कौटिल्य, याज्ञवल्क्य और महाभारत में उसे औरस के बाद दूसरा स्थान देते हैं। विष्णु, वशिष्ठ, गौतम, पुत्रों की सूची में इसे बहुत बाद में रखते हैं।

इस प्रकार मनु ने पुत्रों के बारह प्रकारों के साथ-साथ दौहित्र व पुत्रि का पुत्र के जन्म व उनके अधिकारों की विशद विवेचना की है।

(ख) माता : मनुस्मृति में माता को भी विशेष स्थान दिया गया है। मनु[22] के साथ-साथ याज्ञवल्क्य[23] ने भी माता को गुरु और पिता से ऊँचा स्थान दिया है। इस प्रकार परिवार में माता का सदैव ही गौरव पूर्ण स्थान स्मृतिकार ने प्रतिपादित किया है।

(ग) पुत्री : वंश विस्तार की दृष्टि से पुत्र की अपेक्षा अधिक महत्त्वपूर्ण होते हुए भी हिन्दू परिवार में कन्या को उपेक्षा की दृष्टि से देखा जा रहा है। इसका कारण इससे उत्पन्न होने वाली अनेक कठिनाईयाँ हैं। इसलिये उसके लिये योग्य वर ढूँढना, दहेज जुटाना, तथा उसके कौमार्य अवस्था में उसके शील का ध्यान रखना आदि प्रमुख हैं।

इतना होते हुये भी कन्या माता-पिता के अगाध प्रेम की पात्र रही हैं। मनु ने पुत्री को पुत्र के बराबर माना है।[24] नारद[25] और बृहस्पति[26] तो पुत्र के अभाव में पुत्री को पिता की सम्पत्ति का उत्तराधिकारी बताते हैं।

(घ) पति-पत्नी : आर्य जीवन में पति की प्रभुता लगातार बढ़ती गयी। कालान्तर में पति की प्रभुता लगातार बढ़ती गयी। सामान्य कारणों में पुरुष की शक्तिमत्ता और स्त्री में समर्पण की भावना मुख्य है। विशेष कारणों में पत्नी की

आर्थिक पराधीनता, पति की प्रभुता, स्त्री के सम्बन्ध में हीन विचार व उसकी अशिक्षा उल्लेखनीय है। मनु ने स्त्री को अपने पति की देवता तुल्य आराधना करने का मत दिया परन्तु पति को पत्नी का वध करने का अधिकार नहीं है। कौटिल्य के अनुसार पत्नी को अनुशासित करने के लिये प्रताड़ा जा सकता है।[27] मनु ने भी पति को पत्नी के अपराध करने पर सामान्य रूप से दण्डित करने का निर्देश दिया है।[28] यहाँ यह द्रष्टव्य है कि मनु ने पत्नी को कठोर दण्ड देना तो दूर उसके सिर पर प्रहार करना भी निषिद्ध बताया गया है। स्मृतिकारों ने पत्नी के कर्तव्यों का विस्तार से वर्णन किया है। इसमें पति सेवा और पतिव्रत को बहुत अधिक महत्व दिया है। साधारण कर्तव्यों में उसे गृहकार्यों में दक्ष होना चाहिये। उत्तर आचरण और संयम उसके लिये आवश्यक है। उसे सास ससुर की सेवा भी करनी चाहिये। पति के विदेश यात्रा में घर से बाहर होने पर भार्या के आचारण का संक्षेप में उल्लेख करते हुये, याज्ञवल्क्य ने उसके लिये निम्नलिखित बातों का निषेध किया है।[30] खेल, शरीर का सजाना, समाजों और उत्सवों में जाना, हँसना तथा परपुरुष के घर जाना। मनु ने अपुत्र व्यक्ति की सम्पत्ति पर पिता[31] तथा माता[32] का अधिकार बताकर पत्नी की उपेक्षा की है।

(ङ) कन्या : मनुस्मृति में कन्या के लिये उचित आचरण व उसके अधिकारों का विशद विवेचन हुआ है। आपस्तम्ब बौधायन[33] और गौतम[34] कन्या को दायद के रूप में नहीं मानते। नारद ने भी पुत्र के अभाव में दुहिता को ही दायद बताया है।

जो कन्या स्वयंवर रचाये वह पिता-माता या भाई का दिया हुआ अलंकार न ले। यदि लेती है तो वह चोर समझी जायेगी[35] कन्या के विवाह के सम्बन्ध में मनु बताते हैं कि बारह वर्ष की कन्या का विवाह तीस वर्ष के पुरुष से तथा आठ वर्ष की कन्या का विवाह चौबीस वर्ष के पुरुष से करना चाहिये।[36]

स्त्री व उसके साम्पत्तिक अधिकार :

वैदिक साहित्य में स्त्रियों को कुछ सीमा तक साम्पत्तिक अधिकार थे। पत्नी को "पारिणाय" अर्थात् घर की वस्तुओं की स्वामिनी कहा गया है। याज्ञवल्क्य ने संन्यास लेने का निश्चय करने पर एक पत्नी मैत्रेयी तथा दूसरी पत्नी कात्यायनी के साथ सम्पत्ति का संविभाग करने को कहा था। बौधायन ने स्त्री को दायकी अधिकारिणी नहीं माना है। बौधायन द्वारा स्त्रियों के अदायाद होने की घोषणा के बावजूद कुछ धर्म सूत्रों तथा स्मृतियों में माता, पत्नी, कन्यादि स्त्रियों को स्पष्ट रूप में दायद माना गया है।

स्त्री-धन के स्वरूप का परिचय वैदिक युग में विवाह के समय कन्या को दिये जाने वाले दहेज से हुआ। गौतम[37] ने सर्वप्रथम स्त्री धन का उल्लेख किया है। कौटिल्य[38] ने स्त्री धन के सम्बन्ध में सबसे पहले विस्तार पूर्वक व्यवस्था दी, और इसे दो प्रकार का बताया। (1) वृत्ति अर्थात् जीवन के साधन (भू-सम्पत्ति और सोना)। (2) अबन्ध्यन या शरीर में बाँधे जाने वाले आभूषण। स्मृतिकारों के समय स्त्री धन के भेद बढ़ने लगे। मनु के छः प्रकार के स्त्री धनों की गणना की है।[39]

(1) अध्यग्नि : विवाह संस्कार के समय पवित्र अग्नि के सम्मुख दिया गया धन।
(2) अध्यावाहनिक : पतिगृह आते समय दिया गया धन।
(3) प्रीतिदव्य : प्रीति कर्म में दिया गया धन
(4) भ्रातदक्त : भाई द्वारा दिया गया धन।
(5) मातृदक्त : माता द्वारा दिया गया धन
(6) पितृदक्त : पिता द्वारा दिया गया धन।

इसके अतिरिक्त मनु ने दो अन्य प्रकार के स्त्रीधनों का उल्लेख किया है। अन्ताधेय या विवाह के बाद मिली भेंट तथा द्यौतुक। नारद,[40] विष्णु,[41] और याज्ञवल्क्य[42] ने भी स्त्रीधनों का उल्लेख किया है। परन्तु विज्ञानेश्वर[43] और जीमूतवाहन[44] ने स्त्रीधन के स्वरूप को अपनी व्याख्याओं द्वारा क्रमशः विस्तृत और संकुचित बनाने का प्रयास किया विज्ञानेश्वर की स्त्रीधन की व्याख्या का मुख्य आधार याज्ञवल्क्य के "आधिवेद निकायं" च स्त्रीधनं परिकीर्तितम् में "आप" शब्द का प्रयोग है। मनु के अनुसार बिना पति की अनुमति के स्त्री अपनी सम्पत्ति का विक्रय नहीं कर सकती है।[45]

यद्यपि बाद में लेखकों ने स्वत्व की दृष्टि से स्त्रीधन को दो भागों में विभाजित कर दिया है।

गुरु-शिष्य : स्मृतिकार मनु ने अपने समय के समाज में गुरु को महत्वपूर्ण स्थान दिया है। क्योंकि वह अपरिपक्व बच्चों का भार अपने ऊपर लेकर उनको योग्य और उपयोगी नागरिक बनाता है। स्मृतिकार मनु के आधार पर वह माता-पिता से भी अधिक आदर का पात्र है, क्योंकि माता-पिता से हमें केवल पार्थिव शरीर ही मिलता है, जबकि गुरु से बौद्धिक उन्नति का विकास होता है। इसलिये गुरु आध्यात्मिक पिता के रूप में वर्णित हुआ है।[46] शिष्य के गुणों को वर्णित करते हुए मनु कहते हैं कि शिष्य गुरु का आदर करने वाला होना चाहिये यदि वह शय्या पर

बैठा हो तो उसे गुरु के आने पर झट-पट उठकर प्रणाम करना चाहिये।[47] स्मृतिकारों ने गुरु को उच्चचरित्र वाला आदर्श व्यक्ति बताया है। गुरु नित्य आलस्य रहित होकर निर्दिष्ट समय पर शिष्य को "पढ़ो" कहकर पढ़ने के लिये आज्ञा दे और पढ़ाना समाप्त होने पर "बस करो" कहकर अध्यापन बंद करें।[48] वेद पढ़ने के समय नित्य आदि और अंत में प्रणव (ओंकार) का उच्चारण करें। पाठ के पहले और पीछे ओंकार का उच्चारण न करने से पहले पढ़ा हुआ पाठ भूल जाता है। और आगे को पाठ याद नहीं होता।[48] मनु ने शिष्य के आचरण व गुरु के प्रति उसकी आदर भावना की दैनिक जीवन में आये व्यवहार की उद्धरण देते हुये विशद विवेचना की है।[49]

वर्ण व्यवस्था : मनु ने समाज संचालन हेतु चार वर्णों का उल्लेख किया है, किन्तु वर्ण संकरता के परिणाम स्वरूप उनसे सत्तावन जातियाँ बन गयी है। जिन चार वर्णों का मनु ने उल्लेख किया है, उनका कार्य निम्नलिखत है।

ब्राह्मण

स्मृतिकार मनु ने वर्ण व्यवस्था में ब्राह्मण को सर्वोच्च स्थान पर रखा है।[51] मुख्य रूप से ब्राह्मण का कार्य वेद का पठन पाठन बताया गया है।[52] मनु ने ब्राह्मण के छः कार्य निर्धारित किये हैं। जो निम्नांकित है।

1. वेद पढ़ना, 2. वेद पढ़ाना, 3. यज्ञ करना, 4. यज्ञ कराना, 5. दान देना 6. दान लेना आदि।

क्षत्रिय

क्षत्रियों को मनु ने द्वितीय स्थान पर रखा है। जिसके कार्य संक्षेप में इस प्रकार है— जिसके कार्य में प्रजा की रक्षा करना, दान देना, यज्ञ करना, वेद पढ़ना, विषयों में आसक्त न होना आदि।[54]

वैश्य

मनु ने वैश्य वर्ण को, समाज की अर्थव्यवस्था को बनाये रखने के लिए, पशुओं का पालन, दान, यज्ञ और वेदाध्ययन, वार्णिज्य, व्यवसाय, महाजनी और खेती का कार्य करना बताया है।[55]

शूद्र

मनु के अनुसार ईश्वर ने शूद्र को ईर्ष्यारहित होकर तीनों वर्णों की सेवा करने

का आदेश दिया है।[56]

आश्रम व्यवस्था : वैदिक समाज के संचालक मनु, याज्ञवलक्य आदिमनीषियों ने आश्रम व्यवस्था को संगठित करके, विश्व की सामाजिक विचारधारा को अद्वितीय देन दी है। आश्रम व्यवस्था द्वारा मानव को ऋणों (शषि ऋण, पितृऋण, देवऋण) से मुक्त करने का प्रयास किया गया है तथा पित्रैदिक समाज की यह भी मान्यता थी कि इस आश्रम व्यवस्था के अनुसार जीवन व्यतीत करने वाले को परमपद होता है।[57] मनु द्वारा विवेचित कर चारों आश्रमों का विवरण इस प्रकार है—

ब्रह्म आश्रम

ब्रह्मचर्य आश्रम में मानव का मुख्य उद्देश्य ज्ञान प्राप्त करना होता है। इस आश्रम का आरम्भ उपनयन संस्कार से होता है। मनु ने बालिकाओं के उपनयन संस्कार का निषेध बताया है। बालकों का उपनयन संस्कार आठ से ग्यारह वर्ष की आयु में, उनके वर्णानुसार धर्मशास्त्रों में विवेचित विधि द्वारा किया जाता है। जिससे बालक ब्रह्मचारी कहलाने लगता है।

प्रथम तीन वर्ण ही ब्रह्मचारी बन सकते हैं। इस आश्रम में बालक की कोमल एवं निर्मल अवस्था में सात्विक विचारों के अध्ययन द्वारा नैतिक गुणों को प्रोत्साहित किया जाता है। ताकि वह सामाजिक व्यवस्था में उपयोगी भूमिका का निर्वाह कर सके। ब्रह्मचारी गुरु के आश्रम में पच्चीस वर्ष तक की आयु तक रहकर अध्ययन करता है। ब्रह्मचारी दो प्रकार के बताये गये हैं।

(1) उपकुर्वाण— वे ब्रह्मचारी, जो विवाहवस्था (पच्चीस या छब्बीस वर्ष) तक गुरूकुल में रहकर अध्ययन करते हैं।[58]

(2) नैष्ठिक— वे ब्रह्मचारी, जो जीवन पर्यन्त ब्रह्मचारी रहकर अध्ययन करते हैं।

ब्रह्मचारी का खान-पान, रहन-सहन, पूर्ण रूपेण सात्विक बताया गया है। मनु ने बताया है कि वह मृगचर्म या बल्कल पहने, भोर और साँझ को स्नानकरे।[59] गुरु के आश्रम में ब्रह्मचारी विभिन्न विद्यायें जैसे-धर्म, दर्शन, आयुर्वेद, धनुर्वेद, आदि का स्वाध्याय करते हुये मन को अपने वश में रखे, नित्य दान करे तथा जीवों पर दया करे।[60] ब्रह्मचारी को गुरु के प्रति अत्यन्त तीव्र आदर भाव रखना चाहिये क्योंकि स्मृतिकारों ने गुरु की माता पिता से ऊँचा स्थान दिया है।[61] ब्रह्मचारी के आचरण के विषय में मनु ने बताया है कि वह गुरु के प्रति सेवा भाव रखे तथापि गुरु की आज्ञा की अवहेलना तथा संभाषण कभी न करे।[62]

गृहस्थ आश्रम

स्मृतिकारों ने प्रायः गृहस्थाश्रम को सर्वोच्च स्थान दिया है।[63] व्यक्ति के गृहस्थाश्रम का प्रारम्भ समावर्तन संस्कार से होता है। और उसके पारिवारिक जीवन का आरम्भ विवाह संस्कार से। इसके पश्चात् उसकी शक्ति गृहस्थी में केन्द्रित हो जाती है। ऋण से मुक्ति एवं नवीन पापों को रोकने के लिए गृहस्थ पंचमहायज्ञ, (ब्रह्मयज्ञ, पितृयज्ञ, देवयज्ञ, नृयज्ञ, भूतयज्ञ) सम्पादित करता है। इस प्रसंग में मनु ने निम्नलिखति पद्य को उद्धरित किया है—

''वैवाहिकेऽग्नो कुर्वीतगृहभं कमं यथा विधि।
पञ्चयज्ञ विधानञ्च पंक्तिं चान्वाहिर्कीं गृही।।'' मनु॰3/67

वानप्रस्थ आश्रम

वानप्रस्थ आश्रम में मनु[64] के अनुसार व्यक्ति तब प्रवेश करे, जब उसके शरीर पर झुर्रिया दिखायी पड़ने लगे, उसके बाल पक जायें और उसके पुत्रों के पुत्र हों। इस आश्रम की समय अवधि राग-क्षय से है।[65] वानप्रस्थी व्यक्ति को सभी सम्पत्ति, आभूषण स्त्री तथा पुत्रों के सुपुर्द करके वन में चला जाना चाहिये।[66] वानप्रस्थ होने पर वन में नीवार, शुद्ध अन्नो से अथवा शाक, फल, मूलों से महायज्ञ करे[67] तथापि आश्रम में पधारे अतिथियों को जल-फल कन्द मूल की भिक्षा दे।[68] अपने अध्ययन एवं अध्यापन से ज्ञान दीप को प्रज्ज्वलित रखे। वन में रहकर सर्दीगर्मी सहे, यथा साध्य उपकार करे, मन को अपने वश में रखे, दान करे, जीवों पर दया करे।[69]

संन्यास

संन्यासी, वानप्रस्थी के लिए बने हुए बहुत से नियमों एवं कर्तव्यों का ज्यों का त्यों पालन करते हैं। वानप्रस्थी ही अन्त में जब अपनी भावनाओं, कामनाओं पर विजय पा लेता है, तो संन्यासी हो जाता है। वानप्रस्थ आश्रम तथा संन्यास आश्रम में कुछ अन्तर भी है, जो यहाँ उल्लेखनीय है— वानप्रस्थ आश्रम में स्त्री को साथ रखा जा सकता है, लेकिन संन्यास आश्रम में पत्नी को रखना वर्जित है।[70] इसी प्रकार वानप्रस्थ आश्रम की आरम्भिक अवस्था में अग्नि प्रज्ज्वलित रखनी पड़ती है। आद्रिक एवं अन्य यज्ञ करने पड़ते हैं, किन्तु संन्यासी को अग्नि त्याज्य है। वानप्रस्थ को तप करते हुए तपना पड़ता है किन्तु संन्यासी को इन्द्रियों को संयमित रखते हुए परमतत्व की प्राप्ती को ही अपना एकमात्र लक्ष्य रखना चाहिये।[71] उसे सब कुछ परित्याग कर संन्यास ग्रहंण करना चाहिये।[72]

संस्कार, आचार सम्बन्धी धार्मिक मान्यतायें

मनुष्य के सामाजिक जीवन की सफलता के अभिप्रेरणार्थ, वर्णाश्रम व्यवस्था के साथ-साथ संस्कार सम्बन्धी व्यवस्थायें भी मनुस्मृति का सामाजिक प्रतिपाद्य रही हैं। ये व्यक्ति के संगठित और अनुशासित आचारण करने के विभिन्न उपाय है, ताकि वह समाज में रहकर सुखमय जीवन व्यतीत कर सके। इनसे व्यक्ति और समाज दोनों का हित सम्पादित होता है। मनु के अनुसार संस्कारों का सांस्कृतिक प्रयोजन भी है। अनेक प्रकार के संस्कारों से शरीर की अपवित्रता दूर होती है, ऐसा विश्वास है। उत्पन्न होते समय सभी मनुष्य शूद्र होते हैं और उसका संस्कार व परिमार्जन आवश्यक है, ऐसी प्रचलित मान्यता है। उपनयन से वह द्विज कहलाता है, वह वेदों के अध्ययन से विप्र बन जाता है, ब्रह्म के साक्षात्कार से उसे ब्राह्मण की स्थिति प्राप्त होती है।[73] मनुस्मृति के सामाजिक, प्रतिपाद्य के रूप में संस्कारों का विवरण देना यहाँ समीचीन होगा।

प्राग्जन्म संस्कार

गर्भाधान— प्राग्जन्म संस्कार के रूप में गर्भाधान पहला संस्कार है। जिस क्रिया द्वारा पुरुष, स्त्री के गर्भ में बीज स्थापित करता है, उसे गर्भाधान कहते हैं। जीवविज्ञान की दृष्टि से पशुओं में जो गर्भाधान होता है उससे यह भिन्न है। इसके पीछे कुछ नैतिक और सामाजिक तथ्य है। मनु के अनुसार स्त्री और पुरुष को चाहिए इसको सम्पन्न करने के लिये उपयुक्त समय और स्थान व वातावरण चुनें। यह तभी हो, जब पत्नी गर्भधाण के लिए शारीरिक रूप से समर्थ हो अर्थात ऋतु काल में। पत्नी के ऋतु स्थान की चौथी रात्रि से सोलहवीं रात्रि तक का समय गर्भधारण के लिए उपयुक्त माना जाता है।[74] गर्भाधारण के लिए केवल रात्रिकाल ही विहित है और दिन का समय निषिद्ध माना गया है।[75] तथापि रात्रियों में भी पिछली रात्रियाँ अधिक उपयुक्त मानी गई है। पिछली रात्रियों में धारण हुई सन्तति को अधिक भाग्यवान्, और गुण सम्पन्न समझा जाता है। पुरुष सन्तति के सम और स्त्री सन्तति के लिए विषय रात्रि चुने जाने का उल्लेख है।[76] आठवीं, चौदहवीं, पन्द्रहवीं, एवं तीसरी रात्रि एवं सम्पूर्ण पर्व गर्भाधान के लिए वर्जित है।[77]

पुंसवन : गर्भधारण का निश्चय हो जाने पर पुंसवन संस्कार होता है। पुंसवन संस्कार मुख्यतः पुत्र की प्राप्ति हेतु किया जाता है। इसके अनुष्ठान का समय गर्भ के द्वितीय माह से अष्टम माह तक माना जाता है। यह संस्कार तब किया जाता है, जब चन्द्रमा किसी पुरुष नक्षत्र में हो। गर्भिणी स्त्री के ध्राणेन्द्रिय के दाहिने स्थ्र में

वट वृक्ष का रस गर्भपात के निरोध तथा पुरुषसन्तति के जन्म के उद्देश्य से डाला जाता है।

सीमन्तोन्नयन : प्राग्जन्म संस्कारों में सीमान्तोन्नयन संस्कार तीसरे क्रम का संस्कार है। इसका समय व व्याख्याकारों ने भिन्न-भिन्न माना है। जो गर्भावस्था के तीसरे मास से आठवें मास तक रखते हैं। स्त्री पर गर्भावस्था के दौरान, अमंगलकारी शक्तियों के आक्रमण के डर को रोकने के लिए इसकी आवश्यकता रहती है। अतः क्लान्त गर्भिणी को खुश रखने व ईश्वर से उसके मंगलमय भविष्य की प्रार्थना इस संस्कार के अन्तर्गत की जाती है।

बाल्यावस्था के संस्कार

जातकर्म : बाल्यावस्था के संस्कार जातकर्म संस्कार से आरम्भ होते हैं। प्रसव के लिए घर में उपयुक्त कमरा चुन लिया जाता है, जिसे "सूतिका भवन" कहते हैं। बच्चे के जन्म के पश्चात् संस्कार की तैयारी की जाती है। पिता, पुत्र का मुख देखता है। तथा तर्जनी अंगुली और एक शुद्ध शलाका (जो स्वर्ण निर्मित हो सकती है) से शिशु को मधु और अथवा केवल घृत चटाता है।[77]

नामकरण : स्मृतिकारों ने व्यक्ति के व्यक्तिगत नामों के महत्व को समझा और नामकरण की प्रथा को धार्मिक संस्कार के रूप में परिणित कर दिया। शिशु के नाम का चुनाव प्रायः धार्मिक भावनाओं से सम्बधित रहता है, यद्यपि साथ में अन्य कारण भी है। मनु के अनुसार ब्राह्मण का नाम मंगल सूचक, क्षत्रिय का नाम बलसूचक, वैशध का नाम धनसूचक तथा शूद्र का नाम जुगुप्तिस सूचक अथवा कुत्सा सूचक रखना चाहिये।[78] जातक के नामकरण के समय के विषय में मनु ने बताया है—

"नामधेयं शम्यां तु द्वादश्यां वास्य कारयेत्।
पुण्ये तिथौ मुहुर्ते वा नक्षत्रे वा गुणान्विते।।" मनुस्मृति-2/30

स्मृतिकार मनु ने बालिकाओं के नामकरण के लिए सूखवाचक, सरल, सुन्दर, स्पष्ट अर्धयुक्त, आशीर्वाद सूचक और जिसका अन्तिम अक्षर दीर्घ हो, रखने का सुझाव प्रतिपादित किया है।[79]

निष्क्रमण : इस संस्कार द्वारा बालक को पहली बार घर से निकाला जाता है। ये उसके उन्नतिशील जीवन में एक महत्वपूर्ण कदम है। जिसे बहुत उल्लास के साथ मनाया जाता है। मनु के अनुसार इसका सम्पादन काल जन्मोपरान्त चौथामास

होता है।[80]

अन्नप्राशन : ठोस भोजन या अन्न खिलाना शिशु के जीवन का एक महत्वपूर्ण कदम है। स्मृतिकार मनु ने इसको भी संस्कार के माध्यम से धार्मिक ग्राह्य स्वरूप दिया है। प्रायः यह संस्कार शिशु के जन्म के पश्चात् छठे मास में किया जाता है।[81]

चूड़ाकरण : चूड़ाकरण संस्कार के द्वारा शिशु के सिर के केश मुण्डवा दिये जाते हैं, तथापि एक मात्र शिखा रखी जाती है। स्मृतिकार मनु ने इसका समय शिशु के जन्म के पश्चात् प्रथम या तृतीय वर्ष में किया जाता है।[82]

कर्णवेधन : आरम्भ में कर्णवेधन अलंकरण के लिए प्रचलित हुआ, किन्तु बाद में इसे स्मृतिकारों ने धार्मिक संस्कार के रूप में मान्यता दी यह संस्कार जन्म के तृतीय अथवा पाँचवे वर्ष में किया जाता है।

शैक्षणिक संस्कार

विद्यारम्भ : जब बालक का मानसिक विकास शिक्षाग्रहण करने के स्तर तक हो जाता है, तो विद्या आरम्भ भी संस्कार के साथ किया जाता है। उसे अक्षर सिखाये जाते हैं, जिसे अक्षरारम्भ, अक्षरस्वीरण, अक्षर लेखन आदि नामों से स्मृतिकारों ने उल्लिखित किया है।

उपनयन : कैशोर्य के पदार्पण के अवसर पर उपनयन संस्कार का आयोजन किया जाता है। सांस्कृतिक दृष्टि से इस संस्कार का बड़ा महत्व है। बिना उपनयन संस्कार के व्यक्ति शूद्र होता है। उपनीति होकर वह द्विज कहलाता है। तीनों उच्च वर्णों के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है। मनु ने इसके महत्व का वर्णन, सांस्कृतिक उत्कर्ष की पराकाष्ठा तक किया, और इसे द्वितीय जन्म के रूप में परिभाषित किया।[83] बालक के उपनयन की आयु के बारे में साधारण नियम यह है कि ब्राह्मण बालक का उपनयन जन्म के आठवें वर्ष में, क्षत्रिय बालक का ग्यारहवें वर्ष में, तथा वैश्य का बारहवें वर्ष में करना चाहिये।[84]

वेदारम्भ : शिक्षा में वैदिक अध्ययन को बनाये रखने के लिए वेदारम्भ संस्कार स्वतंत्र रूप से आरम्भ किया गया। पहले यह उपनयन संस्कार का अंग माना जाता था।

केशान्त : इस संस्कार के द्वारा सोलह वर्ष की आयु में विद्यार्थी की दाड़ी-मूछों का पहली बार क्षौरकर्म होता है। यह यौवन पदार्पण का सूचक है, तथा यौवनपूर्ण, प्रवृत्तियों के प्रति सतर्क कर दिया जाता है। इसे गोदान भी कहते हैं,

क्योंकि इस अवसर पर आचार्य को गौ का दान दिया जाता है। मनु के अनुसार, ब्राह्मण का केशान्त सोलहवें वर्ष में, क्षत्रिय का बाइसवें वर्ष में तथा वैश्य का चौबीसवें वर्ष में होना चाहिए।[85]

समावर्तन : यह संस्कार ब्रह्मचर्य के समाप्त होने पर किया जाता है तथा विद्यार्थी जीवन की समाप्ति का सूचक है। समावर्तन का आशय है— वेदाध्ययन के अनन्तर गुरुकुल से घर की ओर प्रत्यावर्तन। इसे स्नान भी कहते हैं, क्योंकि यह संस्कार का महत्वपूर्ण अंग है, तथा ब्रह्मचारी स्नातक कहलाने लगता है। प्रायः यह संस्कार 24 वर्ष की आयु में किया जाता है।

विवाह : यह हिन्दू संस्कारों में आज भी अपने वैदिक स्वरूप में विद्यमान है, तथापि इसका महत्वपूर्ण स्थान है। विवाह समस्त गृहयज्ञों, संस्कारों का उद्भव केन्द्र है, साधारण परिस्थितियों में समाज प्रत्येक व्यक्ति से विवाह कर गृहस्थ जीवन व्यतीत करने की अपेक्षा करता है। बालिकाओं के जीवन में विवाह संस्कार का महत्वपूर्ण स्थान है। क्योंकि मनु के अनुसार उनके लिए यज्ञोपवीत विवाह विधि ही है तथापि पतिगृह गुरुकुल सा ही है। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि बालिकाओं के समस्त संस्कार मन्त्रविहीन होते हैं।[87]

जीवनोपरान्त संस्कार

अन्त्येष्टि संस्कार : नश्वर संसार में आर्य जीवन का अंतिम संस्कार अन्त्येष्टि है। इसके द्वारा व्यक्ति का परलोक सुधारने का प्रयास किया जाता है। मृत्यु के आगमन तथा दाहक्रिया से पहले अनेक क्रियायें करनी पड़ती है। मृत्यु के आगमन पर वह अपने भावी कल्याण के लिए ब्राह्मणों और गरीबों को दान देता है।

आचरण सम्बन्धी जिन मान्यताओं का प्रतिपादन मनु ने किया है वे समाज के सत् संचालन में महत्वपूर्ण स्थान रखती है। सत् आचरण के महत्व को सम्पादित करते हुए मनु कहते हैं कि सत् आचरण से दीर्घ आयु मिलती है, अच्छी सन्तानें होती है, आचार से अक्षय धन लाभ होता है, तथापि आचार से अशुभ लक्षणों का नाश होता है।[88]

मनु ने मानव जवीन में सदाचार की महत्ता को पराकाष्ठा पर पहुँचा दिया, वे यहाँ तक कहते हैं कि सब लक्षणों से हीन होने पर भी जो पुरुष सदाचारी और श्रद्धालु होता है, तथा दूसरों के दोष नहीं कहा करता वह सौ वर्ष तक जीता है।[89] इतना ही नहीं वे सदाचार को धर्म का मूल भी मानते हैं। इस कारण आत्मवान् द्विजों को इस आचरण में सदा यत्नवान् रहने का सन्देश दिया है।[90] इस कारण इतना ही नहीं यह

भी बताया है कि आचार से हीन ब्राह्मण, वेद का फल नहीं पाता है तथा पित्रो आचार से युक्त है, वह सम्पूर्ण फल का भागी है।[92] मनु के अनुसार आचरण ही सब तपस्याओं का मूल है।[93] आचरण का इनता प्रभावी स्वरूप देखकर सहज ही यह जिज्ञासा होती है कि आखिर आचरण के अन्तर्गत मनु ने किन तथ्यों या विचारों को शामिल किया है ? अतः यहाँ उन तथ्यों को विवरण देना नितान्त समीचीन होगा जिन्हें सदाचार के अन्तर्गत मनु ने शामिल किया है।

सत्य : अनादि काल से सत्य, अपने शाश्वत स्वरूप में समाज संचालन में सहयोग करता चला जा रहा है। समाज और सदाचार दोनों के लिए सत्य अपेक्षित ही नहीं, अपितु अनिवार्य भी है। मनु ने झूठ का निषेध करते हुये, सत्य के महत्व को प्रतिपादित किया है।[94]

संयम : सदाचार और संयम, आज के परिप्रेक्ष्य में एक दूसरे के पर्याय कहे जा सकते है। मनु स्मृति में व्यक्ति की प्रारम्भिक अवस्था अर्थात् ब्रह्मचारी को मधु, माँस, सुगन्ध, माला, रस, स्त्री, सहवास, सब प्रकार के आसवादि (सिरके) और प्राणियों की हिंसा, से सब त्यागने का सुझाव दिया है।[95] संगीत, शारीरिक आकर्षण तथा काम, क्रोध लोभ से भी बचने की भी संयम के अन्तर्गत शामिल किया है।[96] जीवनदायिनी शक्ति, शारीरिक संयम भी मनु के सदाचार में शामिल है।[97] यदि भूल से उसका शारीरिक संयम टूटता है, तो उसे प्रार्थना करने का सुझाव है।[98]

अहिंसा : अहिंसा, मनुस्मृति ही नहीं, अपितु समस्त प्राचीन भारतीय वाङमय् का मुख्य प्रतिपाद्य रहा है। यही प्राचीन भारतीय संस्कृति की अनुपम विशेषता रही है। मनु ने अहिंसा के पालन में अत्यन्त गहरायी से चिन्तन किया है। वे यहाँ तक कहते हैं कि शिष्यों के कल्याण के लिए जो अनुशासन करना हो, वह भी अहिंसा युक्त हो।[99] दूसरी ओर ब्रह्मचारी को भी जीवों की हिंसा न करने का संदेश दिया है।[100]

अक्रामता : स्मृतिकार मनु ने सदाचार पालन हेतु अक्रामता पर बल दिया है। इसके संरक्षण हेतु विभिन्न उपाय बताये हैं। तथापि कुछ शिष्टचारों का निषेध किया है।[101] इतना ही नहीं मनु सजग करते हुए बताते हैं कि कामाकर्षण स्त्रियों का स्वभाव है। तथा ज्ञानी पुरुष, स्त्रियों के सम्बन्ध में सावधान रहते हैं।[102] कामता को कुमार्ग बताते हुए स्त्री को, पुरुष को इस ओर ले जाने में समर्थ बताया है।[103] पारिवारिक व सामाजिक सम्बन्धों व शिष्टाचारों में सतर्क रहने को बताया है। युवा बहन बेटी के साथ एकान्त में एक एक खाट पर बैठने का भी निषेध किया है।[104]

आहार-विहार : यह सर्वमान्य तथ्य है कि व्यक्ति जैसां भोज्य पदार्थ ग्रहण

करता है, अर्थात् उसका पर्यावरण उसके आचरण का नियामक होता है। मनु ने व्यक्ति के खान-पान तथा घूमने फिरने का भी विवेचन किया है। मनु के अनुसार यदि ब्रह्मचारी सूर्योदय और सूर्यास्त के समय सोता है, तो वह महापाप का भागीदार होता है।[105] इच्छावश सोने पर प्रायश्चित स्वरूप दिन भर उपवास करके गायत्री मन्त्र जपे, उसके न जानने पर उपवास रखे।[106] उसके स्वरूप के सन्दर्भ में बताया है कि ब्रह्मचारी सिर मुड़ाये अथवा जटा रखाये हो अथवा शिखा की ही जटा बनाये हो पर उसके गाँव में रहते हुए कभी सूर्योदय नहीं होना चाहिये।[107]

दुराचार की निन्दा : दुराचरण की निन्दा, मनुस्मृति का सामाजिक प्रतिपाद्य विषय रहा है। मनु ने दुराचरण के परिणाम रेखांकित किये हैं—

दुराचारो हि पुरुषो लोके भवति निन्दितः।
दुःखभागी च सततं व्याधितो ल्पायुरेव च।। मनुस्मृति 4/157

अर्थात् दुराचारी पुरुष संसार में निन्दित, सर्वदा दुःखी, रोगी और अल्पायु होता है।

विविध सामाजिक अपराध

किसी भी समाज में, किसी व्यक्ति के द्वारा, उस समाज विशेष की परम्पराओं और रीतियों के विरुद्ध किया गया कोई ऐसा कृत्य जिससे उस समाज को हानि हो, सामाजिक अपराध की श्रेणी में आता है। प्रारम्भ से ही समाज को इस बात को पूर्ण अधिकार रहा है कि यदि कोई मनुष्य विधि निहित नियमों के विरूद्ध कार्य करे तो उसे दण्ड दिया जाये, ताकि पुनः उस अपराध की पुनरावृत्ति न हो। दण्ड के पीछे यह भावना थी कि अन्य व्यक्ति उस कृत को न करे। इस प्रकार के कृत्यों को समान्यतः दो रूप में विभाजित करके, विवेचन कर सकते हैं। यथा— (1) व्यक्ति के विरुद्ध (2) राज्य और समाज के विरुद्ध। मनु ने इन्हें महापातक और उपपातक के रूप में परिभाषित किया है। प्रायः महापातक पाँच हैं— ब्रह्महत्या, मद्यपान, चोरी, गुरुपत्नी गमन, तथा इनके साथ रहने वाला व्यक्ति भी महापातक कहलाता है।[108] मनुस्मृति में मुख्यतः जिन अपराधों की विवेचना हुई है, वे इस प्रकार हैं—

ब्रह्म, गुरु आदि की हत्या— मनु ने सामाजिक अपराधों एवं तत्सम्बन्धित दण्डों का विवेचन वर्ण व्यवस्था को दृष्टि में रखकर किया है। ब्रह्म हत्या, महापाप के रूप में वर्णित हुई है।[109] चूँकि ब्राह्मण समाज के धार्मिक, आध्यात्मिक तथा सात्विक समुत्कर्ष हेतु अपने सदाचार के द्वारा त्यागपूर्ण सरल आदर्शमय जीवन का उदाहरण प्रस्तुत करके समाल के उचित दिशा निदर्शक का कार्य करता था। अतः

स्मृतिकार मनु ने ब्राह्मण की महत्ता को ध्यान में रखते हुये ठीक ही ब्रह्महत्या को महापाप की श्रेणी में रखा है। इसके अतिरिक्त अपनी बड़ाई के लिये झूठ बोलना, राजा से किसी की ऐसी चुगली करना, कि उसके प्राणों पर ही आ पड़े, गुरु की झूँठी निन्दा करना आदि अन्य अपराध भी मनु ने ब्रह्महत्या के समान माने हैं।[110]

सुरापान : मनु ने तुरापान को भी पाँच महापातकों के अन्तर्गत वर्णित किया है।[111] स्मृतिकार मनु की भाँति गौतम ने भी मद्यपान को सामाजिक अपराधों की श्रेणी में रखा है तथा महापातक की श्रेणी में परिगणित किया है।[112] सुरापान स्वयं में कोई अपराधी नहीं है किन्तु उसके दुष्टपरिणामों से समाज प्रभावित होता है तथा व्यक्ति को शारीरिक एवं मानसिक रूप से विकृत कर देता है। मनुष्य इतना विवेक शून्य हो जाता है कि उसे व्यसनपूर्ति के सिवाय अन्य सब कुछ निरर्थक प्रतीत होता है। व्यसन की पूर्ति तथा धन की आवश्यकता उसे अपराध की ओर प्रेरित करती है। यथार्थतः व्यसनी व्यक्ति जान बूझकर अपराधी बनने की इच्छा नहीं रखता है, परन्तु वह उक्त परिस्थितियों के कारण अनजाने में ही अपराधिक जीवन में प्रवेश कर जाता है। व्यसनी बन जाने के कारणों को स्पष्ट करते हुए ''लिण्डस्विथ'' महोदय का कथन है कि— ''मनुष्य में इन मद्यद्रव्यों के सेवन की आदत अनेक कारणों से बढ़ जाती है जो आगे चलकर व्यसन का रूप धारण कर लेती है। अनेक व्यक्ति इन मादक पदार्थों का सेवन अनभिज्ञता के कारण आरम्भ करते हैं, जबकि कुछ व्यक्ति इसका सेवन कौतूहलवश आरम्भ करते हैं। इसके अतिरिक्त कुछ व्यक्तियों को आरम्भ में इन द्रव्य पदार्थों को औषधि रूप में लेना आवश्यक होता है जो दीर्घ समय तक सेवनोपरान्त आदत या व्यसन का रूप धारण कर लेता है।[113] भावुक व्यक्ति प्रायः अपने जीवन की दुःखद घटनाओं को भुलाने के लिए इसका सेवन करने लगते हैं। धार्मिक एवं सामाजिक उत्सवों में मदिरापान करना सम्भ्रान्त रीति का परिचायक समझा जाता है। मनु ने भी इस तथ्य का संकेत दिया है। मनु के अनुसार जो स्त्री मना करने पर विवाहादि उत्सवों में नाचे, गाये तथा मद्यपान करे, उसे अपराधिनी माना जाता है।[114] संक्षेप में मद्यपान, प्राचीन काल से चिन्दनीय अपराध के रूप में, वैयक्तिक, सामाजिक, पारिवारिक एवं राष्ट्रीय विघटन का द्योतक है। आज भी मद्यपान भारत में ही नहीं अपितु सम्पूर्ण विश्व में एक अपराध के रूप में परिभाषित होता है। अतः मनु जैसे स्मृतिकारों को मद्यपान विषयक अवधारणा सर्वथा सार्थक सिद्ध होती है।

चोरी एवं डकैती : चोरी एवं डकैती प्राचीन वैदिक समाज में भी प्रचलित थे। मनु ने चोरों से प्रजा की रक्षा करना राजा का मुख्य कर्तव्य माना है।[115] मनु चोरी और डकैती को स्तेय एवं साहस के रूप में परिभाषित करते हैं। उनके अनुसार स्तेय एवं साहस दो भिन्न अपराध है। स्वामी के सामने बलत् किसी वस्तु का अपहरण करना साहस (डकैती) और स्वामी के परोक्ष में (नहीं रहने पर चुपके से) किसी वस्तु का अपहरण करके भाग जाना (या अपहरण के बाद अस्वीकार करना) स्तेय कहलाता है।[116] त्येय शब्द ऋग्वेद में भी आया है।[117] चोर के लिये तायु[118] एवं तस्कर[119] शब्दों का प्रयोग हुआ है। निरुक्त में तायु शब्द की व्याख्या इस प्रकार की गई है, तायु चोर वाचक है, चोर में पाप इकट्ठा होकर रहता है। अतः स्तेन कहलाता है।[120] ऋग्वेद में आये इन शब्दों के विषय में कवि महोदय का विचार है—"यहाँ स्तेन का अर्थ वह चोर जो सम्पत्ति को गुप्त रूप से उठा ले जाता है तथा तस्कर वह जो खुले आम चोरी करता है।[121] चोरी की गयी वस्तु के मूल्य के आधार पर स्तेय के तीन भेद किये गये हैं, क्षुद्र, मध्यम और उत्तम। नारद ने इन वस्तुओं का स्पष्ट भेद किया है।[122] याज्ञवल्क्य भी छोटी-मध्यम चोरी को मूल्य के अनुसार निश्चित करते हैं।[123] स्मृतिकार मनु ने चोरों के दो प्रकारों का उल्लेख किया है। प्रकाश तस्कर एवं परोक्ष तस्कर।[124] इन चोरों को परिभाषित करते हुए मनु कहते हैं कि उन दो प्रकारों के चोरों में से मूल्य तथा तौल या नाप में लोगों के देखते-देखते सोना, कपड़ा, आदि बेचते समय ठगने वाले प्रथम (प्रत्यक्ष) चोर हैं तथा सेंध लगाकर या जंगल आदि में छिपकर रहते हुए दूसरों के धन को चुराने वाले द्वितीय (परोक्ष) चोर हैं।[125] इसी प्रकार घूसखोर, डराकर धन लेने वाले ठग, जुआरी, धन या पुत्रादि के लाभ होने की असत्य बातें कहकर लोगों से धन लेने वाले भद्रवेश धारण करके अपने दूषित कुकर्म को छिपाकर लोगों से धन लेने वाले, हस्तरेखा आदि को देखकर नहीं जानते हुए भी फल को बताकर धन लेने वाले, अशिक्षित हाथीबास, अशिक्षित चिकित्सक, चित्रकार, शिल्पी, परद्रव्याहरण में चतुर वेश्या, इन्हें तथा इस प्रकार के अन्य लोगों को तथा ब्राह्मणादि का वेश धारण कर गुप्त रूप से जनता को ठगने वाले शूद्र आदि को प्रत्यक्ष कण्टक (प्रकट रूप से चोर) जानना चाहिए।[126]

जुआ एवं बाजी लगाना : जुआ एवं बाजी लगाना प्राचीन समाज के प्रत्येक वर्ग के मनोरंजन का अत्यन्त लोकप्रिय साधन था, किन्तु इसके दुष्परिणामों को देखते हुए इससे मिलने वाला आनन्द कुछ भी नहीं था। ऋग्वेद में भी एक हारे हुए जुआरी को विलाप करते हुए दिखाया गया है।[127] अथर्ववेद में जुआ के पाशों एवं ग्लह का उल्लेख आया है।[128] वैदिक वाङ्मय में जुआ एवं बाजी लगाने के लिए द्यूत एवं

समाह्वय शब्दों का उल्लेख हुआ है। द्यूत एवं समाह्वय में भेद करते हुए मनु लिखते हैं कि अप्राणि जैसे अक्षु शलाका आदि के द्वारा द्यूत एवं प्राणी कुक्कट, मेष आदि से बलपूर्वक खेले जाने को स्माह्व्य कहते हैं।[129] पूर्व काल में यह द्यूत बड़ा वैमनस्य उत्पन्न करने वाला देखा गया है। इस कारण बुद्धिमान व्यक्ति को मरवौल के लिए द्यूत नहीं खेलना चाहिए।[130] कात्यायन कहते हैं कि यदि जुआ खेला, तो प्रकट रूप में द्वार पर तोरण बांधा जाय तथा उनसे कर लिया जाय।[131] याज्ञवल्क्य का विचार है कि द्यूत राज्य कर्मचारियों की देखरेख में खेला जाना चाहिए— क्योंकि इससे चोरों को पकड़ने में सहायता मिलती है।[132] आपस्तम्ब ने इसकी बुराइयों को स्वीकार करते हुए इसे राज्य के संरक्षण में लाने को कहा है।[133] कौटिल्य भी इसी प्रकार राज्य का एकाधिकार होने की बात कहते हैं।[134] लेकिन मनु द्यूत तथा समाह्वय दोनों का समान रूप से निषेध करते हैं। उनके अनुसार राजा को अपने राज्य से इन दोनों व्यसनों को दूर कर देना चाहिए, क्योंकि ये दोनों दोष राजा के राज्य को नष्ट कर देते हैं। द्यूत एवं समाह्व्य खुले आम चोरी के समान है। अतः राजा को उनको रोकने के लिए सदैव प्रयत्नशील रहना चाहिए।[135] जो मनुष्य द्यूत एवं समाह्व्य खेले अथवा खिलावे, उनके राजा हाथ आदि कटवाकर दण्डित करे अथवा राज्य से शीघ्र निष्कासित कर दे।[136]

व्यभिचार : सामाजिक मान्यताओं के विपरीत यदि पुरुष अथवा स्त्री का परस्पर संग्रहणरत होना सामाजिक दृष्टि से व्यभिचार माना जाता है। व्यभिचार कोटि में आने वाले अपराधों में कई प्रकार के हेतु होते हैं। एक निश्चित और स्वस्थ आयु पाकर मनुष्य के शरीर में काम तन्तुओं का सहज उन्मेष होता है तथा अथवा अज्ञात भाव से भोगेच्छा के प्रति मनुष्य प्रवृत्त होता है। स्मृतिकार मनु ने व्यभिचारियों के लिए, न केवल दण्ड की व्यवस्था की वरन् इस समस्या का सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक परिवेश में अध्ययन भी किया। स्त्री व पुरुष क्यों व्यभिचारी होता है? यह भी देखने को प्रयास किया। वे इस तथ्य से भली भाँति परिचित थे कि अभाव अतृप्ति को जन्म देता है और अतृप्ति अपराध को। यह अभाव एवं मानसिक एवं शारीरिक दोनों ही प्रकार का हो सकता है। व्याभिचारिता (सम्भोगादि की अतिशय इच्छा होने से) यत्नपूर्वक पति द्वारा सुरक्षित स्त्रियाँ भी पति से विमुख हो जाती हैं।[137] अतः पतियों को चाहिये कि वे उनका सम्मान करें।[138] व्याभचार के लिये अपराध मानते समय भी स्त्री पुरुष की जाति, स्त्री विवाहिता है अथवा अविवाहिता, पति अथवा अभिभावक द्वारा सुरक्षित है अथवा नहीं है। मनु इन बातों पर विस्तृत

विचार करके ही उनका निर्धारण किया है। व्यभिचार वर्ण संकरता को जन्म देता है, जो पाप का कारण है।[139] बोधायन ने व्याभिचार कोटि में आने वाले अपराधों को उपघातक माना है। उन्होंने गुरु पत्नी के अतिरिक्त अन्य स्त्रियों के साथ अनैतिक और अनधिकृत सम्बन्धों को उस सीमा तक अपराध नहीं माना है, जितना गौतम ने माना है। बौधायन ने माता की सखी, गुरु अर्थात् पिता की सखी, अपपात्र स्त्री (शूद्रा) और पतिता के साथ अवैध सम्बन्ध की वर्जना की है।[140]

मनु के अनुसार यदि न चाहती हुई ब्राह्मणी के साथ शूद्र संभोग करता है, तो अपराध गंभीरतम होता है।[141] यद्यपि मेधातिथि ने मनुस्मृति में आये अब्राह्मण का अर्थ क्षत्रियादि किया है।[142] परन्तु कुल्लूक और गोविन्दराज के दण्ड की अधिकता के कारण अब्राह्मण का अर्थ शूद्र ही लगाया है।[143] जो उचित प्रतीत होता है। पति द्वारा सुरक्षित ब्राह्मणी के साथ यदि ब्राह्मण संभोग करें, तो उसका अपराध संभोग की इच्छा करने वाली ब्राह्मणी की अपेक्षा अधिक होता है। इसी प्रकार रक्षित क्षत्राणी के साथ वैश्य और वैश्य स्त्री के साथ क्षत्रिय संभोग करे तो अरक्षित ब्राह्मणी के साथ संभोग करने के बराबर अपराध होता है।[144]

ब्राह्मण द्वारा व्यभिचार के संदर्भ में मनु का कथन है कि अरक्षित क्षत्राणी, वैश्या एवं शूद्रा के साथ सम्भोग करने वाले ब्राह्मण का अपराध गहन होता है। किन्तु यदि वह अन्त्यज स्त्री के साथ संम्भोग करता है तो उसका अपराध उपर्युक्त अपराध से दो गुना हो जाता है।[145] यदि पति से सुरक्षित क्षत्राणी या वैश्या के साथ ब्राह्मण संभोग करे, तो अरक्षित स्त्रियों से संभोग करने की अपेक्षा अधिक गम्भीर अपराध है।[146] याज्ञवल्क्य, नारद आदि अन्य स्मृतियों का अनुशीलन करने पर ज्ञात होता है कि ब्राह्मण द्वारा व्यभिचार कृत्य का अलग से वर्णन मनु के अतिरिक्त अन्य किसी भी स्मृतिकार ने नहीं किया है।

ब्राह्मणी के साथ यदि क्षत्रिय, वैश्य संभोग करें तो वह सुरक्षित व गुणवती हो, तो मनु उसे गम्भीर अपराध मानते हैं। परन्तु यदि असुरक्षित ब्राह्मणी के साथ संभोग करे, तो उक्त अपराध की अपेक्षा कम गम्भीर होता है।[147]

स्त्री द्वारा व्यभिचार के संदर्भ में मनु का कथन है कि यदि काम के वशीभूत होकर कोई स्त्री पुरुष के पास स्वयं जाये तो स्त्री गम्भीर रूप से अपराधिनी मानी जायेगी।[148] अप्राकृतिक व्यभिचार के संदर्भ में मनुस्मृति में मिले हैं। गौतम और मनु ने ऐसी स्त्री या कन्या को अपराधिनी माना है जो किसी दूसरी कन्या की योनि दूषित करती है।[149]

मनु द्वारा निरूपित दण्ड व्यवस्था

मनुष्य का विश्रृंखलित अहंकारी मन अपराध में एक प्रकार की मानसिक तुष्टि का अनुभव करता है। मानव की मानसिकता अनन्त विविधता से ओत प्रोत है। मनोवैज्ञानिक आधार पर विकृत मानसिकता का अनुमान या अनुसंधान किया लगता है। किन्तु मनुष्य के अपराधी मन की गहराई नापने के लिए कोई मानदण्ड स्थापित नहीं हो पाया है। इसी के समानान्तर 'दण्ड' एक व्यवस्था है और उसकी सीमा या मात्रा भी निर्धारित है।

'दण्ड' शब्द का प्रयोग प्राचीन ग्रन्थों में विविध अर्थों में हुआ है। ऋग्वेद के एक मन्त्र में शत्रुओं के दमन के अर्थ में दण्ड शब्द का प्रयोग हुआ है।[150] इस मन्त्र का भाष्य लिखते सायणाचार्य कहते हैं— 'दमः दमनम्।'' बाधनमिच्छत्[151] निरुक्तकार यास्क ने 'दण्ड' शब्द की व्युत्पत्ति धारणार्थक 'दद' धातु से मानी है। दण्ड द्वारा हीसारी प्रतिभाओं को धारण किया जाता है। यास्क के ही अनुसार ''दम'' धातु से भी दण्ड शब्द की व्युत्पत्ति सिद्ध होती है, जिसके द्वारा अपराधियों का दमन किया जाता है, उसे दण्ड कहते हैं। अपनी इस व्युत्पत्ति के समर्थन में यास्क ने उपमन्यु के पुत्र औपमन्यव को भी उद्धृत किया है।[152] धर्मशास्त्रीय ग्रन्थों में भी 'दण्ड' शब्द का प्रयोग धारण तथा दण्डन के अर्थ में हुआ है। गौतम धर्मसूत्र में दमन करने के कारण ही दण्डविधि को दण्ड कहा गया है। जिसके द्वारा निरंकुश लोगों को वश में किया जाता है।[153] मनु के अनुसार प्राणियों की रक्षा के लिए सभी जीवों के रक्षक ब्रह्मतेजोमय दण्ड को ईश्वर ने अपने धर्मपुत्र में पैदा किया है।[154] उनके अनुसार दण्ड ही प्रजा का शासन चलाता है। दण्ड ही रक्षा करता है, दण्ड ही सभी के सोने पर जागता है, इसीलिए विद्वान लोग दण्ड को ही धर्म कहते हैं।[155] मनु स्मृति के इस श्लोक पर टिप्पणी करते हुए कुल्लूक भट्ट ने लिखा है कि धर्म का कारण होने से ही दण्ड को धर्म कहा जाता है।[156] दण्ड के प्रयोजन पर मनु ने गम्भीरतापूर्वक विचार किया है। प्रायः उन्होंने प्रतिशोध की भावना के समापन हेतु अपराध की पुनरावृत्ति को रोकने के लिए, भय उत्पन्न करने के लिए तथा अपराधी को सुधारने के लिए तथा समाज में सुख-शान्ति की स्थापना के लिए इस दण्ड व्यवस्था का प्रतिपादन किया है। प्रशिोध की भावना के शमनार्थ ही 'दण्ड-व्यवस्था' धर्मसूत्रों एवं शास्त्रों में पूर्ण रूप से व्याप्त थी। उक्त प्रयोजन की पुष्टि मनुस्मृति व नारद स्मृति में पायी जाती है। यदि हीनवर्ण का व्यक्ति, ब्राह्मण के किसी अंग को चोट पहुँचाये तो उसके चोट पहुँचाने वाले अंग को काट देना चाहिए।[157] मनुस्मृति में निरूपित दण्डों का विवेचन निम्न बिन्दुओं के अन्तर्गत जा सकता है।

आर्थिक दण्ड : मनुस्मृति में जहाँ साधारण अपराधों के लिए वाग्दण्ड एवं धिग्दण्ड का प्रयोग किया गया है, वहीं गम्भीर अपराधों के लिए धनदण्ड एवं मृत्यु दण्ड का विधान किया गया है। आर्थिक दण्ड के दो प्रकार हैं :—

निश्चित दण्ड तथा अनिश्चित। निश्चित दण्ड में निर्धारित मात्रा में अर्थदण्ड लगाया जाता है। तथा अनिश्चित दण्ड में सम्पूर्ण सम्पत्ति के अपहरण का विधान है।

धर्मशास्त्र साहित्य में निरूपित आर्थिक दण्ड प्रमुख रूप से तीन श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है— प्रथम साहस, मध्यम साहस एवं उत्तम साहस। स्मृतिकारों ने इसकी व्याख्या कई प्रकार से की है। मनुस्मृति के साथ-साथ विष्णु धर्म सूत्र में इनका क्रम इस प्रकार है— प्रथम साहस के लिए 250 पण, मध्यम साहस के लिए 500 पण तथा उत्तम साहस के लिए 1000 पण की व्यवस्था है।[158] मिताक्षरा का कथन है कि मनु की संख्यायें बिना किसी निश्चित उद्देश्य के लिए किये गये अपराधों के लिए है।[159] साहस संबंधी अपराधों के निमित्त अर्थदण्डों का विधान किया गया है।

फसल नष्ट करने सम्बन्धी आर्थिक दण्ड : मनु का मत है कि यदि किसान के दोष से उसी के पशु द्वारा खेत चरा जाय अथवा असमय में बोये जाने के कारण हानि हो तो जितने राजदेय भाग की हानि हो उसका दस गुना दण्ड किसान पर होता है और यदि उसके नुकसान से या नौकरों के दोष से हानि हो तो, पाँच गुना दण्ड होता है।[160] इसी प्रसंग में यदि गाँव के समीप खेत में यदि चरवाहा के रहने पर पशु फसल नष्ट करे तो 100 पण का दण्ड दें।[161] मनु ने भय दिखाकर किसी का घर, तड़ाग, बगीचा और खेत अपहरण कर लेने पर 500 पण का दण्ड और खेत के स्वामी की आज्ञनता की स्थिति में ऐसा करने पर 200 पण का दण्ड निर्धारित किया है।[162]

वाहन चालकों को दिये जाने वाले अर्थदण्ड : मनु ने सारथि के अपराधों का वर्णन करते हुये अपराध की लघुता व गंभीरता के आधार पर अर्थदण्ड का विधान किया है। यदि सारथी की मूर्खता से कोई व्यक्ति मर जाये तो मूर्ख सारथी रखने के लिए 200 पण का दण्ड सारथी के स्वामी पर होता है। लेकिन यदि सारथी चतुर है, तो उस सारथी पर ही 200 पण का दण्ड होता है तथा यदि सारथी चतुर नहीं है, तो उस पर सारथी की सवारी पर चढ़ने वालों पर 100-100 पण का दण्ड होता है।[163] मनु का कथन है कि यदि सारथी की असावधानी से मनुष्य मर जाय, तो उस

पर उत्तम साहस अर्थात् 1000 पण का दण्ड होता है तथा बड़े जीव ऊँट, गाय, बैल, हाथी, घोड़ा आदि के मरने पर आधा अर्थात् 500 पण का दण्ड होता है। छोटे कद के पशुओं के मर जाने पर 200 पण का दण्ड तथा शुभ मृग आरैर शुभ पक्षी मर जाने पर 50 पण का दण्ड एवं गधा, बकरी, भेड़ के मर जाने पर पांच मासे का तथा कुत्ता सुअर के मर जाने पर एक मासा चाँदी का दण्ड विहित है।[164]

झूठी गवाही सम्बन्धी अर्थदण्ड : ग्रामों के बीच सीमा के निर्धारण के विषय में झूठ बोलने वाले सीमान्तादि (समीपस्थ ग्रामवासी) में 500 पण का दण्ड निर्धारित किया है।[165] लेकिन याज्ञवल्क्य इसके लिए 540 पण का दण्ड निर्धारित किया है।[166]

चोरी करने पर अर्थ दण्ड : यद्यपि धर्मसूत्रों एवं स्मृतियों में स्तेय अपराध के सन्दर्भ में बध एवं अंगच्छेन और दग्धन जैसे कठोर दण्डों का विधान किया है। लेकिन यथावसर अपराध के अनुसार अर्थदण्ड का भी विधान है। मनु के अनुसार चोरी करने वाले शूद्र पर आठ गुना, वैश्य पर सोलह गुना, क्षत्रिय पर बत्तीस गुना, तथा ब्राह्मण पर चौसठ गुना या सौ गुना या एक सौ अठ्ठाइस गुना दण्ड होता है।[167] गौतम[168] तथा नारद169 ने इसका समर्थन भी किया। मनु ने चोरित वस्तु के आधार पर लम्बी तालिका प्रस्तुत की है। बहुमूल्य धातु एवं वस्त्र सक पण में 500 पण तक चुराने पर वस्तु की कीमत का ग्यारह गुना दण्ड विहित है।[170] सूत, कपास, वांस के बर्तन, मछली, माँस, मधु आदि 12 प्रकार के मादक द्रव्य चुराने पर दुगना दण्ड विहित है।[171] कुएँ की रस्सी या घड़ा चुराने वाले को एक माष स्वर्ण का दण्ड तथा चोरित रस्सी एवं घड़े को वापस लाने का दण्ड विहित है।[172] फूल, खेत के हरे धान, गुल्म, लता, पेड़ और पुरुष के ढोने योग्य अन्य वस्तु चुराने पर पाँच कृष्णल (एक आना) दण्ड करना चाहिए।[173] अच्छा धान्य, शाक, मूल, फल, चुराने वाला यदि परिवादी या सम्बन्धी है, तो 50 पण का दण्ड तथा साधारणतयः 100 पण का दण्ड लेना चाहिए।[174] तथा उपभोग्य सूत्रादि वस्तुओं को तथा अग्निहोत्र से त्रेताग्नि की चोरी करने वाले व्यक्ति को प्रथम साहस का दण्ड देना विहित है।[175]

व्यभिचार के परिप्रेक्ष्य में अर्थदण्ड : व्यभिचार के लिए मनु ने अर्थदण्ड का निर्धारण वर्ण व्यवस्था के आधार पर इस प्रकार की है— संरक्षित ब्राह्मणी के साथ किसी ब्राह्मण के बलात्कार पूर्वक संभोग करने पर 1000 पण और संभोग की इच्छा करने वाली के साथ संभोग करने पर 500 पण का दण्ड होता है।[176] सुरक्षित क्षत्राणी के साथ वैश्य तथा वैश्य स्त्री के साथ क्षत्रिय संभोग करे, तो 500 एवं 1000 पण

का दण्ड होता है।[177] यदि ब्राह्मण रक्षित क्षत्राणी और वैश्या के साथ व्यभिचार करे तो उसे 1000 पण दण्ड दे और क्षत्रिय तथा वैश्यरक्षित शूद्रा से रमण करे, तो उन्हें भी एक हजार पण जुर्माना देना चाहिए।[178] अरक्षित क्षत्राणी से गमन करने पर वैश्य को पाँच सौ पण दण्ड देना होगा। यदि क्षत्रिय उससे गमन करे तो गधे की पेशाब से उसके सिर के बाल मुड़ा दें तथा पाँच सौ पण का दण्ड ले।[179] यदि ब्राह्मण अरक्षित क्षत्राणी, वैश्या या शूद्रा से गमन करे, तो 500 पण का दण्ड दे और चाण्डाल स्त्री के साथ संभोग करने पर 1000 पण का दण्ड विहित है।[180] सुरक्षित ब्राह्मणी के साथ क्षत्रिय के संभोग करने पर मूत्र मुंडन तथा 1000 पण का दण्ड होता है तथा अरक्षित ब्राह्मणी के साथ संभोग करने पर मात्र 1000 पण यदि वैश्य उपर्युक्त अपराध करे तो 500 पण के दण्ड का विधान है।[181] मनु और याज्ञवल्क्य ने पति आदि के मना करने पर भी पर पुरुष से बातचीत करने वाली स्त्री पर 100 सुर्वण का दण्ड विहित है। इसी प्रकार निषेध किये जाने पर स्त्री से सम्बन्ध रखने वाले पुरुष को याज्ञवल्क्य ने 200 पण से दण्डित करने का विधान किया है।[182] किन्तु मनु ने व्यभिचार के विषय में अनिन्दित भी पुरुष को अरण्य में, घने वृक्षादि से युक्त वन में, नदी के किनारे एकान्त में परस्त्री से बातचीत करने पर 1000 पण से दण्डिनीय कहा है।[183]

कन्या सम्बन्धी व्यभिचार— कर्म के विषय में अर्थदण्ड का विधान करते हुए मनु कहते हैं कि समवर्णी, कामुक कन्या के साथ संभोग न करके, उसे दूषित करने पर पुरुष पण के दण्ड का भागीदार होता है। यहाँ पर उसका अंगुलिच्छेदन नहीं होगा, क्योंकि इस संदर्भ में "अभिविध्य" (बलपूर्वक) शब्द का प्रयोग नहीं हुआ है। कुल्लूक भट्ट के अनुसार इस अर्थदण्ड का प्रयोजन उस प्रसंग की पुनरावृत्ति को रोकना मात्र है।[184] किन्तु यदि कन्या-कन्या की योनि दूषित करे तो 200 पण राजा को दे तथा दो गुना उस लड़की के बाप को दे।[185] दोषयुक्त कन्या का दोष न बताकर दान कर देने पर 96 पण तथा द्वेष के कारण कन्या को क्षतयोनि कहने पर और दोष को न प्रमाणित करने पर 100 पण का दण्ड विहित है।[186]

गाली-गलौच (वाक्पारुष्य) के परिपेक्ष्य में अर्थदण्ड : कठोर वचन अथवा गाली गलौच के परिपेक्ष्य में मनु ने वर्णभेद के आधार पर तालिका प्रस्तुत की है। यदि कोई क्षत्रिय ब्राह्मण को कटु वचन कहता है, तो उस पर 100 पण, वैश्य पर लघुता एवं गुरुता के आधार पर क्रमशः 150 या 200 पण और इसी प्रकार यदि ब्राह्मण क्षत्रिय को कटुवचन कहे, तो 50 पण, वैश्य को कहता है तो 25 पण और

शूद्र को कहने पर 12 पण के अर्थदण्ड का विधान है।[187] मनु ने समान वर्ण वालों को आपस में गालीगलौच करने पर 12 पण तथा ज्यादा उग्र रूप करने पर दो गुना अर्थात् 24 पण का दण्ड निर्धारित किया है।[188] नारद भी ऐसी ही व्यवस्था बताते हैं।[189] मनु की एक अन्य व्यवस्था के अनुसार— यदि ब्राह्मण क्षत्रिय एक दूसरे पर पातक सम्बन्धी निन्दा करें, तो क्षत्रिय की निन्दा करने वाले ब्राह्मण पर प्रथम साहस का दण्ड और ब्राह्मण की निन्दा करने वाले क्षत्रिय पर मध्यम साहस का दण्ड होता है। इसी तरह यदि वैश्य तथा शूद्र एक दूसरे पर पातक सम्बन्धी निन्दा करे, तो उपर्युक्त साहस नियमानुसार ही शूद्र की निन्दा करने वाले वैश्य पर प्रथम साहस और वैश्य की निन्दा करने वाले शूद्र पर मध्यम साहस का दण्ड विहित है।[190] कुल्लूक भट्ट ने इससे यह आश्रय लिया है कि इस व्यव्स्था के फलस्वरूप ब्राह्मण व क्षत्रिय को शूद्र द्वारा अपशब्द कहने पर जिह्वोच्छेदन का दण्ड दिया जाना युक्ति युक्त प्रतीत होता है।[191] यथार्थ में काना, लंगड़ा, अन्धा होने पर उन्हें ऐसा कहने पर एक पण का ही दण्ड विहित करते हैं। नारद इसका समर्थन करते हैं।[192] मनु का कथन है कि श्रुत, देश जाति, कर्म को अभिमान से असत्य कहने वाले समवर्णी को 200 पण का अर्थदण्ड होता है।[193] टीकाकारों ने मनु के इस कथन पर भिन्न व्याख्यायें उपस्थित की है। मेधातिथि का मत है कि यह दण्ड विधान सभी के लिए है। परन्तु कुछ आचार्यों का मत है कि केवल शूद्र के लिए है।[194] नारायण का कहना है कि श्रुतादि के विषय में अभिमान वश कहता हुआ द्विज ही दण्डनीय है। शूद्र नहीं। उसका तो वध करना चाहिये।[195] कुल्लूक और राघवानन्द का मत है— दण्ड की लघुता होने के कारण यह दण्ड विधान समवर्णी के विषय में ही है।[196] मनु के अनुसार माता, पिता, स्त्री भाई तथा गुरू पर पातकादि दोष लगाकर निन्दा करने पर 100 पण का अर्थदण्ड होता है।[197]

मार-पीट (दण्डपारुष्य) करने पर अर्थदण्ड : मनु ने मारपीट करने के अपराध में भी वर्ण भेदानुसार अर्थदण्ड का विधान किया है। यदि समान वर्ण वाला व्यक्ति यदि मार-मार कर चमड़ी निकाल दे अथवा यदि रक्त निकाल दें, तो 100 पण का दण्ड यदि माँस निकाल दे तो छः निष्क का दण्ड होता है।[198] नारद का भी यही मत है।[199] पशुओं के प्रति भी मनु ने दण्डपारुष्य में कोई निश्चित अर्थ दण्ड का विधान नहीं किया, मनु का कथन है कि पशुओं को दुःखित करने के लिए मारने पर जैसी पीड़ा हो, उस पीड़ा के अनुसार अर्थ दण्ड का विधान होना चाहिए।[200] तथा वृक्षों आदि के फल, फूल, पत्ता तथा लकड़ी आदि का जैसा-जैसा उपभोग होता हो उनको नष्ट करने वाले अपराधी पर वैसा-वैसा ही दण्ड देना चाहिये।[201]

सम्पत्ति अपहरण : मनु ने निश्चित आर्थिक दण्ड के अतिरिक्त सम्पूर्ण या कुछ सम्पत्ति के अपहरण का विधान भी प्रस्तुत किया है। अर्थदण्ड एवं सम्पत्ति अपहरण में मूलभूत अन्तर यह है कि अर्थदण्ड में किसी अपराध विशेष के लिए निश्चित परिमाण में अर्थदण्ड का विधान होता है परन्तु सम्पत्ति अपहरण में अपराधी की समस्त या कुछ सम्पत्ति अपहृत करने की व्यवस्था होती है।

मनु ने उन राज्याधिकारियों की समस्त सम्पत्ति का अपहरण करने का विधान किया है जो उत्कोच के धन से गर्वित होकर कार्य नहीं करते हैं। इसके अतिरिक्त राजा से सम्बद्ध बिक्री योग्य मूल्यवान सामान तथा निर्यात के लिए मना किये गये पदार्थ को लोभ वश दूसरे देश में जाने वाले व्यापारी की सम्पूर्ण सम्पत्ति को राजा द्वारा अपहृत कर लेने का भी निर्देश है।[202] यदि शूद्र पति से सुरक्षित या अरक्षित द्विजाति स्त्री के साथ व्यभिचार कर्म करता है तो बध दण्ड के साथ-साथ उसकी सम्पूर्ण सम्पत्ति का अपहरण भी कर लेना चाहिए। पति आदि को सुरक्षित ब्राह्मणी के साथ मैथुन करने वाले वैश्य का भी सभी कुछ हरण कर लेना चाहिए।[203] यदि सुरक्षित ब्राह्मणी के साथ मैथुन करने वाले वैश्य एवं क्षत्रिय का भी सर्वस्व हरण करने का विधान है।[204] मनु के मतानुसार अनिच्छा पूर्वक मद्यपान, सुवर्ण चोरी तथा गुरुपत्नी के साथ संभोग में प्रवृत्त होने वाले क्षत्रियों, वैश्यों तथा शूद्रों की सम्पूर्ण सम्पत्ति का अपहरण कर लेना चाहिए।[205]

शारीरिक दण्ड : स्मृतिकार मनु ने विविध अपराधों में विभिन्न तरह के शारीरिक दण्ड सुझाये हैं। जिनका विवरण इस प्रकार है।

अङ्गच्छेदन : मनु ने अपनी दण्ड व्यवस्था में अंगच्छेदन का विधान कई अपराधों में निर्दिष्ट किया है। प्रधानतः इस दण्ड का निर्देश, व्यभिचार, चोरी एवं शूद्रों द्वारा किये गये विविध अपराधों में निमित्त किया गया है।

व्यभिचार में अंगच्छेदन : पति के द्वारा रक्षित या अरक्षित ब्राह्मणी के साथ संभोग करने वाले शूद्र को लिङ्गच्छेदन का दण्ड मनु ने विहित किया है।[206] यदि कोई ब्राह्मणेत्तर जाति का पुरुष संभोग की इच्छा न रखती हुई कन्या से संभोग करे तो उसकी लिंगच्छेदन दण्ड से दण्डित करना चाहिए। वृहस्पति ने भी उक्त दण्ड व्यवस्था में मनु का सर्मथन किया है और लिंगच्छेदन के साथ अण्डकोष काटने का भी विधान किया है।[207] यदि समवर्णी कन्या के साथ संभोग न करके, बलात् उसकी योनि को अंगुली प्रक्षेपण द्वारा दूषित करे तो उसका अबिलम्ब अंगुलि विच्छेदन कर देना चाहिये।[208] मनु ने किसी कन्या की योनि को अंगुलिप्रक्षेपण द्वारा दूषित करने

वाली स्त्री को अंगुलि काटने तथा सिर मुंड़ाकर गधे पर घुमाने की व्यवस्था दी है।[209] अभिमानवश परपुरुष के साथसंगति करके पति का अपमान करने वाली स्त्री के लिए कुत्ते से नुचवाने का दण्ड निर्धारित किया है।[210] गौतम प्रायश्चित्त न करने पर इसे आरोपित करते हैं।[211]

चोरी के अपराध में अंगच्छेदन : स्मृतिकार मनु ने स्तेय के विषय में प्रतिपादित किया, कि चोर जिस अंग से चोरी तथा सेंध मारना आदि दुष्कर्म करें, फिर वैसा न कर सके, अतः चोर के उस अंग विशेष को कटवा दें।[212]

नारद भी ऐसा ही नियम प्रतिपादित करते हैं।[213] मनु एवं याज्ञवल्क्य ने जेबकतरों (पॉकेटधिक) को प्रथमबार पकड़ने पर अंगूठा एवं तर्जनी कटवा देने का निर्देश दिया है तथा दूसरी बार पकड़ने पर एक हाथ तथा एक पैर काटने का विधान किया है।[214] मनु ने रात में सेंध मारकर चोरी करने वाले चोर के लिए दोनों हाथों को कटवाकर शूली पर चढ़ाने का विधान किया है।[215(अ)] मनु ने ब्राह्मण की गाय चुराने पर, बन्ध्या गाय कोलाबने के लिए नाथने पर और यज्ञार्थ लाये गये बकरे आदि पशु चुराने पर चोर का आधा पैर कटवा देने का विधान किया है। मनु ने कुछ बहुमूल्य वस्तुओं को 50 पण से अधिक 100 पण तक चुराने वाले का हाथ काटने का दण्ड विहित किया है।[215(ब)]

शूद्र के अपराधों में अंगच्छेदन : मनु के शूद्र द्वारा द्विज को मारने पर उस अंगविशेष के छेदन कराने का विधान किया है। यदि हाथ उठाकर या डण्डे से मारे तो हाथ काट लेना चाहिए और पैर से मारने पर, पैर काट लेना चाहिए।[216] जुआ खेलने वाले तथा यज्ञोपवीत धारण करने वाले शूद्रों के भी हस्तादि कटवाने का विधान है। यदि काई शूद्र ब्राह्मण के साथ उसी आसन पर बैठने की इच्छा करता है तो उसके कमर में तप्त लौह का छड़ से अंकित कर राज्य से निकाल देना चाहिए अथवा उसके नितम्ब को इस प्रकार काटे की वह मरने न पाये।[217] विष्णु धर्म सूत्र में भी इसका उल्लेख है।[218] इसी प्रकार शूद्र यदि अभिमान वश ब्राह्मण के ऊपर थूकता है तो उसके दोनों ओष्ठों को, मूत्र फेंकने के द्वारा तिरस्कृत करता है तो उसकी मूत्रेन्द्रिय को और अपानवायु के द्वारा अपमानित करता है तो उसकी गुदा को कटवा देना चाहिए तथा अंहकारवश ब्राह्मण के बालों, पैरों, दाढ़ी, ग्रीवा और अण्डकोष पकड़ता है तो पीड़ा के विषय में विचारे बिना अबिलम्ब शूद्र के दोनों हाथों को काट डाले। नारद तथा वृहस्पति ने मनु का समर्थन किया है।[219] मनु (8/281) के कथन में आये "उत्कृष्टस्य" और "अपकृष्टजः" पदों के आधार पर विभिन्न टीकाकारों ने विभिन्न मत दिये हैं। मेधातिथि, कुल्लूक भट्ट तथा गोविन्दराज के अनुसार यह

विधान ब्राह्मण और शूद्र के विषय में है, जबकि राघवानन्द इसे शूद्र और आर्य के विषय में मानते हैं।[220]

जो अल्पज्ञान के आधार पर ब्राह्मण को यह उपदेश दे कि "यह तुम को इस प्रकार करना चाहिए" ऐसे शूद्र के मुख तथा कानों में गर्म तेल डाल देना चाहिए ऐसा मनु एवं नारद दोनों का मत है।[221] शूद्र द्वारा ब्राह्मण पर महापातकों का आरोप लगाने पर तथा दारुण वाणी से पीड़ित करने पर उसके जिह्वाच्छेदन का विधान मनु ने किया है।[222] नारद भी इसका उल्लेख करते हैं।[223] उपर्युक्त विवरण के आधार पर यह निष्कर्ष निकलता है कि शूद्र को अंगच्छेदन जैसे यातनामय दण्ड देने का आधार "जघन्यप्रभवो हि सः" है। मेधातिथि का कहना है कि "जघन्यत्रभव" पद का प्रयोग मनु ने "प्रतिलोमो" को भी ग्रहण करने के लिये किया है। क्योंकि वे भी जघन्यप्रभव ही हैं।[224] विवादरत्नाकर का मत है कि उक्त विधान के अनुसार संकरजाति वाले व्यक्तियों को भी द्विजातियों पर दारुण आपेक्ष करने पर यही दण्ड मिलता है।[225]

ताड़न : धर्मशास्त्रों में कर्तव्य पूरा न करने वाले और श्रमजीवियों को ताड़न के दण्ड का पात्र माना गया है। स्मृतिकार मनु ने भी इस दण्ड प्रकार से दण्डित करने का विधान किया है। यदि कोई कन्या, किसी कन्या की योनि में अंगुलि प्रक्षेपण करें तो उस अपराधी कन्या को दस कोड़े या वेत से ताड़ित (पीटना) करना चाहिए।[226] मनु का कथन है कि सपत्नी, पुत्र, दास, नौकर और सहोदर भाई को उनके दुर्व्यवहार के लिए शारीरिक दण्ड देने का निषेध किया है, किन्तु शिक्षार्थ दण्ड देना अनिवार्य ही हो, तो पतली छड़ी या रस्सी ही उनकी पीठ पर ताड़ित करने का विधान किया गया है, किन्तु मस्तक या सिर पर नहीं।[227] अर्थदण्ड देने में असमर्थ स्त्री, बालक, उन्मत्त, बृद्ध, रोगी मनुष्यों को पेड़ों की या बांस की छड़ी से ताड़ित करने का विधान किया है।[228]

दग्धन-अङ्कन : प्राचीन समाज में दग्धन एवं अंकन भी शारीरिक दण्ड के रूप में प्रचलित था। मनु ने गुरुपत्नी के साथ संभोग करने वाले के ललाट पर भग का चिह्न तथा ब्रह्म हत्या के लिए अपराधी के मस्तक पर मनुष्य के धड़ का चिह्न तप्तलोहे से अंकित करने का विधान किया है, तथा मद्यपायी एवं ब्राह्मण के सुवर्ण चोरी करने पर सुरापात्र एवं कुत्ते के पैर का चिह्न अंकित करने का विधान किया है।[229] व्याभिचारी पुरुष को लोहे की तप्त खाट पर लिटाकर लकड़ी डालकर जलाने का विधान बताया है।[230] इसके अतिरिक्त यदि वैश्य व क्षत्रिय अभिरक्षित एवं गुण्वती ब्राह्मणी से मैथुन करें तो वे शूद्र के समान दण्डनीय है। अतः उन्हें तुषाग्नि से जलाना

चाहिए। मनु एवं नारद के अनुसार यदि कोई नीच जाति का मनुष्य ब्राह्मण आदि उच्च जाति के व्यक्ति के साथ बैठ जाय तो उसकी कमर तप्तलौहखण्ड से दग्ध कर देनी चाहिए।[231]

कारागार (निग्रह) : धर्मशास्त्रों के अनुशीलन से ज्ञात होता है कि दण्ड-स्वरूप बन्धन (निग्रह) की व्यवस्था भी थी। मनु का कथन है कि जो अधार्मिक हो अर्थात् चोर आदि हों, उन्हें तीन उपायों से नियमित करना चाहिए— निरोध द्वारा बन्धन तथा विभिन्न प्रकार के बधों द्वारा।[223] मनुस्मृति के टीकाकार कुल्लूक के अनुसार निरोध से तात्पर्य कारागर प्रवेश, बन्ध से तात्पर्य (बेड़ी, हथकड़ी) आदि के बन्धन तथा वध से तात्पर्य पीटने, हाथ पैर काटने आदि नाना प्रकार की हिंसाओं से है।[223] मनु ने सभी प्रकार के कारागारों को राजमार्ग पर बनाने का विधान किया है, जिससे भूख प्यास से व्याकुल, दाड़ी, मूँछ आदि से विकृत पापी बंदियों को लोग प्रत्यक्ष देख सकें।[234] कुल्लूक के अनुसार ऐसा करने से अन्य लोग भयवश अपराध वृत्ति से निवृत्ति की ओर उन्मुख होगा।[235] धर्मशास्त्रों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि बन्धन अथवा कारागार विविध प्रकार के होते हैं। उदाहरणार्थ— सावधि कारागार, आजीवन कारावास, एवं निस्संग (एकाकी) कारावास। मनु के अनुसार पति से सुरक्षित ब्राह्मणी के साथ संभोग करने पर वैश्य को एक वर्ष का निग्रह दण्ड देने का विधान है।[236]

मृत्यु दण्ड : मृत्यु दण्ड दण्ड प्रक्रिया की चरमदण्ड है। सामाजिक एवं राजनैतिक दृष्टि से जघन्य अपराधियों के लिए इस दण्ड की व्यवस्था धर्मशास्त्रों से परिलक्षत होती है। मृत्यु दण्ड की व्यवस्था सामान्यतः अपराध की गम्भीरता पर निर्भर करती है। मनु ने सर्वप्रथम वाग्दण्ड, तदन्तर धिग्दण्ड तत्पश्चात् धन दण्ड और सबसे अंत में मृत्यु दण्ड का विधान है।[237] यदि अपराधी न नियमित हो, तो ये सभी दण्ड दिये जा सकते हैं।[238] मनु ने सामान्यतः मृत्युदण्ड को दो भागों में विभाजित किया है। (1) चित्रबध— जिसमें अपराधी को अधिक से अधिक शारीरिक कष्ट देकर मृत्यु दण्ड दिया जाता है। तथा (2) शुद्धबध— जिसमें अपराधी को किसी प्रकार का उत्पीड़न ने देकर एक बार में ही मृत्यु प्रदान कर दी जाती है।[239] मनु ने निम्नांकित स्थितियों में मृत्युदण्ड का विधान किया है।

हत्या के लिये मृत्यु दण्ड : मनु का कथन है कि इच्छा पूर्वक ब्राह्मण की हत्या करने वाले के लिए मृत्यु दण्ड दिया जाना चाहिए।[240] यदि शूद्र ब्राह्मण को पीड़ित करे तो उसे वध दण्ड देना चाहिए।[241]

व्यभिचार के लिए मृत्यु दण्ड : मनु ने न चाहती हुई ब्राह्मणी के साथ संभोग करने पर वध दण्ड का विधान किया है।[242] मेधातिथि ने अब्राह्मण का अर्थ ''क्षत्रियादि'' लिया है। जबकि कुल्लूक ने दण्ड की अधिकता के कारण शूद्र लिया है,[243] जो स्र्वथा उचित प्रतीत होता है। मनु के साथ याज्ञवल्क्य का कथन है कि यदि हीनवर्णी पुरुष अपने श्रेष्ठ वर्ण की कन्या से संभोग करता है, चाहे वह सकामा हो, तो भी प्राणदण्ड देना चाहिए।[244] मनु, याज्ञवल्क्य और नारद ने विमाता, मौसी बहिन बधु, गुरुपत्नी, सगौत्रा, शरणागता के साथ व्यभिचार करने पर प्राण दण्ड का 1विधान किया है। यदि स्त्री की सम्मति हो, उसे भी प्राण दण्ड दे देना चाहिये।

मनुस्मृति 11/170, 171— याज्ञवल्क्य स्मृति 3/232-233, नारदस्मृति— 15/73-75. मनु ने द्विज स्त्री के साथ संभोग करने पर अन्य दण्डों के साथ मृत्यु दण्ड का विधान किया है।[245]

चोरी के लिए मृत्यु दण्ड : मनु ने चुराई गई सम्पत्ति एवं सेंध मारने के उपकरणों द्वारा चोरी प्रमाणित हो जाने पर मृत्युदण्ड का विधान दिया है।[246] यहाँ तक कहते हैं कि जो कोई चोर को भोजन तथा चोरी चोरी करने के उपकरण आदि दे तो राजा उसको भी बध दण्ड दें।[247] मनु ने चोरों के हाथ पैर से कुचलकर मारने की दण्ड तिथि भी प्रतिपादित की है।[248] मनु के साथ-साथ नारद एवं गौतम ने स्तेय अपराध के संदर्भ में एक अन्य प्रकार के मृत्युदण्ड का विधान किया है— चोर मूसल सिर पर रखकर राजदरबार में प्रवेश करे और अपना अपराध स्वीकार करे। तत्पश्चात् राजा उस मूसल से इस प्रकार चोर पर प्रहार करे कि वह मर जाय।[249] काँटे से तौलने योग्य सोना चाँदी आदि तथा उत्तम वस्त्र 100 पण से अधिक चुराने वाले के लिए बध दण्ड का विधान मनु ने किया है।[250] इसी प्रकार श्रेष्ठ कुल में उत्पन्न स्त्रियों को, बहुमूल्य रत्नों की चोरी करने वाले वधदण्ड का पात्र माना है।[251]

अन्य अपराधों में मृत्यु दण्ड : मनु के अनुसार, राजा राज्य के अन्न भण्डार, शस्त्रागार तथा देवमंदिर, तोड़ने वाले, घोड़ा हाथी और रथ चुराने वाले को बिना विचारे वध करे।[252] इसी प्रकार जो मनुष्य नहीं जमने वाले बीज को बीज कहकर बेचे तथा अच्छे बीज में दूषित बीज मिलाकर बेचे, और सीमा को नष्ट करे, उसे विकृत वध से दण्डित करे।[253] मनु के मतानुसार यदि गुरु, बालक, वृद्ध, अथवा बहुश्रुत ब्राह्मण भी यदि आत्तायी बनकर आये तो उसे मार देना चाहिए।[254] मद्यपायी, सुवर्ण चुराने वाले, गुरुपत्नी के साथ संभोग करने वाले के लिए मृत्यु दण्ड विहित है।[255]

शूद्र के अपराध में मृत्यु दण्ड : मनु का मत है कि यदि शूद्र ब्राह्मणी को कटुवचन कहे तो उसका वध कर देना चाहिए।[256] मनु का कथन है कि "तात् सर्वान् घातयेद्राजा शूद्रांश्च द्विजलिङ्गः।"[257]

राज्य-निर्वासन व विडम्बन : विडम्बन का अर्थ सामाजिक तिरस्कार है। मनु के साथ-साथ याज्ञवल्क्य एवं नारद ने साहस के अपराधी ब्राह्मण को शिरोमुण्डन, नगर निर्वासन, मस्तक पर विभिन्न चिह्नों के अंकन तथा गर्दभारोहरण के दण्ड का विधान किया है।[258] ब्राह्मण अवध्य हैं।

समीक्षा

प्रस्तुत अध्याय में मनु द्वारा प्रतिपादित विविध सामाजिक विषयों की विवेचना की गई है। वस्तुतः संक्रमण कालीन उस समय के भारतीय समाज की परिस्थितियों के परिवेश में इस तरह का विधान अत्यन्त आवश्यक था। मनुष्य जीवन के व्यक्तिगत एवं पारस्परिक कर्तव्यों से लेकर सम्पूर्ण सामाजिक आचरण अथवा कार्य— व्यवहार का ताना-बाना मनुस्मृति में मिलता है। पिता-पुत्र, पति-पत्नी, पुत्री, कन्या, स्त्री एवं गुरु-शिष्य के सम्बन्धों की पूरी आचरण आश्रम व्यवस्था एवं विविध संस्कारों का प्रतिपादन अत्यन्त ही सार्थक रूपेण किया गया है। इतना ही नहीं विहित विधान के विरुध आचारण करने पर अपराध के अनुरूप समुचित दण्ड का प्रावधान भी मनु ने समीचीन रूप से किया है। मद्यपान, चोरी-डकैती, बलात्कार, व्यभिचार एवं द्यूत (जुआ) सट्टेबाजी इत्यादि तो वर्तमान सामाजिक परिप्रेक्ष्य में भी उतने ही ज्वलन्त हैं, जितने मनुस्मृति के प्रतिपादित है। वर्तमान में "मनुस्मृति" को लेकर विद्वज्जनों में काफी विवाद हो रहा है। वस्तुतः इसके मूल में मनुस्मृति का एकाङ्गी मूल्याकंन है। मनु स्मृति में वर्णित "ब्राह्मण" आधुनिक जातिसूचक नहीं था बल्कि वह एक प्रकार की जीवन पद्धति का सूचक था। और समाज के दिशानिर्देशक विचारक (थिन्क-टैन्क) का कार्य करता था। प्रकारान्तर से वह बुद्धिजीवीवर्ग इन्टैलीजेंशिय का प्रतिनिधित्व करता था। इसी प्रकार पूर्णसामाजिक व्यवस्था "कार्य" पर आधारित होने से गतिशील थी। कालान्तर में इसमें शिथिलता आने से कई दोष उत्पन्न हो गये। अतः मनुस्मृति के सामाजिक प्रतिपाद्यों को यदि हम स्वस्थ मानसिकता के साथ मूल्यांकित करें तो वर्तमान संदर्भों में इसकी सार्थकता स्वतः ही सम्पुष्ट हो जायेगी।

सन्दर्भ

1. श्रुतिस्तु वेदो विज्ञेयो धर्मशास्त्रं तु वै स्मृतिः। मनुस्मृति 2/10
2. "But fundamentally the Dharmashastra contains a statement of principles of social of man applicable at all times and in all climates and therefore has a universal significance, its teaching are aimed at the homo sapiens,the human race, the manavas, as a whole."—Kewal Motivani, Manu Dharmashastra.
3. स्वक्षेत्रे संस्कृतायां तु स्वयमुत्पादयेद्धियम्।
   तमौरसं विजानीयात्पुत्रं प्रथमकल्पितम्।। मनुस्मृति 9/166
4. आपस्तम्ब धर्मसूत्र 2/13/1
5. बौधायन धर्मसूत्र 2/21/4
6. एकं एवौरसः पुत्रः पित्र्यस्य वसुनः प्रभुः।
   शेषाणामानृंशस्यार्थं प्रदद्यास्तु प्रजीवनम्।। मनुस्मृति 9/163
7. यस्तल्पजः प्रमीतस्य क्लीवस्य व्याधितस्य वा।
   स्वधर्मेण नियुक्तायां स पुत्रः क्षेत्रजः स्मृतः।। मनुस्मृति 9/167
8. आपस्तम्ब धर्मसूत्र 2/13/5-7
9. मनु स्मृति-9/64/68
10. माता पिता च दधातां यमद्भिः पुत्रमापदि।
    सदृशं प्रीतिसंयुक्तं स ज्ञेयो दत्रिमः सुतः।। मनुस्मृति 9/168
11. सदृशं तु प्रकुर्यायं गुणदोष विवक्षणम्।
    पुत्रं पुत्रगुणैर्युक्तं स विज्ञेयश्च कृत्रिमः।। मनुस्मृति 9/169
12. उत्पधते गृहे यस्य न च ज्ञायेत्र कस्य सः।
    स गृहे गूढ़ उत्पन्नस्तस्य स्याद्यस्तरेण वा ।। मनुस्मृति 9/170
13. माता पितृभ्यामुत्सृष्टं त्रयोस्तरेण वा।
    यं पुत्रं परिगृह्यीरग्दपविद्धः स उच्यते।। मनुस्मृति 9/171
14. पितृवेश्मनि कन्या तु यं पुत्रं जनयेद्रहः।
    तं कानीनं वदेन्नाम्ना वौढुः कन्यासमुभदवम्।। मनुस्मृति 9/172
15. या गर्भिणी संस्क्रियते साताज्ञातापि वा सती।
    वोढुः स गर्भो भवति सहोढ़ इति चोच्यते।। मनुस्मृति 9/173
16. क्रीणीयाद्यस्त्वपत्यार्थं माता पित्रोर्यमन्तिकात्।
    स क्रीतकः सुतस्तस्य सदृशोऽसृदृशो पित्र वा।। मनुस्मृति 9/174
17. या पत्या वा परित्यक्ता विधवा वा स्वयेच्छया।
    उत्पादयेत्पुनर्भूत्वा स पौनभर्व उच्यते।। मनुस्मृति 9/175
18. माता पितृविहीना यस्त्यत्क्तो वा स्यादकाषात्।
    आत्मानं स्पर्शयेद्यस्मै स्वयंदत्तस्य स स्मृतः ।। मनुस्मृति 9/177

19. यं ब्राह्मणस्तु शूद्रायां कामादुत्पादयेत्सुतम्।
स पारयन्नेव शूद्रास्तुस्पारशवः स्मृतः ।। मनुस्मृति 9/178
20. अर्थशास्त्र 12/30
21. पौत्रदौहित्रयोर्लोके विशेषो नापपद्यते।
दौहित्रोऽपि ह्यमुत्रैनं संताश्यति पौत्रवत्।। मनुस्मृति 9/139
22. उपाध्यायाद्दशाचार्य आचार्यणां शतं पिता।
सहस्त्रं तु पितृन्माता गौरवेणातिरिच्यते।। मनुस्मृति 2/145
23. याज्ञवल्क्य स्मृति 123
24. यथैवात्मा तथा पुत्रः पुत्रेण दुहिता सभा।
तस्याभात्सनि विष्ठन्त्यां कथमन्यो धनं हरेत्।। मनुस्मृति 9/130
25. नारद दायभाग— 50
26. बृहस्पति स्मृति, अपरार्क द्वारा उद्धृत, पृष्ठ 746
27. कौटिल्य 3/2/10/11
28. भार्या पुत्रश्च दासश्च प्रेष्यो भ्राता च सोदर :।
प्राप्ता पराधास्ता याः स्यू रज्जवा वेणुदलेन वा।। मनुस्मृति 8/299
29. पृष्ठवस्तु शरीरस्य नोत्तभाङ्गे. कथर्चन।
अतोऽन्यथा तु प्रहरन्प्राप्तः स्याच्चौरकिल्विषम्।। मनुस्मृति 8/300
30. क्रीडां शरीर संस्कारसमाजोत्सबदर्शनम्।
हास्यं परगृहे यानं त्ययेत् प्रोषित्भर्तृका।। याज्ञवल्क्यस्मृति 1/85
31. न भ्रातरो न पितरः------एवच।। मनुस्मृति 9/185
32. अनपत्यस्य पुत्रस्य माता------हरेद्धनम्।। मनुस्मृति 9/17
33. बौ० धर्मसूत्र 1/5/114, 114
34. गौतम धर्मसूत्र 18/21
35. अलंकारं नाददीत पित्रयं कन्या स्वयंवरा।
मातृकं भ्रातृदव्यं वा स्तेना स्याद्यदितं हरेत्।। मनुस्मृति 9/92
36. त्रिंशद्वर्षोद्विहेत्कन्यां हृवां द्वादशवार्षिकीम्।
त्र्यष्टवर्षोऽष्टवर्षा वा धर्मे सीदति सत्वरः।। मनुस्मृति 9/94
37. गौतम धर्म सूत्र 28/25
38. कौटिल्य-अर्थशास्त्र-3/5
39. अध्यग्नध्यावाहनिकं दत्तं च प्रीतिकर्मणि।
भ्रातमातृषितृप्राप्तं षड्विधं स्त्रीधनं स्मृतम्।। मनुस्मृति 9/194
40. नारद, दायभाग जीमूतगहन कृत-48
41. विष्णुधर्मसूत्र 17/18
42. पितृमातृपतिभ्रातृदत्तमध्यग्न्युपागतम्।
आधिवेदनिकाद्यं च स्त्रीधनं परिकीर्तितम्।। याज्ञवल्क्य स्मृति-2/143
43. अतीतायाम प्रजसि वान्धवास्तदवाप्नुयुः ।। याज्ञवल्क्य स्मृति 2/144
43. विज्ञानेश्वर कृत मिताक्षरा। याज्ञवल्क्य स्मृति 2/143

44. दायभाग जीमूतवाहन कृत पृ० 76
45. न निहरिं स्त्रियः कुर्युः कुटुम्बाद् बहुमध्यागात्।
स्वकादपि च वित्तादि स्वस्य भर्तुरनाज्ञया।। मनुस्मृति 9/199
46. वेद-पदानादाचार्य पितरं परिचक्षते।
नह्यस्मिन्युज्यते कर्म किंचिदा मौञ्जिवन्धनात्।। मनुस्मृति 2/171
47. शय्यासनेऽध्याचरिते श्रेयसा न समाविशेत्।
शय्यासन-स्थश्र्व्यैवैनं प्रत्युत्थायाभ्विादयेत्।। मनुस्मृति 2/119
48. अध्येष्माणं तु गुरूर्नित्यकालमतन्द्रितः।
अधीष्ठंव ओ इति सूर्याद्विरामोऽस्त्विति चारमेत्। मनुस्मृति 2/73
48क. ब्रह्मणः प्रणवं कुर्यादादावन्ते च सर्वदा।
स्रवत्यनोकृते पूर्वं पुरस्ताच्च विशीर्यति।। मनुस्मृति 2/84
49. चौछितो गुरुणा नित्यमप्रचोदित एव वा।।
कुर्यादद्वययने यत्नमाचार्यस्य हितेषु च।। मनुस्मृति 2/191
शरीरं चैव वाचं च बुद्धीन्द्रियमनांति च।
नियम्य प्राञ्जलिस्तिष्ठे द्वीक्षमाणो गुरोर्मुखम्।। मनुस्मृति 2/192
आसीनस्य स्थितः कुर्यादमिगच्छंस्तु तिष्ठवः।
पत्युद्गम्य त्वाव्रजतः पश्चाद्धायंस्तु धावतः।। मनुस्मृति 2/196
50. मनुस्मृति 10/4-23
51. मनु स्मृति— 1/93 तथा
वैशेष्यात्प्रकृतिश्रैष्ठयान्नियमस्य धारणात्।
संस्कारस्य विशेषाच्च वर्णानां ब्राह्मणः प्रभुः।। मनुस्मृति 10/3
52. अधीरयीरंस्त्रयो वर्णाः स्वकर्मस्था द्विजातयः।
प्रब्रूयादब्राह्मणस्त्वेषां नेतराविति निश्चयः ।। मनुस्मृति 10/1
53. अध्यापनमध्ययनं यजनं याजनं तथा।
दानं प्रतिगृहं ब्राह्मणानामकल्पयत्।। मनुस्मृति 1/88
54. प्रजानां रक्षणं दानमिज्याध्ययनमेव च।
विषयेष्वप्रसक्तिश्च क्षत्रियस्य समासतः।। मनुस्मृति 1/89
55. पशूनां रक्षण दानमिज्याध्ययनमेव च।
वणिक्पथं कुशीदं च वैश्यस्य कृषिमेव च।। मनुस्मृति 1/90
56. एकमेव तु शूद्रस्य प्रभुः कर्म समादिशत्।
एतेषामेव वर्णानां शुकूषामनसूयया।। मनुस्मृति 1/91
57. सर्वेऽपि क्रमशस्त्वेते यथाशास्त्रं निषेविताः।
यथोक्तकारिणं विप्रं नयन्ति परमां गतिम्।। मनुस्मृति 6/88
58. षट्विंशदान्दिकचर्य गुरौ त्रैवेदिकं ब्रतम्।
वेदार्थकं पादिकं वा ग्रहणान्तिकमेव वा।। मनुस्मृति 3/1
59. वसीत चर्मचीरं वा सायं स्नायात्प्रगे तथा।
जटाश्च विभृयान्नित्यं श्मनुलोमनखानि च।। मनुस्मृति 6/6

60. स्वाध्याये नित्यमुक्तिः स्याद्दान्तो मैत्र समाहितः।
दाता नित्यमनादाता सर्वभूतानुकम्पकः ।। मनुस्मृति 6/8
61. वेद प्रदानादाचार्य पितरं परिचक्षते।
नह्यस्मिन्युज्यते कर्म किचिदाभौज्जबन्धनात्।। मनु० 2/171
62. चोदितो गुरुणा नित्यप्रचोदित एव वा।
कुर्यादध्ययने यत्नमाचार्यस्य हितेषु च।। मनु० 2/191
प्रतिश्रवणसंभाषे शयानो न समाचरेत्।
नासीतो न च भुज्जानो न तिष्ठन्तो परामुखम्।। मनुस्मृति 2/199
63. यथा वायुं समाश्रित्य वर्तन्ते सर्वजन्तवः।
तथा गृहस्थमाश्रित्य वर्तन्ते सर्व आश्रमाः।। मनुस्मृति 3/77
यस्मान्त योऽप्याश्रमिणो ज्ञानेनान्नेन चान्वहम्।
गृहस्थेनैव धार्यन्ते तस्माज्जयेष्ठाश्रमो गृही।। मनुस्मृति 3/78
64. गृहस्थस्तु यदा पश्येद्वलीपलितमात्मनः।
अपत्यस्यैव चापत्यं तदारण्यं समाश्रयेत्।। मनुस्मृति 6/2
65. वनेषु च विद्वत्यैवं तृतीयं भागमायुषः।
चतुर्थमायुषो भागं त्यक्त्वा सङ्गान्तपरिव्रजेत्।। मनुस्मृति 6/33
66. संत्यज्य ग्राम्यमहारं सर्वं चैव परिच्छदम्।
पुत्रेषु भार्यां निक्षिप्य वनं गच्छेत्सहैव सः।। मनुस्मृति 6/3
67. मुन्यन्नैर्विविधैर्मेध्येः शाकमूलफलेन वा।
एतानेव महायज्ञान्निर्वपेद्विधिपूर्वकम्।। मनुस्मृति 6/5
68. यद्भक्ष्यं स्यान्ततो दधाद्वलिंक भिक्षां शक्तिः।
अम्मूलफलभिक्षामिरर्चयेदाश्रभागतान्।। मनुस्मृति 6/7
69. स्वाध्याये नित्ययुक्तः स्याद्दान्तो मैत्रः समाहितः।
दाता नित्यमनादाता सर्वभूतानुकम्पकः।। मनुस्मृति 6/8
70. एक एव चरेन्नित्यं सिद्धयर्थमसहायवान्।
सिद्धिमेकस्य संपश्यन्न जहाति न हीयते।। मनुस्मृति 6/42
71. आश्रमादाश्रमं गत्वा हुतहोमो जितेन्द्रियः।
भिक्षावलि परिश्रान्तः प्रब्रजन्प्रेत्य वर्धते।। मनुस्मृति 6/34
72. वनेषु च विहृत्यैवं तृतीयं भागमायुषः।
चतुर्थमायुषो भागं त्यक्त्वा सङ्गन्परिब्रजेत्।। मनुस्मृति 6.33
73. जन्मना जायते शूद्रः संस्कारादि द्विज उच्यते।। मनुस्मृति।
74. ऋतुः स्वाभाविकः स्त्रीणां रात्रयः षोडश स्मृताः।
चतुर्भिरितरैः सार्धमहोभिः सदिगर्हितेः।। मनुस्मृति 3/42
75. याज्ञवल्क्य स्मृति1/76
76. युग्मासु पुत्रा जायन्ते स्त्रियोऽयुग्मासु रात्रिषु।
तस्माद्युग्मासु पुत्रार्थी संविशेदार्तवे स्त्रियम्।। मनुस्मृति 3/42

77. तासामाद्याश्चप्रस्तु निन्दितैकादशी च यां।
त्रयोदर्शी च शेषास्तु प्रशस्ता दश रात्रयः।। मनुस्मृति 3/47
77 क. प्राइंमनाभिवर्धनात्पुंसो जातकर्म विधीयते।
मन्त्रवत्प्राशनं चास्य हिरण्यमधुसपिधाम्।। मनुस्मृति 2/29
78. मंगल्यं ब्रह्मणस्य स्यात्क्षत्रियस्थ बलान्वितम्।
वैश्यस्य धनसंयुक्ते शूद्रस्य प्रेष्यसंयुतम्।। मनुस्मृति 2/31
शर्भवद्ब्राह्मणस्य स्याद्राक्षो रक्षासमन्वितम्।
वैश्यस्य पुष्टिसंयुक्तं शूद्रस्य प्रेष्यसंयुतम्।। मनुस्मृति2/32
79. स्त्रीणां सुखोद्यमकूरं विस्पष्टार्थ मनोहरम्।
मङ्गल्यमदीर्घवर्णान्तमाशीबार्दामिधानवत्।। मनुस्मृति 2/33
80. चतुर्थे मासि कर्तव्यं शिशोर्निष्क्रमणं गृहात्।
षष्ठेऽन्नप्राशनं मासि यद्वेष्टं मङ्गलं कले।। मनुस्मृति 2/34
81. वही— मनुस्मृति 2/34
82. चूड़ाकर्म द्विजातीनां सर्वेषामेव धर्मतः।
प्रथमेऽब्दे तृतीय वा कर्तव्यं श्रुतिचोदनात्।। मनुस्मृति 2/25
83. मातुरग्रेऽधिजननं द्वितीयं मौञ्जिबन्धने।
तृतीय यज्ञदीक्षायां द्विजस्य श्रुतिचोदनात्।। मनुस्मृति 2/169
84. गर्भाष्टमेऽव्दे कुर्वीत् ब्राह्मणस्योपनायनम्।
गर्भदिकादशे राज्ञो गर्भान्तु द्वादशे विशः।। मनु०2/36
85. केशान्तः षोडशे वर्षे ब्राह्मणस्य विधीयते।
राजन्यबन्धोर्द्वाविंशे वैश्यस्य द्वयधिके ततः।। मनुस्मृति 2/65
86. वैवाहिको विधिः स्त्रीणां संस्कारों वैदिकःस्मृतः।
पतिसेवा गुरौ वासो, गृहार्थोग्निपरिक्रमा।। मनुस्मृति 2/67
87. अमन्त्रिका तु कार्येयं स्त्रीणामावृदशेषतः।
संस्कारार्थं शरीरस्य यथाकालं यथाक्रमम्।। मनुस्मृति 2/66
88. आचाराल्लभते ह्यायुराचारादीस्तिमाः प्रजाः।
आचाराद्धनमक्षय्यामाचारों हन्त्यलक्षणम्।। मनुस्मृति 1/156
89. सर्वलक्षणहीनोऽपि यः सदाचारवान्नरः।
श्रद्धधानोऽनसूयश्च शतं वर्षाणि जीवति।। मनुस्मृति 4/158
90. श्रुतिस्मृत्युदितं सम्मीडनबद्धं स्वेषु कर्मसु।
धर्ममूलं निषेवेह सदाचारमत्रान्द्रितः मनुस्मृति 4/155
91. आचारः परमो धर्मः श्रुत्युक्तः स्मार्त एव च।
तस्मादस्मिन्सदा युक्तो नित्यं स्वादात्मवान्द्विज।। मनुस्मृति 1/108
92. आचाराद्विच्युतो विप्रो न वेदफलमश्नुते।
आचारेण तु संयुक्तः सम्पूर्णफलभाग्यवेत्।। मनुस्मृति 1/109
93. एकमाचारतो दृष्ट्वा धर्मस्य मुनयो गतिम्।

सर्वस्य तपसो मूलमाचारं जगृहुंः परम्।। मनुस्मृति 1/110

94. द्यूतं च जनवादं च परिवादं तथानृतम्।
स्त्रीणां च प्रेक्षगालम्भमुपधातं परस्य च।। मनुस्मृति 2/179

95. वर्जयेन्मधुमांसे च गन्धं माल्यं रसान्स्त्रियः।
शुक्तानि यानि सर्वाणि प्राणिनां चैव हिंसनम्।। मनुस्मृति 2/177

96. अभ्यङ्गमन्जनं चाक्षणोरूपानच्छत्रधारणम्।
कामं क्रोधं च लोभं नर्तनम् गीतवादनम्।। मनुस्मृति 2/178 तथा मनुस्मृति 2/179

97. एकः शयीत सर्वत्र न रेतः स्कन्दयेत्क्वचित्।
कामाद्धि स्कन्दयन्वेवी हिनस्ति ब्रतमात्मनः।। मनुस्मृति 2/180

98. स्वप्ने सिक्ढवा ब्रह्मचारी द्विजः शुक्रमकामतः।
स्नात्वार्कमर्चयित्वा त्रिः पुनर्मामित्वृचं जयेत्।। मनुस्मृति 2/181

99. अहिंसयवै भूतानां कार्यं श्रेयोनुशानम्।
वाक्यचैव मथुरा श्लक्ष्णा प्रयोज्या धर्ममिच्छता।। मनुस्मृति 2/159

100. प्राणिनां चैवहिंसनम्।। मनुस्मृति 2/177 तथा मनुस्मृति 4/162

101. गुरुपत्नी तु युवतिर्नाभिवाधेह पादयोः।
पूर्ण विंशतिवषेण गुणदोषौ विजानता।। मनुस्मृति 2/212

102. स्वभाव एष नारीणां नराणामिह दूषणम्।
अतोऽर्थान्नि प्रमाद्यन्ति प्रभदासु विपश्चितः ।। मनुस्मृति 2/213

103. अविद्वांसमलं लोके विद्वांसमपि वा पुनः।
प्रमदा ह्युत्पथं नेतुं कामाक्रोधवशानुशम्।। मनुस्मृति 2/14

104. मात्रा स्वस्त्रा दुहित्रा वा न विविक्तासनो भवेत्।
बलवानिन्द्रियग्रामो विद्वांसमपि कर्षति।। मनुस्मृति 2/215

105. सूर्येण क्ष्यभिनिर्मुक्तः शयानोऽभयुदितश्च यः।
प्रायश्चित्तमकुर्वाणो युक्तः स्थान्महतैनसा।। मनुस्मृति 2/221

106. तं चेदम्युदियात्सूर्यः शयानं कामचारतः।
निम्लोचेद्वाप्याविज्ञानाज्जपन्नुपवसेद्दिनम्।। मनुस्मृति 2/220

107. मुण्डो वा जटिलो वा स्थादधवा स्याच्छिडतजटा।
नैनं ग्रामेऽभिनिम्तोचेत्सूर्यो नाभ्युदियात्क्वचित्ता।। मनुस्मृति 2/219

108. ब्रह्महत्या, सुरापान-स्तेय गुर्वङ्गनागमः।
महान्तिपातकान्याहुः संसर्गश्चपि तैः सहा।। मनुस्मृति 11/54

109. वही तथा मनुस्मृति 9/235.

110. अन्ततं च समुत्कर्षे राजगामि च पैशुनम्।
गुरोश्चार्लीकनिर्वन्धः समानि ब्रह्महत्या।। मनुस्मृति 11/55

111. ब्रह्महा च सुरापश्च स्तेयी च गुरुतल्पगः।।
ऐति सर्वे पृरुझेया महापातकिनो नराः।। मनुस्मृति 9/235.

तथा

ब्रह्महत्या सुरापान स्तेय गुर्वङ्गनामगमः।

महान्तिपातकान्याहुः संसर्गश्चापि तैःसहा।। मनुस्मृति11/54
112. गौतम धर्म सूत्र 3/31.
113. लिण्डस्मिथ, ए०आर० औपिएट एडिक्शन, 1947.
114. प्रतिषिद्धापि चेद्या तु मद्यमभ्युदयेष्वपि।
प्रेक्षासमाजं गच्छेद्वा सा दण्ड्या कृष्णलानि षट्।। मनुस्मृति 9/84
115. परमं यत्नमातिष्ठेत्स्तेनानां निग्रहे नृपः।
स्तेनानां निग्रहादस्य यशो राष्ट्रं च वर्धते।। मनुस्मृति 8/302-309
116. स्यात्साहसं त्वन्वयवत्प्रसभं कर्म यत्कृतम्।
निरन्वयं भवेत्स्तेयं हृत्वापव्ययते व यत्।। मनुस्मृति 8/332
117. ऋग्वेद, 8/67/14, 6/18/7, 7/55/3
118. वही, 4/38/5
119. वही, 10/4/6, 6/28/3, 8/29/6
120. निरुक्त 4/4
121. काणे, धर्मशास्त्र का इतिहास, भाग 3 पृष्ठ 24
122. नारद स्मृति 14/13-6
123. क्षुद्र मध्यमहाद्रव्यहरणे सारतोदमः।
देशकालवयः शक्ति संचिन्त्यं दण्डकर्मणि।। याज्ञवल्क्य स्मृति 2/275
124. द्विविधांस्तस्करान्विद्यात्परद्रव्यापहारकान्।
प्रकाशंश्चाप्रकाशांश्च चारचक्षुर्महीपतिः।। मनुस्मृति 9/256
125. प्रकाशबञ्चकास्तेषां नापापण्योपजीविनः।
प्रच्छन्नवन्चकास्त्वेते ये स्तेनाटविकादयः।। मनुस्मृति 9/257
126. मनुस्मृति 9/257--260
127. ऋग्वेद 10/34
128. अथर्ववेद, 4/16/5, 4/38
129. अप्राणिभिर्यत्क्रियते तल्लोके द्यूतमुच्यते।
प्राणिभिः क्रियते यस्तु स विज्ञेयः समाह्वयः।। मनुस्मृति-9/223
130. महाभारत पर्व, उधोग पर्व, 37/19. तथा मनुस्मृति 9/227
द्यूतमेतत्पुरा कल्पे दृष्टं बैरकरं महत्।
तस्माद्दद्यूतं न सेवेत् हास्यार्थमपि बुद्धिमान्।।
131. कात्यायान, विवादरत्नाकर, पृष्ठ 611 में उदधृत।
132. याज्ञवल्क्य स्मृति, 2/203
133. आपस्तम्ब, 2,10, 15/12
134. अर्थशास्त्र, 3/74-15/20
135. द्यूतं समाह्व्यश्चैव राजा राष्ट्रैनिवारयेत्।
राजान्तरकरणावेतौ द्वौ दोषौ पृथिवीक्षिताम्।। मनुस्मृति 9/221/222
136. द्यूतं समाह्वयं चैव यः कुर्यात्कारयेत् वा।
तान्सर्वान्घातयेद्राजा शूद्रांश्च द्विजलिङ्गिनः।। मनुस्मृति 9/224

कितवान्कुशीलवान्क्रूरान्याषण्डस्थांचश्र मानवान्।
विकर्मस्था, द्यौण्डिकांच्श्र क्षिप्रं निर्वासयेत्पुरात्।। मनुस्मृति 9/225

137. पौश्चल्यान्वलक्तिाश्च नैस्नेक्षाच्च स्वभावतः।
रक्षिता यत्नतोऽपीह भर्तुष्वेता विकुर्वते।। मनुस्मृति 9/15

138. प्रजनार्थं महाभागाः पूजार्हा गृहदीप्तयः।
स्त्रियः श्रियच्श्र गेहेषु न विरोषोस्ति कश्र्च्न।। मनुस्मृति 9/26

139. तत्समुत्यो हि लोकस्य जायते वर्णसंकरः ।
येन मूलहरोऽधर्मः सर्वनाशाय कल्पते।। मनुस्मृति 8/353

140. बौधायन धर्मसूत्रं 2/1/2/5

141. अब्राह्मणः संगहणे, प्राणान्तं दण्डमर्हति।
चतुर्णामपि वर्णानां दारा रक्ष्यतमाः सदा।। मनुस्मृति 118/359

142. अब्राह्मणः क्षत्रियादिः, चतुणमिपि वर्णानां... मनुस्मृति 8/359 पर. मेधातिथि।

143. मनुस्मृति 8/359 पर कुल्लूक और गोविन्दराज।

144. वैश्यतेत्क्षत्रियां गुप्तां वैश्यां वा क्षत्रियो ब्रजेत्।
यो ब्राह्मणयामगुप्तायां तावुभौ दण्डमर्हतः।। मनुस्मृति 8/382

145. अगुप्ते क्षत्रिया वैश्ये शूद्रां वा ब्राह्मणो ब्रजन्।
शतानि पञ्च दण्ड्यः स्यात्सहस्रं त्वन्त्यजस्त्रियम्।। मनुस्मृति 8/385

146. सहस्त्रं ब्राह्मणो दण्डं दाप्यो गुप्ते तु ते ब्रजन्।
शूद्रायां क्षत्रियाविशोः सहस्त्रो वे भवेद्दमः।। मनुस्मृति 8/383

147. उभावपि तु तावेव ब्राह्मण्या गुप्तया सह।
विप्लुतौ शूद्रवद्दण्डयौ दग्धव्यौ वा कटाम्निना।। मनुस्मृति 8/377
ब्राह्मणी यद्यगुप्तां तु गच्छेतां वैश्यपार्थिवौ।
वैश्यं पडचशतं कुर्यात्क्षत्रियं तु सहस्त्रिणम्।। मनुस्मृति 8/376

148. भर्तारं लङ्घयेद्या तु स्त्री ज्ञातिगुणदर्पिता।
तां श्रभिः खादयेद्राजा संस्थाने बहुसंस्थिते।। मनुस्मृति 8/371

149. कन्यैव कन्यां या कुर्यात्तस्याः स्याददि्वशतो दमः।
शुल्कं च द्विगुणं दद्याच्छिपगच्श्रैवाप्नुयादृश।। मनुस्मृति 8/369

150. श्रृण्वे वीर उग्रमुग्रं दमायत्रन्यमतिनेनीयमानः ऋग्वेद 6/47/16

151. ऋग्वेद 6/47/16 पर सायण भाष्य।

152. दण्डो ददतेधरियतिकर्मणः। दमनादित्यौपमन्यवः। निरुक्तम् पृष्ठ 68

153. दण्डो दमनदित्याहुस्तेनादान्तान्दमयेत्। गौतम धर्म सूत्र 2/2/28

154. तस्यार्थे सर्वभूतानां गौप्तारं धर्ममात्मनम्।
ब्रहमतेजोमयं दण्डमसृजत्यपूर्वमीश्वरः।। मनुस्मृति 7/14

155. दण्डः शास्ति प्रजाः सर्वादण्ड एवाभिरक्षति।
दण्डः सुप्तेषु जागर्ति दण्डं धर्म विदुर्वुधाः।। मनुस्मृति 1/18

156. मनुस्मृति 7/18 पर कुल्लूक की टीका।

157. येन केनचिदङ्ग न तिंस्याच्चेच्छेष्ठमन्त्यजः।

द्वैत्तव्यं तन्तदेवास्य तन्मनोरनुशासनम्।। मनुस्मृति 8/279
पाणिभुधम्य दण्डं वा पाणिच्छेदनमर्हति।
पादेन प्रहरन्कोपात्यादच्छेदनमर्हति।। मनुस्मृति 8/280
तथा येनाङ्गेनावरो वर्णौं ब्राह्मणस्थापराध्नुयात्।
वदङ्गं तस्य छेत्तव्यमेवं बुद्धिमवाप्भुयात्।। नारद स्मृति 18/25

158. पणानां दे शते सार्धे प्रथमः साहसः स्मृतः।
मध्यमः पञ्च विज्ञेयः सतसं त्वेव चोत्तमः।। विष्णु धर्म सूत्र 4/14, एवं मनुस्मृति 8/138.
159. याज्ञवल्क्य व मनु के संदर्भ में मिताक्षरा।
160. क्षेत्रियस्तरुत्यये दण्डो भागाद्दशगुणो भवेत्।।
ततोऽर्धदण्डो भृत्यानामज्ञानात्क्षेत्रिकस्य तु।। मनुस्मृति 8.243
161. पथिक्षेत्र परिवृत्ते ग्रामान्तीयऽथवा पुनः।
स पालः शतदण्डार्हो विपालान्वारयेत्यशून्।। मनुस्मृति 8/240
162. गृहं तडागमारामं क्षेत्रं वा भीषया हरन्।
शतानि पञ्च दण्ड्यः स्यादज्ञानादद्विशतो दमः।। मनुस्मृति 8/264
163. यात्रापवर्तते युग्यं वैगुण्यात्प्राजकस्य तु।
तत्र स्वामी भवेद्दण्ड्यो हिंसांया द्विशतं दमम्।। मनुस्मृति 8/293
प्राजकश्रेमदवेदाप्तः प्राजको दण्डमर्हति।।
युग्यस्थाः प्राजकेऽनाप्ते सर्वे दण्ड्याः शतं शतम्।। मनुस्मृति 8/294
164. मनुष्यमारणे क्षिप्तं चौरवत्किल्विषं भवेत्।
प्राणभृत्सु महत्सवर्ध गोगजोष्ट्रंहयादिषु।। मनुस्मृति 8/296
क्षुद्रकाणां पशूनां तु हिंसायां द्विशते दमः।
पञ्चाशत्तु भवेद्दण्डः शुभेषु भृगपक्षिषु।। मनुस्मृति 8/297
गर्दभाजाविकानां तु दण्डः स्यापत्पचमाषिकः।
माषिकस्तु भवेद्दण्डः शवसूकर निपातने।। मनुस्मृति 8/298
165. सामन्ताश्चेन्मृषा ब्रूयः सेतो विवदतां नृणाम्।
सर्वे पृथक्पृथदण्ड्या राज्ञा मध्यमसाहसम्।। मनुस्मृति 8/263
166. याज्ञवल्क्य स्मृति 2/153
167. अष्टापाद्यं तु शूद्रस्य स्तेये भवति किल्विषम्।
षोडशैव तु वैश्यस्य द्वाविंशत्क्षत्रियस्य च।। मनुस्मृति 8/339
ब्राह्मणस्य यतुः षष्टिः पूर्ण वापि शतं भवेत्।
द्विगुणा वा चतुः षष्टिस्तेद्दोपगुणविधि सः।। मनुस्मृति 8/338
168. गौतमधर्मसूत्र 2/3/12-13
169. नारदस्मृति 21/51-52
170. पञ्चाशतस्त्वभ्याधिके हस्तच्छेदनभिष्यते।
शेष त्वेकादशगुणं मूल्याद्दण्डे प्रकल्पयेत्।। मनुस्मृति 8/332
171. मनुस्मृति, 8/326-329

172. यस्तु रज्जुं घटं कूपाद्धरेभ्दिद्याच्च यः प्रपाम्।
स दण्डं प्राप्नुयान्माषं तच्च तस्मिन्समाहरेत्।। मनुस्मृति 8:319

173. पुष्पेषु हरिते धान्ये गुल्मबल्लीनगेषु च।
अन्येष्व परिपूतेषु दण्डः स्थात्पञ्चकृष्णलः।। मनुस्मृति 8:333

174. परिपूतेषु धान्येषु शाकमूलफलेषु च।
निरन्त्रये शतं दण्डः सान्वयेऽर्धशतं दमः।। मनुस्मृति 8/331

175. यस्त्वेतान्युपक्लृप्तानि द्रव्याणि स्तेनयेन्नरः।
तमाद्यं दण्डयेद्राजा युच्श्राग्निं चोरयेदगृहात्।। मनुस्मृति 8/333

176. सहस्त्रं ब्राह्मणो दण्डयो गुप्तां विप्रां बलोद्व्रजन्।।
शतानि पञ्च दण्डयः स्यादिच्छन्त्या सहसंगतः।। मनुस्मृति 8/378

177. वैश्यश्रेत्क्षत्रियां गुप्तां वैश्यां वा क्षत्रियो ब्रजेत्।
यो ब्राहमण्यामगुप्तायां तावुभौ दण्डमर्हतः।। मनुस्मृति 8/382

178. सहस्त्रं ब्राह्मणो दण्डं दाप्यो गुप्ते तु ते व्रजन्।
शूद्रायां क्षत्रिय विशोः सहस्त्रो वै भवेद्दमः।। मनुस्मृति 8/383

179. क्षत्रियायामगुप्तायां वैश्ये पञ्चशतं दयनः।
मूत्रेण मौड्यमिच्छेत्रु क्षत्रियो दण्डमेव वा।। मनुस्मृति 8/384

180. अगुप्ते क्षत्रियावैश्ये शूद्रां वा ब्राह्मणो व्रजन्।
शतानि पञ्च दण्ड्यः स्यात्सहस्त्रं त्वन्त्यस्त्रियम्।। मनुस्मृति 8/385

181. वैश्यः सर्वस्वदण्डः स्यात्संवत्सरनिरोधतः।
सहस्त्रं क्षत्रियो दड्यो मौण्ड्यं मूत्रेण चार्हति।। मनुस्मृति 8/375

182. याज्ञवल्क्य स्मृति 2/285 तथा
न संभाषां परस्त्रीभिः प्रतिषिद्धः समाचरेत्।
निषिद्धो भाषमाण्यस्तु सुवर्ण दण्ड्मर्हति।। मनुस्मृति 8/361

183. परस्त्रियां यौऽभिवदेत्तीर्थऽरण्ये वनेऽपि वा।
नदीनां वापि संभेदे स संग्रहणमाप्नुयात्।। मनुस्मृति 8/356

184. मनुस्मृति 8/368, तथा उस पर कुल्लूक की टीका।

185. कन्यैव कन्यां या कुर्यान्तिस्याः स्याद्द्विशतो दमः।
शुल्कं च द्विगुणं दद्याच्छिकाश्रैवाप्नुयाद्दश।। मनुस्मृति 8/369

186. यस्तु दोषवतां कन्यामनाख्याय प्रयच्छति।
तस्य कुर्यान्नृपो दण्डं स्वयं षण्णवतिं पणान्।। मनुस्मृति 8/224
अकन्येति तु यः कन्यां ब्रुयाद्द्वेषण मानवः।
स शतं प्राप्नुयाद्दण्डं तस्या दोषमदर्शयत्।। मनुस्मृति 8/225

187. शतं ब्राह्मणमाकृश्च क्षत्रियो दण्डमर्हति।
वैश्याडप्यर्धशतं द्वे वा शूद्रस्तु बधमर्हति।। मनुस्मृति 8/267
पन्चाशद्ब्राह्मणो दण्ड्यः क्षत्रियस्याबिशंसने।
वैश्ये स्यादर्धपञ्चाशच्छूद्रे द्वादशको दमः।। मनुस्मृति 8/268

188. समवर्णे द्विजातीनां द्वादशैवं व्यतिक्रमे।
वादेष्ववचनीयेषु तदेव द्विगुणं भवेत्।। मनुस्मृति 8/269

189. नारद स्मृति 18/17

190. ब्राह्मणक्षत्रियाभ्यां तु दण्डः कार्यो विजानता ।
ब्राह्मणे साहसः पूर्वः क्षत्रिये त्वेव मध्यमः ।। मनुस्मृति 8/276
विट्शूद्रयोरेवेम् स्त्रजातिं प्रति तत्वतः ।
छेदवर्जं प्रणयनं दण्डस्येति विनिश्चयः ।। मनुस्मृति 8/277

191. मनु स्मृति 8/277 पर कुल्लूक की टीका।

192. काणं वाप्यथवा खडजमन्यं वापि तथाविधम् ।
तथ्येनापिव्रवन्दाप्यो दण्डं कार्षायणावरम् ।। मनुस्मृति 8/274 तथा नारदस्मृति 18/18

193. श्रुतं देशं च जातिं च कर्म शारीरमेव च ।
वितथेन व्रुवन्दपद्दिायः स्याद्द्विशतं दमम्।। मनुस्मृति 8/273

194. कस्य पुनरयं दण्डः। सवेषाभिति वूर्भः। शूद्राधिकारात् शूद्रस्यैवेति।
मनुस्मृति 8/223 पर मेधातिथि।

195. मनुस्मृति 8/273 पर नारायण की टीका।

196. समान जातिविषयमिदं दण्डलाधवान्न तु शूद्रस्य द्विजात्याक्षेपविषम्।
मनुस्मृति 8/273 पर कुल्लूक की टीका तथा इसी पर राघवानन्द की टीका।

197. मातरं पितरं जायां भ्रातरं तनयं गुरुम्।
आक्षारयञ्छतं दाप्यः पन्थानं चाददगुरौः ।। मनुस्मृति 8/275

198. त्वग्भेदक : शतं दण्ड्यो लाहितस्य च दर्शकः ।
मांस भेत्ता तु षाणिष्कान्प्रवास्यस्त्वस्थिभेदकः ।। मनुस्मृति 8/284

199. नारदस्मृति 18/29

200. मनुष्याणां पशूनां च दुःखाय प्रहृते सन्ति।
यथायथा महद्दुःखं दण्डं कुर्यान्तिथातथा ।। मनुस्मृति 8/286

201. वनस्पतीनां सर्वेषाभुपभोगं यथायथा।
तथातथा दमः कार्यों हिंसायामिति धारणा।। मनुस्मृति 8/285

202. राज्ञः प्रख्यातभाण्डानि प्रतिषिद्धानि यानि च।
तानि निर्हरतो लोभात्सर्वहारं हरेन्नृपः।। मनुस्मृति 8/399
ये कायिकेभ्योऽर्थमेव गृहीयुः पापचेतसः।
तेषां स्र्वस्वमादाय राजा कुर्यात्प्रवासनम्।। मनुस्मृति 7/124

203. शूद्रो गुप्तमगुप्तं वा द्वेजातं वर्णमावसन्।
अगुप्तमङ्ग सर्वस्वैर्गुप्तं सर्वेण हीयते।। मनुस्मृति 8/374
वैश्यः सर्वस्वदण्डः स्यात्संवत्सरनिरोधतः ।
सहस्त्रं क्षत्रियो दंड्यो मौण्ड्यं मूत्रेण चाहति ।। मनुस्मृति 8/375.

204. उभावपि तु तावेत ब्राह्मण्या गुप्तया सह।
विप्लुतौ शूद्रवद्दण्ड्यौ दध्व्यौ वा कटाग्निना ।। मनुस्मृति 8/277

205. इतरे कृतवन्तस्तु पामान्येतान्यकामतः ।
सर्वस्वहारमर्हन्ति कामतस्तु प्रवासनम् ।। मनुस्मृति 9/242
206. मनुस्मृति 8/374
207. मनुस्मृति 8/364 तथा वृह. स्मृति— उदधृत स्मृतिचन्द्रिका भाग-2 पृ०742
208. नारद स्मृति 15/73-74. तथा मनुस्मृति 8/370
यातु कन्यां प्रकुर्यात्स्त्री सा सद्यो मौण्ड्यमर्हति।
अंगुल्योरेव वा छेदं खरेणोद्वहनं तथा ।।
209. मनुस्मृति 8/370
210. भर्तारं लङ्घमेता तु स्त्री जाति गुणदर्धिता ।
तां श्वभि खादयेद्राजा संस्थाने बहुसंस्थिते ।। मनुस्मृति 8/371
211. गौतम धर्म सूत्र 3/5/14-15
212. येन येन यथाङ्गेन स्तेनो नृषु विचेष्टते।
तत्रदेव हरेत्रस्य प्रत्यादेशाय पार्थिवः।। मनुस्मृति 8/334
213. नारद स्मृति 21/34
214. मनुस्मृति 9/277 तथा याज्ञवल्क्य स्मृति 2/274
215. (अ) मनुस्मृति 9/276
(ब) पञ्चाशतस्त्वभ्यधिके हस्तच्छेदनमिष्यते।
शेष त्वेका दशगुणं मूल्याद्दण्डे प्रकल्पयेत ।। मनुस्मृति 8/322
गौषु ब्राह्मणसंस्थासु छूरिकायाश्च भेदने।
पशूनां हरणे चैव सद्यः कार्योऽर्धपादिकः ।। मनुस्मृति 8/325
216. येन केनचिदङ्गेन हिंस्याच्चेच्छैष्ठमन्त्यजः ।।
छेत्तव्यं ततदेवास्य तन्मनोरनुशासनम् ।। मनुस्मृति 8/279
पाणिभुद्यम्य दण्डं वा पाणिच्छेदनमर्हति।
पादेन प्रहरन्कोषात्पादच्छेदमर्हति ।। मनुस्मृति 8/280
217. मनुस्मृति 8/281
218. विष्णु धर्मसूत्र 5/20
219. मनुस्मृति 8/282-283 तथा वृहस्पति स्मृति-स्मृतिचन्द्रिका, भाग-2, पृष्ठ 763 नारदस्मृति 18/26-28
220. मनुस्मृति (8/281) पर मेधातिथि कुल्लूक, गोविन्दराज तथा राघवानन्द।
221. मनुस्मृति 8/272 एवं नारद स्मृति-18/24
222. मनुस्मृति 8/270
223. नारद स्मृति-18/22
224. हेत्वाभिधानं प्रतिलोगानामापि ग्रहणार्थम्-मनुस्मृति (8/270) परमेधातिथि
225. मनुस्मृति 8/270 पर विवाद रत्नाकर
226. मनुस्मृति 8/369
227. मनुस्मृति 8/299-300
228. स्त्रीबालोन्मत्तवृद्धानां दरिद्राणां च रोगिणाम् ।

15215

शिकाविदलरज्ज्वाद्यैर्विदध्यान्नतपतिर्दमम् ।। मनुस्मृति 9/230

229. गुरुतल्पे भगः कार्यः सुरापाने सुराध्वजः ।
स्तेये च श्वापदं, कार्यं ब्रह्महायशिराः पुमान् ।। मनुस्मृति 19/237

230. पुमांसं दाहयेत्पापं शयने तप्त आयसे ।
अभ्यादध्युश्च काष्ठानि तत्र दह्येत पापकृत ।। मनुस्मृति 8/88.372
संवत्सराभिशस्तस्य दुष्टस्य द्विगुणो दमः।
व्रात्यया सह संवासे चाण्डाल्या तावदेव तु ।। मनुस्मृति 8/373

231. उभावपि तु तावेव ब्राह्मणया गुप्तया सह।
विप्लुतौ शूद्रवद्दण्डयौ दग्धव्यौ वा कटाग्निना ।। मनुस्मृति 8/377

232. अधार्मिकं त्रिभिर्न्यायैर्निगृधीयात्प्रयत्नतः ।
निरोधनेन बन्धेन विविधेन बधेन च ।। मनुस्मृति 8/310

233. कारागार प्रवेशनेन, निगडादिवन्धनेन, करचरणच्छेदनादिनानाप्रकारहिंसनेन ।
मनुस्मृति 8/310 पर कुल्लूक की टीका ।

234. बन्धनानि च सर्वाणि राजामार्गे निवेशषेत् ।
दुःखिता यत्र दृश्येरन्विकूताः पापकारिणः ।। मनुस्मृति 9/288

235. अन्यैरकार्यकारिभिरकार्यनिवृत्त्यर्थ दृश्येरन् ।
मनुस्मृति 9/288 पर कुल्लूक की टीका।

236. मनुस्मृति 8/375

237. वाग्दण्डं प्रथमं कुर्याद्धिग्दण्डं तदनन्तरम् ।
तृतीयं धनदण्डं तु बधदण्डमतः परम् ।। मनुस्मृति 8/129

238. मनुस्मृति 8/130

239. मनुस्मृति 9/248

240. कूटशासनकर्तृश्च प्रकृतीनां च दूषकान्।
स्त्रीबालव्राहमणघ्नांश्च हन्याद्द्विट्सेविनस्तथा ।। मनुस्मृति 9/232

241. ब्राह्मणान्बाधानानं तु कामादवरत्रर्णजम्।
हन्याच्चित्रैर्वधोपायैकद्वेजन्करैर्नृपः ।। मनुस्मृति 9/248

242. अब्राह्मणः संग्रहणे प्राणान्तं दण्डमर्हति ।
चतुर्णामपि वर्णानां द्वारा रक्ष्यतमाः सदा ।। मनुस्मृति 8/359

243. मनुस्मृति 8/359 पर मेधातिथि व कुल्लूक की टीका।

244. मनुस्मृति 8/366 व याज्ञवल्क्यस्मृति 2/288

245. मनुस्मृति 8/274

246. मनुस्मृति 9/270

247. मनुस्मृति 9/71

248. मनुस्मृति 8/37

249. मनुस्मृति 8/314. नारदस्मृति 21/46-47, गौ० ध० सू० 2/3/40-41

250. मनुस्मृति 7/321

251. मनुस्मृति 8/323
252. मनुस्मृति 9/280
253. मनुस्मृति 9/279, 9/291
254. मनुस्मृति 8/350
255. मनुस्मृति 9/242
256. मनुस्मृति 8/267
257. मनुस्मृति 9/224
258. मनुस्मृति, याज्ञवल्क्यस्मृति उदधृत स्मृति चन्द्रिका, भाग–2, पृ० 293, नारदस्मृति 17/10

:

द्वितीय अध्याय

याज्ञवल्क्य स्मृति के सामाजिक प्रतिपाद्य विषय

याज्ञवल्क्य स्मृति के सामाजिक प्रतिपाद्य विषय और मनुस्मृति के परिप्रेक्ष्य में निरूपित विविध अपराध तथा दण्ड व्यवस्था का तुलनात्मक विवेचन।

भारतीय समाज के नियमन में तत्त्ववेत्ता स्मृतिकारों की अत्यन्त ही महत्वपूर्ण भूमिका रही है। वस्तुतः देशकाल यात्रानुसार समाज के विविध पक्षों को किसी काल में विशेष परिवर्तित परिस्थितियों में व्यवस्थित करना तात्कालिक समाज-नियन्ताओं के समक्ष एक ज्वलन्त समस्या थी। वस्तुतः "धर्म" को भारतीय सामाजिक जीवन में सबसे अधिक प्रधानता प्राप्त थी इसलिये "धर्मशास्त्र" सामाजिकता के सर्वाधिक शक्तिशाली घटक सिद्ध हुए हैं। उन्होंने आर्यों के समाज को आधार दिया और सामाजिक सामन्जस्य की सुदृढ़ प्रणाली प्रदान की। उत्तराधिकार और दीवानी तथा फौजदारी न्याय के कानून निर्धारित किए एवं जन्म से मृत्यु तक की सभी प्रमुख अवस्थाओं के नियमन के लिए विधान बनाये। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र एवं वर्णसंकर आदि समाज के विविध वर्गों के कर्तव्यों का विस्तृत विवेचन "धर्म शास्त्रों" में मिलता है। इसी से यह भी स्पष्ट है कि "धर्मशास्त्र" में प्रयुक्त "धर्म शास्त्रों" में मिलता है। इसी से यह भी स्पष्ट है कि "धर्मशास्त्र" में प्रयुक्त " धर्म" शब्द का अर्थ क्या है। विज्ञानेश्वर ने मिताक्षरा में वर्ण-धर्म, आश्रम-धर्म, गुण-धर्म, निमित्त-धर्म, साधारण-धर्म इत्यादि का विवेचन किया है। पाश्चात्य विद्वानों ने मैक्समूलर सरीखे विद्वानों का अनुसरण करते हुए समस्त भारतीय जीवन तथा विचारधाराओं को धर्म और दर्शन प्रधान माना है। ऐसी धारणा का मूल कारण धर्म के सम्बन्ध में पाश्चात्य और भारतीय दृष्टिकोणों में भिन्नता है। पाश्चात्य देशों में बहुधा मोटे रूप से धर्म अथवा रिलीजन ऐसे अर्थ में प्रयुक्त होता है, जो एक प्रकार

के मत दर्शन और विचारधारा का सूचक हो। इसके विपरीत भारतीय विचारधारा में धर्म मनुष्य के जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त के कार्य कलापों, सामाजिक संगठन, व्यवहार, दर्शन, रीति-परम्पराओं, खानपान आदि समस्त प्रक्रियाओं को नियन्त्रित करता है। फलतः भारतीय विचारधारा में दण्ड और दण्ड व्यवस्था का भी इतना विशद निरूपण है और इन दोनों को आधिदैविक एवं आध्यात्मिक दृष्टिकोण दिया गया है।

सामाजिक, सांस्कृतिक तथा धार्मिक चेतना

धर्मसूत्रों एवं स्मृतियों में प्रतिपादित विविध अपराध एवं दण्डों का प्राविधान वैदिक ऋत् एवं सत्य पर आधारित है। याज्ञवल्क्य जैसे स्मृतिकारों के मन में वस्तुतः मानव कल्याण की भावना है। यही मानव कल्याण की भावना ही सर्वोपरि थी। अतः उसके आमुषिक विकास हेतु सत्य पर आधारित नैतिक विधान की परिकल्पना की गई। मानव समाज इसी आदर्श नैतिक विधान से संचालित माना गया है। डॉ० राधाकृष्णन् के अनुसार— कोई सामाजिक नियम और व्यवस्था "ऋत्" से अधिक नहीं थी। परस्पर संबन्धों के विकास का आधार ऋत् होने से वह सामाजिक विधान बनने की ओर अग्रसर हुआ। उसमें सदाचार, आचार, परम्परा एवं व्यवहारका सम्मिश्रण हुआ। फलतः उसका अभिव्यक्तीकरण सामाजिक विधान के रूप में हुआ।[2] "ऋत्" ही वैदिक नैतिकता का आधार था, उससे विपरीत स्थिति अनैतिक मानी गई है।

मनुष्य के तामसिक गुण उसे अनैतिक आचरण करने पर विवश कर देते हैं। शांति पर्व मानवीय पतन की इसी स्थिति का संकेत किया गया है।[3] कालान्तर में ऋत को सामाजिक सदाचरण से सम्बद्ध कर दिया गया। यम की बहन यमी जब यम से सम्भोग करने की अभ्यर्थना करती है तब यम कहते हैं कि ऐसा करना "ऋत" के प्रतिकूल होगा।[4] शतपथ ब्राह्मण में कहा गया है कि मनुष्य सत्य के अतिरिक्त कुछ न बोले।[5] वृहदारण्यकोपनिषद् के अनुसार व्यावहारिक जीवन में सत्य एवं धर्म दोनों समान है। उसमें असत्य से सत्य की ओर अन्धकार से प्रकाश की ओर और मृत्यु से अमरता की ओर ले जाने की प्रार्थना की गई है।[6] पारलौकिक जीवन के दुःखद पक्ष की कल्पना जहाँ नरक के रूप में की गई, वहीं उसके सुखद पक्ष की कल्पना स्वर्ग के रूप में की गई तथा उनका सम्बन्ध क्रमशः पाप एवं पुण्य से जोड़ा गया। नरक के प्रभूत भय एवं स्वर्ग की अदम्य लालसा के वशीभूत होकर पाप

के लिए प्रकट की हुई पश्चाताप की भावना ही कालान्तर में स्मृतिकारों के प्रायश्चित विधान के मूल में प्रतीत होती है। बदले हुए सामाजिक सन्दर्भों एवं परिवेश के अनुरूप यह विधान नितान्त समीचीन भी थे। इसीलिए याज्ञवल्क्य और धर्म सूत्रों में प्रायः प्रायश्चित को अत्यधिक महत्व प्रदान किया गया है।[7]

मानवीय सचेतनता और ज्ञानवृद्धि के साथ जहाँ सभ्यता और संस्कृति के क्षेत्रों में उत्तरोत्तर विकास होता रहा है वहीं मनुष्यों में दुष्प्रवृत्तियों के फलस्वरूप अपराधों की संख्या और विधियों में भी वृद्धि होती गई। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि सभ्यता और संस्कृति अपराधी प्रवृत्ति को बढ़ावा देती है।

याज्ञवल्क्य स्मृति में प्रतिपादित सामाजिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक चेतना तत्कालीन समाज के परिवेश से पूर्णतः अनुप्राणित थी। अतः स्मृतिकार द्वारा स्वतः ही समाज के विविध पक्षों का चित्रण हुआ है। समाज मुख्यतः ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र आदि चातुवर्णा व्यवस्था पर आधृत था। अतः सभी वर्ण विशेष के स्वभाव अथवा प्रकृति के अनुसार याज्ञवल्क्य ने कर्म विधान किया था और तदनुसार निर्धारित वृत्ति के अनुरूप व्यवहार न करने पर यथोचित दण्ड की भी व्यवस्था की है। द्विजातियों के लिए वेद की महत्ता पर विशेष बल दिया गया है।[8] और यज्ञ, तपस्या तथा शुभ कामों में वेद को ही परम हितकारी माना है।[8] जो वैदिक आर्य संस्कृति के प्रति स्मृतिकार की अवधारणा का द्योतक है। यहाँ द्विजातियों का तात्पर्य ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य से है चूंकि पहले वे माता से जन्म लेते हैं और उपनयन के समय मौलि मेखला के बांधे जाने पर दूसरा जन्म लेते हैं। इस प्रकार इन्हें द्विज कहा जाता है। इस प्रकार कालान्तर में यह शब्द केवल ब्राह्मणों के लिए रूढ़ हो गया।[9] द्विजों को न केवल स्वाध्याय बल्कि धन-धान्य से पूर्ण पृथ्वी का दान देने का निर्देश स्मृतिकार ने बड़े सुन्दर ढंग से दिया है तथा इस प्रकार की गई उत्कृष्ट तपस्या के फलस्वरूप ही तद्विषयक फल प्राप्ति का हेतु भी बताया है।[10] इस उद्धरण में स्वतः ही तत्कालीन कृषि की समृद्ध स्थिति की सूचना उपलब्ध हो जाती है। द्विजों के स्वाध्याय एवं कठिन परिश्रम द्वारा ज्ञानार्जन करना समाज की शिक्षा के प्रति स्मृतिकार की गम्भीरता को प्रदर्शित करता है। इतना ही नहीं समाज के आध्यात्मिक उत्थान के प्रति भी उनकी दृष्टि पर्याप्त सतर्क थी। वैयक्तिक चरित्र निर्माण के अलावा मनुष्य के विविध सामाजिक कार्यकलापों की भी स्मृतिकार ने सम्यक् कल्याणकारी व्यवस्था दी है। वैवाहिक सम्बन्धों के साथ ही अनुलोम और प्रतिलोम विवाह द्वारा उत्पन्न सन्तानों की भी सामाजिक व्यवस्था के निदर्शन मिलते हैं, जैसे कि शुद्ध वर्ण

के पुरुषों द्वारा स्वर्णा स्त्रियों से उत्तम विवाह के उपरान्त उत्पन्न पुत्र सवर्ण अर्थात् माता-पिता की शुद्ध जाति के होते हैं। ब्राह्मण द्वारा विवाहिता क्षत्रिया पत्नी से उत्पन्न पुत्र मूर्धावसिक्त कहलाता है और वैश्य जाति की पत्नी से उत्पन्न पुत्र अम्बष्ठ। शूद्रा पत्नी से उत्पन्न पुत्र निषाद या पाराशव कहलाता है। क्षत्रिय पुरुष द्वारा विवाहिता वैश्य और शूद्रा पत्नियों से उत्पन्न पुत्र क्रमशः माहिष्य और उग्र कहे जाते हैं। वैश्य शूद्रा पत्नी उत्पन्न पुत्र करण कहलाता है। इस प्रकार मूर्धावसिक्त, अम्बष्ठ, निषाद, माहिष्य अग्र तथा करण ये छैः अनुलोमज पुत्र कहे गये हैं।[11] और सूत, वैदेहक, चण्डाल, मागध, क्षत्तार और आयोगव ये छैः प्रतिलोमज पुत्र कहे गये हैं। इन्हें निन्दित कहा गया है।[12] इन उद्धरणों से जहाँ समाज के विविध वर्णों के पारस्परिक सम्बन्धों में उन्मुक्त समागम का परिचय मिलता है, वहीं एक नियन्त्रण की लक्ष्मण रेखा की ओर भी स्पष्ट संकेत मिलता है। धर्म के विषय में महर्षि याज्ञवल्क्य ने बड़ी विशद व्याख्या प्रस्तुत की है। जिसमें प्रायः जीवन की सभी मानवीय प्रक्रियाओं का समावेश देखने को मिलता है। देशकाल के अनुरूप विधिपूर्वक योग्य व्यक्ति को दिया गया द्रव्यादि दान धर्म के एक लक्षणों में गिना गया है।[13] वेद धर्मशास्त्र, सज्जनों के आचरण, अपने आत्मा के अनुकूल (उत्तम) कार्य तथा विवेक पूर्ण संकल्प से उत्पन्न हुई इच्छा ये सब धर्म का मूल कहे गये हैं।[14] योग अर्थात् बाह्य चित्त वृत्ति के निरोध द्वारा आत्मा का यथातथ्य बोध करना यज्ञानुष्ठान आचार इन्द्रिय निग्रह, अहिंसा, दान, वेदाध्ययन और (पुण्य) कर्मों से श्रेष्ठ कहा गया है।[15] धर्म के व्याख्याकारों के विषय में भी स्मृतिकार ने बड़ी स्पष्ट व्यवस्था दी है। उनके अनुसार वेद और धर्म को जानने वाले चार पुरुषों की या तीन विद्याओं के ज्ञाता तीन ही पुरुषों की पर्षत होती है। वह (पर्षत्) जो भी कहे वह धर्म होता है। इसके अलावा अध्यात्म ज्ञान में निपुणतम एक ही व्यक्ति जो कुछ कहता है, वह धर्म होता है।[16]

इस प्रकार हम देखते हैं कि याज्ञवल्क्य स्मृति में संस्कृति के प्रमुख आधार स्तम्भों-सामाजिक आचरण, आध्यात्मिक धार्मिक अवधारणाओं आदि का समीचीन निदर्शन प्राप्त होता है। संक्रान्ति और संकरण के काल में निःसन्देह स्मृतिकार तत्कालीन युग की सामाजिक, धार्मिक तथा सांस्कृतिक चेतना से पूर्णतः अभिभूत थे और उन्हें सुनियन्त्रित युगानुरूप व्यवस्था देने में वे पूर्णतः सफल भी हुए। निश्चय ही उनकी चिन्तनशील मनीषा ने व्यक्ति व समाज के कल्याणार्थ प्रभावी एवं दूरगामी योजना बनाई थी।

मनुस्मृति के परिप्रेक्ष्य में निरूपित विविध अपराध तथा दण्डों की व्यवस्था का तुलनात्मक विवेचन

प्राचीन भारत में अपराध की अवधारणा को उचति रूप से समझने के लिए आवश्यक है कि हम यह देखें कि अपराध का 'पाप'' अथवा ''पातक'' से क्या सम्बन्ध था? काणे महोदय के अनुसार— ''पाप या पातक ऐसा शब्द है जिसका आचार शास्त्र की अपेक्षा धर्म से अधिक सम्बन्ध हैं।'' सामान्यतः ऐसा कहा जा सकता है कि यह ऐसा कृत्य है जो ईश्वर या उसके द्वारा प्रकाशित किसी व्यवहार (कानून) के उल्लंघन अथवा जान बूझकर उसके विरोध करने से उद्भूत होता है। यह ईश्वर की उस इच्छा का विरोध है जो किसी प्रामाणिक ग्रन्थ में अभिव्यक्त रहती है अथवा यह उस ग्रन्थ में पाये जाने वाले नियमों के पालन के असफलता का परिचायक है।[17] प्राचीन भारतीय दण्ड शास्त्र अपराध एवं पाप में एक तारतम्य स्थापित करता है, क्योंकि कानून ही धर्म था। अतः समाज विरोधी आचारण जहाँ विधि का उल्लंघन करने के कारण अपराध था, वहीं धर्म के विरुद्ध होने के कारण पाप अथवा ''घातक'' हैं। हिन्दू विधि शास्त्र में अपराध तथा पाप के मध्य स्पष्ट विभाजन रेखा खींचना सम्भव नहीं हैं, क्योंकि अपराध से व्यक्ति की मुक्ति दण्ड एवम् प्रायश्चित दोनों के द्वारा होती है। यह हिन्दुओं की मूलभूत धार्मिक तथा सामाजिक अवधारणाओं का परिणाम है। प्राचीन भारतीय विचारकों ने मनुष्य के जीवन का चरम उद्देश्य मोक्ष को पर्याप्त बताया, जिसे वह धर्म के अनुकूल आचरण करके प्राप्त कर सकता था। दण्ड से उसके अपराध की मुक्ति होती है और प्रायश्चित्त उसे पवित्र, करमोक्ष का अधिकारी बनाता है। हिन्दू विचारधारा पारलौकिक लक्ष्य को सदैव दृष्टि में रखकर जीवन-यापन करने को कहती है। कर्म एवं पुर्नजन्म का सिद्धान्त हिन्दू धर्म का आधार है।

स्मृतियों के अनुसार किया हुआ कर्म कभी निष्फल नहीं होता है। मनुस्मृति के अनुसार यदि अधर्म का फल स्वयं अधर्म करने वालों को नहीं मिलता तो उसके पुत्रों को मिलता है। और पुत्रों को नहीं मिलता तो पौत्रों को अवश्य मिलता है, क्योंकि किया गया अधर्म कभी निष्फल नहीं होता है।[18] याज्ञवल्क्य की अवधारणा है कि मनुष्य अपने स्वभाव के कारण सत्कर्मों से विमुख होता है और पापपूर्ण कर्म में निरत रहता है। जिसके फलस्वरूप वह कष्टमय (नरक) दुःख भोगता है।[19] पाप अथवा पातक ऐसे कर्म हैं जिन्हें धर्मशास्त्र वर्जित करता है। मनु की मान्यता है कि शास्त्रोक्त कर्म को न करता हुआ, शास्त्र द्वारा निन्दित कर्म करता हुआ, इन्द्रियों के विषय में

आसक्त होता हुआ मनुष्य प्रायश्चित्त के योग्य होता है।[20] इस विषय में याज्ञवल्क्य का भी कथन है कि जो नित्य नैमित्तिक कर्म विहित है, उसके न करने से निन्दित कर्म के करने से तथा इन्द्रियों का संयम न रखने से मनुष्य पतित होता है। इस पतन के प्रतिकार के लिए मनुष्य को प्रायश्चित्त करना चाहिये।[21]

मनु तथा याज्ञवल्क्य दो प्रकार के पतिकों का उल्लेख करते हैं— महापातक और उपपातक। प्रायः महापातक पाँच हैं—

(1) ब्रह्म हत्या (2) मद्यपान (3) चोरी (4) गुरु पत्नी के साथ सम्भोग तथा (5) इन चारों पातकियों के साथ संसर्ग से भी महापातक लगता है।[22]

जायसवाल महोदय इन पातकों में कालान्तर में होने वाले परिर्वतनों के बारे में स्पष्ट करते हुए मानते हैं कि इनकी संख्या सात बताते हैं। जिनमें युगानुरूप मान्यतायें भी सम्मिलित हो चली थी। बाद में इनकी संख्या मात्र चार रह गई थी।[23]

उपरोक्त पाँच महापातकों के अतिरिक्त कतिपय पातक ऐसे भी होते हैं जो पांचों के समान होते हैं। मनु के अनुसार जाति श्रेष्ठता के लिए असत्य भाषण, राजा से चुगलखोरी, गुरु से असत्य कहना, पढ़े हुए वेद का अभ्यास न करना, उसका विस्मरण अथवा निन्दा करना, गवाही में असत्य कहना, मित्र की हत्या, गर्हित अथवा अभक्ष्य पदार्थों का भोजन सुरापान के समान तथा धरोहर को हड़पने वाला व मनुष्य (दास, दासी) घोड़ा, चाँदी भूमि, हीरा, मणि मुक्ता चुराने के समान, सगी बहन, कुमारी, चाण्डाली, मित्र तथा पुत्र की स्त्री के साथ सम्भोग गुरु की पत्नी के साथ सम्भोग करने के समान है।[24]

याज्ञवल्क्य भी मनु के समान इन्हीं पाँच प्रकार के महापातकों के समान अन्य पातकों का उल्लेख करते हैं।[25] यथा गुरु पर मिथ्या दोषारोपण, वेद की निन्दा, मित्र की हत्या और पठित वेद एवं शास्त्र का आलस्य वंश विस्मरण— इन सबको ब्रह्म हत्या के समान समझना चाहिए। निषिद्ध (लहसुन आदि) पदार्थों का जान बुझकर लक्षण, कुटिलता, उत्कर्ष प्राप्ति के लिए असत्यभाषण और रजस्वला स्त्री के मुख का चुम्बन— ये सुरापान के समान होते हैं। (ब्राह्मण के) घोड़ा, रत्न, मनुष्य, स्त्री, भूमि और गाय तथा निक्षेप का अपहरण— ये सभी सोने की चोरी के समान होते हैं। मित्र की पत्नी, अविवाहित कन्या, भगिनी, चाण्डाली, समानगौत्र वाली स्त्री और पुत्रबधू, पिता की बहन (बुआ) माता, मामी सनुषा (पतोहू) सौतेली माता, बहन, आचार्य की पुत्री, तथा पत्नी या अपनी पुत्री से सम्भोग गुरु पत्नी के साथ सम्भोग के समान होता है। इन स्मृतिकारों ने उपपातकों की एक लम्बी सूची दी है। मनु के

अनुसार गौ बध, अयाज्म याजन, परस्त्री गमन, आत्मविक्रय, गुरु माता-पिता का परित्याग, ब्रह्मयज्ञ, स्मति अग्नि, पुत्र का त्याग, परिवति तथा परिवेत्ता (मनुस्मृति 3/171) को कन्या दान देना और यज्ञ कराना, कन्या दूषण, सूद लेना, व्रत को नष्ट करना, तड़ाग उद्यान, स्त्री और संतान को बेचना, ब्रात्यभाव, सब आकरों में राजज्ञा से अधिकार लेना, औषधियों की हिंसा, स्त्री की कमाई खाना, व्यभिचार कर्म करना, वशीकरण, ईंधन के लिए हरे पेड़ों को गिराना, निन्दित पदार्थों को इच्छानुसार खाना, अधिकार होने पर भी यज्ञ नहीं करना, चोरी करना, ऋण नहीं चुकाना, निन्दित शास्त्रों को पढ़ना, और कुशीलव का कर्म करना, धान्य सुवर्ण आदि धातु तथा पशुओं की चोरी करना, मद्यपान करने वाली द्विज स्त्री से समभोग करना, स्त्री, शूद्र वैश्य तथा क्षत्रिय का वध करना एवं नास्तिकता ये उपपातक हैं।[26] परन्तु याज्ञवल्क्य की सूची इससे विस्तृत है। कई उपपातक दोनों की सूची में समान हैं किन्तु कुछ अन्य उप-पातकों दोनों की सूची में समान है किन्तु कुछ अन्य उप-पातकों का भी याज्ञवल्क्य उल्लेख करते हैं यथा अग्निहोत्र न करना, स्वाध्याय का त्याग, घातक हथियार बनाना, न बेचने योग्य वस्तु (नमक आदि) व्यसन (मृगया आदि) शूद्र की सेवा, नीच व्यक्ति से मित्रता, किसी आश्रम में न रहना, दूसरे के अन्न से जीवन चलाना आदि।

जहाँ तक प्राचीन भारत में अपराध की अवधारणा के विकास का प्रश्न है, यह देखने में आता है कि हिन्दू न्याय व्यवस्था प्राचीन काल से ही अपराधों की दीवानी एवं फौजदारी दो प्रकारों में विभक्त करती है। धर्म सूत्रोत्तर काल में न्यायिक प्रक्रिया का उल्लेख व्यवहार के रूप में स्पष्ट मिलने लगता है। इसी के साथ-साथ व्यवहार पदों का विस्तृत उल्लेख भी किया गया है। श्रीयुत डॉ० पी० वी० काणे के अनुसार— व्यवहार पद का अर्थ है झगड़े, विवाद या मुकदमे का विषय।[28]

काम, क्रोध, लोभ अथवा मोह से विवाद उत्पन्न होता है। स्मृतियों में व्यवहार पदों की संख्या थोड़े बहुत अन्तर के साथ अठारह बताई गई है। मनु के अनुसार अठारह विवाद पद इस प्रकार हैं।[29]

(1) ऋणादान (2) निक्षेप इसके अन्तर्गत अपनी वस्तु दूसरे के पास धरोहर रखने से उत्पन्न विवाद आते हैं (3) अस्वामिविक्रय (4)संभूय समुत्थान, अनेक जनों द्वारा मिलकर साझे में व्यवसाय करना (5) दत्तस्य अजपाकर्म, (कोई वस्तु देकर फिर क्रोध, लोभ आदि के कारण बदल जाना) (6) वेतन न देना (7) संविद

का व्यतिक्रम, (कोई संविदा किसी के साथ करके उसे पूरा न करना) (8) क्रय-विक्रय का अनुशय (9) स्वामी और पुशपाल का विवाद (10) ग्राम आदि की सीमा का विवाद (11) वाक् पारुष्य, (मानहानि अर्थात् अपमान तथा गाली गलौच करना) (12) दण्ड पारुष्य, (आक्रमण अर्थात् मारपीट करना) (13) स्तेय (चोरी) (14) साहस, (डकैती, हत्या, तथा अन्य प्रकार की हिंसा) (15) स्त्री संग्रहण (व्यभिचार) (16) स्त्री पुंधर्म (17) विभाग दाय भाग (18) द्यूत और समाह्वय, (जुआ तथा बाजी लगाना)। याज्ञवल्क्य की अवधारणा है कि यदि धर्म शास्त्र के समय के आचार के विरुद्ध पीड़ित होकर राजा से निवेदन किया जाय तो वह व्यवहार का विषय होता है।[31] याज्ञवल्क्य ने अर्थ-विवाद का उल्लेख किया है।[32] जिससे स्पष्ट है कि उन्होंने अर्थ सम्बन्धी विवादों का फौजदारी विवादों से पृथक् किया होगा।

न्यायिक प्रशासन में दो मूलभूत सिद्धान्त क्रियाशील होते हैं। यथा अपने-अपने वादे पूर्ण करना और किसी को क्षति न पहुँचाना। इसके उल्लंघन से ही विवाद उत्पन्न होते हैं।[33]

आधुनिक अपराधीय विधि में अपराध का पाप अथवा नैतिकता से कोई संबन्ध नहीं है। दोनों सर्वथा भिन्न अवधारणायें हैं, किन्तु यह भेद अपेक्षाकृत बाद के समय का है। आज भी एक ही कार्य पाप तथा अपराध दोनों ही हो सकते हैं। यद्यपि नैतिक मान्यताएँ भी सामाजिक परिवर्तनों के साथ बदलती रहती है। पारम्परिक रूप से गम्भीर अपराध जैसे हत्या, चोरी, डकैती तथा बलात्कार इत्यादि तो सदैव ही पाप या नैतिकता से सम्बन्धित रहते हैं। जब कोई व्यक्ति जानबूझ कर, स्वेच्छापूर्वक तथा सआशय आपराधिक आचरण करता है तो वह नैतिक रूप से उसका उत्तरदायी तो रहता ही है।

स्मृतिकारों ने विविध अपराधों की समुचित दण्ड व्यवस्था की धर्मशास्त्रों और स्मृतियों में दी है। मनु के अनुसार 'दण्ड' का हेतु राजा है। चराचर की रक्षा के लिए भगवान ने राजा की सृष्टि की और उस (राजा) की कार्यसिद्धि के लिए ही भगवान ने ब्रह्म तेज से युक्त (ब्रह्मतेजोमयं) धर्म स्वरूप दण्ड की सृष्टि की है।[34]

याज्ञवल्क्य के अनुसार आदिकाल में ब्रह्म ने डण्ड के रूप में धर्म की ही सृष्टि की है।[35] यद्यपि राजा के द्वारा ही अपराधियों को दण्ड देने की व्यवस्था वह भी देते हैं। दण्ड का एक अर्थ सेना (बल) भी था जिसे राज्य के सप्तांगों अथवा प्रकृति

में से एक बताया गया है।[35] सामान्य रूप से "दण्ड" किसी अवैध कृत्य का वैध परिणाम है। इसके अलावा राजा शत्रु पर विजय प्राप्त करने के लिए अथवा आन्तरिक शान्ति एवं व्यवस्था स्थापनार्थचार उपायों को प्रयोग करते थे। यथा— सामं, दाम, भेद तथा दण्ड। याज्ञवल्क्य दण्ड का सावधानीपूर्वक एवं अन्तिम उपाय के रूप में ही प्रयोग की अनुमति देते हैं।[37] दण्ड की आवश्यकता महत्व, सम्यक् प्रयोग, प्रकार तथा उद्देश्यों पर स्मृतियों में प्रचुर सामग्री मिलती है। मनु ने मनुष्य को स्वभाव से ही अशुचि माना और कहा कि समस्त प्राणि- जगत् दण्ड के भय से ही सन्मार्ग पर रहते हैं।[38] याज्ञवल्क्य ने भी माना है कि दण्ड के भय से ही मनुष्य अपने कर्तव्य का पालन करता रहता है और स्वधर्म से विचलित नहीं होने पाता।[39] मनु के अनुसार प्रजा पालन ही क्षत्रियों का सर्वश्रेष्ठ धर्म है।[40] जब कि याज्ञवल्क्य क्षत्रिय का प्रधान कार्य प्रजा पालन बताते हैं।

न्यायपूर्वक प्रजापालन के सम्बन्ध में मनु तथा याज्ञवल्क्य की अवधारणा लगभग समान है। यद्यपि मनु प्रजा की रक्षा न करने वाले राजा को अधर्म के भी छठे भाग का भागीदार मानते हैं।[42] याज्ञवल्क्य के अनुसार न्यायपूर्वक प्रजा का पालन होने पर राजा प्रजाओं के पुण्य का छठा भाग प्राप्त करता है। अतएव भूमि आदि सभी प्रकार के दान से उत्पन्न पुण्य फल से प्रजा-पालन का फल अधिक होता है।[43] ऐसा राजा जो दण्डनीय व्यक्तियों को दण्ड नहीं देता और अदण्डनीय व्यक्तियों को दण्ड देता है, मरने के पश्चात नरकगामी होता है।[44] याज्ञवल्क्य ऐसे राजा को देवता, राक्षस, तथा मनुष्यों सहित सम्पूर्ण संसार को कुपित करने वाला बताते हैं।[45] यदि राजा अदण्डनीय को दण्ड देता था तो प्रजा उससे उसका तीस गुना ले लेती थी।[46]

प्राचीन भारतीय दण्ड अपराध विधि के सम्मुख कोई भी अदण्डनीय नहीं है। चाहे वह निर्धन हो अथवा धनी उच्च्व जाति का हो अथवानिम्न जाति का, स्त्रीहो अथवा पुरुष। यहाँ तक कि राजा एवं राजा के घनिष्ठ सम्बन्धी भी। यदि उन्होंने अपराध ा किया है तो वे भी साधारण जनों की भाँति दण्डनीय है। याज्ञवल्क्य का कथन है कि भाई, पुत्र आचार्य, आदि अर्घ्य व्यक्ति, श्वसुर अथवा मामा कोई भी यदि अपने धर्म से विचलित हो तो राजा के लिए अदण्ड्य नहीं होता।[47]

मनु का विचार है कि राजा देश, काल, दण्डशक्ति और विधा का ठीक-ठाक विचार करके ही अपराधियों को उचित दण्ड दें।[48] याज्ञवल्क्य अपराध, देश, समय, शक्ति आयु, कार्य और धन का पता लगाकर ही दण्डनीय व्यक्तियों को दण्ड देने का निर्देश देते हैं।[49]

स्मृतियों में मुख्य रूप से दण्ड के चार प्रकार बताये गये हैं[50]— (1) धिग्दण्ड (2) वाक्दण्ड (3) अर्थदण्ड एवं (4) बध दण्ड । मनु के अनुसार राजा गुणियों को पहली बार अपराध करने पर वाग्दण्ड, तदनन्तर (दूसरी बार अपराध करने पर) धिग् दण्ड (तीसरी बार अर्थ दण्ड और इसके बाद वध दण्ड से दण्डित करें।)[51] यहाँ बधदण्ड से तात्पर्य प्राण दण्ड नहीं है, क्योंकि अगले ही श्लोक में मनु कहते हैं कि यदि राजा अथवा न्यायाधीश बध (शरीर, ताड़न, छेदन आदि) से भी इस (अपराधी को) वश में नहीं कर सके तो इन चारों प्रकार के दण्डों से एक साथ उसे दण्डित करें।[52] वाग्दण्ड एवं धिग्दण्ड प्रायः समाज के बुद्धिजीवी वर्ग के लिए विशेष महत्व रखता था, परन्तु अर्थदण्ड के विषय में मनु तथा याज्ञवल्क्य में कुछ मत भेद है। मनु के अनुसार ढाई सौपणों का प्रथम साहस कहा गया है। पाँच-पाँच सौ पणों का मध्यम साहस तथा एक सहस्त्र पणों का उत्तम साहस जानना चाहिए।[53] याज्ञवल्क्य प्रथम साहस 270 पण मध्यम साहस, 540, एवं उत्तम साहस 1080 पण बताते हैं।[3] मनु के अनुसार कार्षापण निश्चित रूप से तांबे के होते हैं। मनु का कथन है कि चार सुवर्णों का एक पल, दस पलों का एक धरण, दो कृष्णल (रत्तियों) को कांटे पर रखने पर उनके बराबर एक रौप्य माषक मानना चाहिए। उन सोलह रौप्य माषकों को एक रौप्यथरण अथवा चाँदी का पुराण और तांवे के एक कर्ष को कार्षापण जानना चाहिए।[54] याज्ञवल्क्य भी कार्षापण को तांबे का सिक्का बताते हैं।[55] साहसिकों से अर्थदण्ड लेने का निषेध दोनों ही स्मृतिकारों ने किया है। बध दण्ड का तात्पर्य केवल मृत्युदण्ड नहीं है, बस, ताड़न, जेल में बंद करना, बेड़ी डालना, अङ्गच्छेद तथा मृत्यु दण्ड भी आता है। मनु के अनुसार अंगच्छेद दस प्रकार का है— उपस्थ, उदर, जीभ, हाथ, पैर, नेत्र, नासिका, कान, धन, देह, यहाँ देह का दण्ड भारणार्थ हैं। अंगच्छेदनके अलावा उत्पीड़न भी दिया गया है, जो चार प्रकार का है— (1) कशाघात (चाबुक आदि से पिटाई) (2) अवरोधन (जेल भेजकर कर्मों को नियमित करना) (3) बन्धन (बेड़ी डाल देना) (4) विडम्बन (सामाजिक तिरष्कार, मुण्डन, गर्दभारोहण, नगर भ्रमण व जिह्वांकन।

मनु के अनुसार ब्राह्मण को बिना किसी प्रकार दण्डित किए केवल राज्य से निकाल दिया जाता है।[56] याज्ञवल्क्य का भी विचार था कि जहाँ चोरी के अपराध में अन्य वर्गों के लोगों को विभिन्न प्रकार के शारीरिक दण्डों से दण्डित किया जाय, वहीं ब्राह्मण के ललाट पर चिह्न बनाकर, उसे अपने राज्य से निकाल

दें। मनु के अनुसार— जुआड़ियों, कुशीलवों, वेदशास्त्र के विरोधियों, पाखण्डियों, आपत्तिकाल ने होने पर भी दूसरों की जीविका हरण करने वाले और मद्य बनाने वाले लोगों को राजा, राज्य से यथा शीघ्र बाहर कर दें।[58] याज्ञवल्क्य कूट साक्ष्य देने वाले ब्राह्मण को देश से निर्वासित करने को कहते हैं।[59] इसी प्रकार कपटपूर्वक जुआ खेलने वाले कुत्ते के पंजे आदि से चिह्न से दाग कर राज्य से निर्वासित कर देना चाहिए।[60] जोपण के अर्थात् सब के सामूहिक धन का अधर्म पूर्वक अपहरण करे अथवा राजा द्वारा या समूह द्वारा दी गई व्यवस्था का उल्लंघन करे उसका सम्पूर्ण धन छीनकर उसे राज्य से निर्वासित कर देना चाहिये।[61] याज्ञवल्क्य उत्कौच या घूस लेने पर देश निष्कासन का विधान करते हैं। चोर जिस अंग से जिस प्रकार चोरी करे उसके उस उस अंग को राजा कटवा दे ताकि फिर वैसा अवसर न आये।[62] मनु और याज्ञवल्क्य दोनों ने ही चोरों और जेबकतरों के हाथ व पांव कटवाने की व्यवस्था दी।[63] उन्होंने नकली सोना एवं निषिद्ध वस्तु बेचने पर भी नाक, कान काटने का विधान दिया था।[64] याज्ञवल्क्य बध के लिए शस्त्र आदि उठाने पर क्रमशः प्रथम साहस और शस्त्र छूकर छोड़ देने वाले को मध्यम साहस का आधा दण्ड देने को कहते हैं।[65] याज्ञवल्क्य के अनुसार किसी दूसरे का खेत, वन, गाँव, बाड़ी, खलिहान, को जलाने वाले, राजपत्नी के साथ व्यक्ति के व्यभिचार करने वालों को सरहरी में लपेट कर जलवा दिया जाय अर्थात् मृत्युदण्ड दिया जाय।[66] इस प्रकार मनु एवं याज्ञवल्क्य दोनों ही स्मृतिकारों ने दीवानी एवं फौजदारी के छोटे से लेकर बड़े-बड़े अपराधों के लिए अलग-अलग दण्डों का बहुत विस्तार से प्रावधान किया है, इतना ही नहीं किस अपराध में कितना जुर्माना किया जाय, इस का भी उल्लेख किया है। उक्त न्याय व्यवस्था को यदि हम आधुनिक परिप्रेक्ष्य में देखें तो इसकी मुख्य विशेषतायें निम्न प्रकार की दृष्टिगत होती हैं—

(1) वाद को निर्णय करने का अधिकार सभा को दिया गया है, पर दण्ड देने का अधिकारी राजा को बताया गया है।

(2) सभा सर्वोच्च न्यायालय का कार्य करती थी, परन्तु उसे कानून बनाने का अधिकार नहीं दिया गया। सभी कानून कायदे धर्मशास्त्रों के आधार पर ही निश्चित किए जाते थे।

(3) आजकल की भाँति न्यायालय में वकील के लिए कोई प्रावधान नहीं मिलता। "प्राड्विवाक्" ही वादी और प्रतिवादी से जिरह किया करता था।

(4) दण्ड विधान न्यायोचित एवं मनोवैज्ञानिक आधार पर बनाया गया था।

(5) न्यायालय का कार्य करने वाले प्रशासनिक अधिकारी ही होते थे।

(6) प्रतीत होता है कि बंदी गृह (जेलखाने) नहीं होते थे। इसीलिए स्मृतियों में कैद की सजा का विधान नहीं मिलता।

(7) आजकल की भाँति "साक्षी" (गवाह) की महत्ता न्यायिक प्रक्रिया में विद्यमान थी। झूँठी गवाही या "कूट साक्ष्य" देने वालों के लिए दण्ड का विधान हैं।

समीक्षा

याज्ञवल्क्य स्मृति में सामाजिक प्रतिपाद्य विषयों का विस्तार से विवेचन किया गया है— तथा मनुस्मृति के परिप्रेक्ष्य में विविध अपराधों और उनकी दण्ड व्यवस्था का समालोचनात्मक निरूपण किया गया है। प्राचीन भारतीय दण्ड शास्त्र में स्मृतिकारों द्वारा उल्लिखित "अपराध का पाप" अथवा "पातक" से सम्बन्ध का विशेष अध्ययन किया गया। वस्तुतः स्मृतिकारों की तत्कालीन विविध सामाजिक अपराधों एवं तद्विषयक दण्डकी समुचित अवधारणा आधुनिक परिप्रेक्ष्य में भी सर्वथा उपयुक्त सिद्ध हुई है। इसीलिए वर्तमान हिन्दू विधि संहिता (हिन्दू कौड) मुख्यतया याज्ञवल्क्य स्मृति पर विज्ञानेश्वर की टीका मिताक्षरा पर ही आधारित है।

सन्दर्भ

1. अत्र च धर्म शब्दः षड्विध-स्मार्त-धर्म विषयः ।
   तद्यथा वर्ण-धर्मः, आश्रम-धर्मः, वर्णाश्रम धर्मः गुणधर्म,
   साधारण धर्मश्चेति ।— (मिताक्षरा याज्ञवल्क्य 1/81)
2. डॉ० हरिहर नाथ त्रिपाठी, प्राचीन भारत में राज्य और न्यायपालिका, दिल्ली, 1965, पृष्ठ-7
3. महाभारत शान्तिपर्व-59/16-33
4. ऋग्वेद 10/10/4
5. अन्धेध्यौ वै पुरुषो मदनृतं वदति। स वै सत्यमेव वदेत् ।। शत०ब्रा०1/1/1/1, 5
6. वृ०उ०1/4/14 तथा 1/3/28-तदेतानि जपे दसतो मा सद्गमय। तमसौमा ज्योर्तिगमय, मृत्योमाऽमृतं गमयेति ।।
7. याज्ञवल्क्य ने अलग से प्रायश्चित्त अध्याय की योजना की है ।
8. यज्ञानां तपसां चैव शुभानां चैव कर्मणाम्।
   वेद एव द्विजातीत्वां निःश्रेयसकरःपरः ।। याज्ञवल्क्य स्मृति 1/40

9. मातुर्यदग्रे जायन्ते, द्वितीयं मौंजिबन्धनात् ।
ब्राह्मण क्षत्रिय विशस्तस्मादेते द्विजा स्मृताः ।। वही 1/39
10. ते तृपनास्तर्पयन्त्येनं सर्वकाम फलैःशुभः ।
यं यं क्रतुमधीते च तस्य तस्याप्नुयात्फलम् ।। वही 1/47
त्रिवित्तपूर्ण पृथिवी दानस्य फलमश्नुते ।
तपसश्च परस्येह नित्यं स्वाध्यायवान्द्विजः ।। वही 1/48
11. याज्ञवल्क्य स्मृति 1/90, 1/91, 1/92
12. माहिष्येण करण्यां तु रथकारः प्रजायते ।
असत्सन्तस्तु विज्ञेयाः प्रतिलोमानुमजाः ।। वही 1/95
13. देशे कालं उपायेन द्रव्यं श्रद्धा समन्वितम् ।
पात्रे प्रदीयते यत्तत्सकलं धर्म लक्षणम् ।। वही 1/6
14. श्रुतिस्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः ।
सम्यक्संकल्पजः कामो धर्ममूलमिहस स्मृतम् ।। वही 1/7
15. इज्याचारदमाहिंसा दानस्वाध्यायकर्मणाम् ।
अयं तु परमो धर्मों यद्योगेनात्मदर्शनम् ।। वही 1/8
16. चत्वारो वेदधर्मज्ञाः पर्षत्त्रैविद्ययेत वा।
सा बूते यं स धर्मः स्यादेको वाऽध्यात्मवित्तमः ।। वही 1/9
17. पी०वी०काणे, धर्मशास्त्र का इतिहास, भाग-3 पृष्ठ 105
18. मनुस्मृति 4/173
19. याज्ञवल्क्य स्मृति 3/221 प्रायश्चित्तम कुर्वाणाः पायेषु निरता नराः ।
अपश्चात्तापिनः कष्टान्नरकान्यान्ति दारुणान् ।।
20. मनुस्मृति 11/44 विहितस्यानानुष्ठानानिन्दितस्य च सेवनात् ।
अनिग्रहाच्यैन्द्रियाणां नरः पतनमृच्छति।।
21. याज्ञ० 3/219-220 तस्मात्तेनेह कर्तव्यं प्रायश्चित्तं विशुद्धये ।
एवमस्यान्तरात्मा च लोकेश्चैव प्रसीददति ।।
22. मनुस्मृति 11/54 ब्रह्महामयपः स्तेनेस्तथेव गुरुतल्पगः ।
याज्ञ०स्मृति 3/227 एते महापातिकनो यश्च तैःसह संवसेत् ।।-तथा-
एभिस्तु संवसेधो वै वत्सरं सोऽपि तत्समः ।
याज्ञ०स्मृति 3/261 कन्यां समुद्वहेदेषां सोपवासामकिंचनाम् ।।
23. जायसवाल के०पी० मनु और याज्ञवल्क्य पेज-168 **"Hign sins have had a fluctuating history-there were seven such oftences as evidenced by the discription of yÈsks. Abortion was amalgamated with the killing of a Brahmin. Then it was finally narrowed down to the theft of gold. Murder of man was converted into the murder of Brahmin" P.168**
24. मनुस्मृति 11/55-58
25. याज्ञवल्क्य स्मृति— 3/228
अगुरुणामध्यधिक्षेपो वेदनिन्दा सुहृद्वदधः ।

ब्रह्महत्या समं ज्ञेयसधीतस्य च नाशनम्।।

3/229 निषिद्धभक्षणं जैह्यमुत्कर्षे च बचनोऽनृतम् ।
रजस्वलामुखास्वादः सुरापान समानि तु ।।

3/230 अश्व रत्न मनुष्य स्त्री भू धेनु हरणं तथा।
निक्षेपस्य च सर्वं हि सुवर्णस्तेयसम्मितम् ।।

3/231 सगोत्रासु सुतस्त्रीसु गुरुतल्प समं स्मृतम्।
सखिभार्या कुमारीषु स्वयोनिष्वन्त्यजासु ।।

3/232 पितुः स्वसारं तातुश्च मातुलानी स्नुषामपि ।
मातुः सपत्नीं भगिनीभाचायं तनयां तथा

3/232 आचार्यं पत्नीं स्वसुतां गच्छस्त गुरुतल्पनाः ।

26. मनुस्मृति 11/59-60
27. गोवधो व्रात्यता स्तेयमृणानां चान पा क्रिया ।
अर्नाविहताम्निताऽपण्य विक्रयः परिवेदनम् ।। याज्ञ०समृति 3/254
असच्छास्त्राधिगमना करेष्वधिकारिता ।
भार्याया विक्रयश्चैषामैकैकमुपपातकम् ।। याज्ञ०स्मृति 3/242
28. काणे-पूर्वकथित, भाग-2 पृष्ठ 706
29. नारद स्मृति 1/26
30. मनुस्मृति 8/4-7
31. याज्ञवल्क्य स्मृति 2/5
स्मृत्याचार व्यपेतेन मागेणाऽऽधर्षितः परैः ।
आवेदयति चेद्राज्ञे व्यवहार पदं हि तत् ।।
32. याज्ञवल्क्य स्मृति 2/23.
सर्वेष्वर्थविवादेषु बलवत्युत्तरा क्रिया ।
आचौप्रतिग्रहे क्रीते पूर्वां तु बलवत्तरा ।।
33. त्रिपाठी हरिहर नाथ, प्राचीन भारत में राज्य और न्यायपालिका, पृष्ठ 262
34. मनुस्मृति 07/3 तथा 7/14
35. तदवाप्य नृपो दण्डं दुर्वृत्तेषु निपातयेत् ।
धर्पो हि दण्डरूपेण ब्रह्मणा निर्मितः पुरा ।। याज्ञवल्क्य स्मृति 1/354
36. मनुस्मृति 9/294
स्वाम्यभात्या जनो दुर्गं कोशो दण्डस्तूथैव च।
मित्राण्येताः प्रकृतयो राज्यं सप्ताङ्गमुच्यते ।। याज्ञवल्क्य स्मृति 1/353
37. उपायाः सामदानं च भेदो दण्डस्तथैव च ।
सम्यक्प्रयुक्ताः सिद्ध्येयुर्दण्डस्त्वगतिका गतिः।। याज्ञवल्क्य स्मृति 1/346
38. मनु० 7/22
39. याज्ञ०1/354
40. मनु० 7/144

41. याज्ञ० 1/119
42. मनुस्मृति 8/304
43. इतरेण निधो लब्धे राजा षष्ठांशभाहरेत् ।
 अनिवेदित विज्ञातो दाप्यस्तं दण्डमेव च ।। याज्ञवल्क्य स्मृति 1/35
44. मनुस्मृति 8/336
45. यथा शास्त्रं प्रयुक्तः सन् सदेवासुरमानवम् ।
 जनदानन्दयेत्सर्वमन्यथा तत्प्रकोपयेत् ।। याज्ञवल्क्य स्मृति 1/356
46. राजाऽन्यायेन यो दण्डो गृहीतो वरुणाय तम् ।
 निवेद्य दद्याद्विप्रेभ्यः स्वयं त्रिंशद् गुणीकृतम् ।। याज्ञवल्क्य स्मृति 2/307
47. अपिभ्राता सुतोऽर्ध्यो वा श्वसुरो मातुलोऽपि वा ।
 नादण्ड्यो नाम राज्ञोऽस्ति धर्माद्विधलितः स्वकात् ।। याज्ञवल्क्य स्मृति 1/358
48. मनुस्मृति 7/16.
49. ज्ञात्वाऽपराधं देशं च कालं बलमथापि वा ।
 वयंः कर्म च वित्तं च दण्डं दण्ड्येषु पातयेत् ।। याज्ञवल्क्य स्मृति 1/368
50. मनुस्मृति 8/129.,
 धिग्दण्डस्त्वयं वाग्दण्डो धनदण्डो बधस्तथा ।
 योज्या व्यस्ताः समस्ता वा ह्याराधवशादिने ।। याज्ञवल्क्य स्मृति 1/367
51. मनुस्मृति 8/129
52. मनुस्मृति 8/130 2. मनुस्मृति 8/138
53. साशीति पण साहस्रो दण्ड उत्तम साहसः ।
 तदर्थं मध्यमः प्रोक्तस्तदर्धमधम्ः स्मृतः ।। याज्ञवल्क्य स्मृति 1/366
54. पलं सुवर्णाश्चत्वारः पंच वापि प्रकीर्तितम् ।
 द्वे कृष्णले रुप्यमाषो धरणं षोडशैव तै ।। मनुस्मृति 8/135-136/364
55. शतमानं तु दशभिर्धरणैः पलमेव तु ।
 निष्कं सुवर्णाश्चत्वारः कार्षिकस्ताम्रिकः पणः ।। याज्ञवल्क्य स्मृति 1/364-365
56. मनुस्मृति 8/124
57. चोरं प्रदाप्यायहृतं धात्तयेद्विविधैर्वधैः ।
 सविहनं ब्राहमणं कृत्वा स्वराष्ट्राद्विप्रवासयेत् ।। याज्ञवल्क्य स्मृति 2/270
58. मनुस्मृति 9/225
59. पृथक्पृथेग्दण्डनीयाः कूटकृत्साक्षिणमृत्तधाय ।
 विवादाद द्विगणुंदण्डं विवास्योब्राहमणः स्मृत ।। याज्ञवल्क्य स्मृति 2/81
60. दृष्टारो व्यवहाराणां साविणश्च त एव हि ।
 राज्ञा सचिन्ह्नं निर्वास्याः कूटाक्षोपधिदेविनः ।। याज्ञवल्क्य स्मृति 2/202
61. गण द्रव्यं हरेद्वस्तु संविदं लंधयेत् च यः ।
 सर्वस्य हरणं कृत्वा तं राष्ट्राद्विप्रवासयेत् ।। वही 2/187

62. मनुस्मृति 8/334
63. उत्क्षेपकग्रन्थिभेदी कर सन्दशं हीनकौ ।
    कार्यो द्वितीयपराये करपादैकहीनकौ ।। मनुस्मृति 9/276, 277, याज्ञवल्क्य स्मृति 2/274
64. याज्ञवल्क्य स्मृति 2/297, मनुस्मृति 11/237
65. उद्‌गूर्णे प्रथमो दण्डः संस्पर्शे तुतदर्धिकः । याज्ञवल्क्य स्मृति 2/215
66. याज्ञवल्क्य स्मृति 2/282

तृतीय अध्याय

मनु तथा याज्ञवल्क्य द्वारा निरूपित क्रोध से प्रेरित कायिक अपराध तथा तत्सम्बन्धित दण्डों की विवेचना

मानव के सहज आन्तरिक विकारों में क्रोध अन्यतम है। जिस प्रकार काम से दस प्रकार[1] के व्यसन उत्पन्न होते हैं। उसी प्रकार क्रोध से आठ प्रकार के विभिन्न व्यसन उत्पन्न होकर मानव को कायिक अपराध करने के लिए उत्प्रेरित करते रहते हैं। क्रोध से उत्पन्न होने वाले आठ प्रकार के अधोलिखित[2] व्यसन (दुगुर्ण) मनु ने गिनायें हैं।

''पैशुन्यं साहसं द्रोहं ईर्ष्यासूयार्थ दूषणम् ।
वाग्दण्डजञ्च पारुष्यं क्रोध जोऽपि गणोऽष्टकः ।। मनु० 7/48

अर्थात् किसी का अज्ञात दोष प्रकट करना, साहस अर्थात् बुरे कामों में हिम्मत दिखाना, द्रोह, ईर्ष्या (दूसरे के गुणों को न सहना), असूया (दूसरे के गुणों में दोष देखना), अर्थदास (अग्राह्य द्रव्य लेना और क्षय प्रत्य न देना) कठोर भाषण, (अपशब्द गाली बकना), क्रूर ताड़न ये आठ क्रोध से उत्पन्न व्यसन है। इन व्यसनों में से अधोलिखित तीन क्रोधोत्पन्न व्यसन विशेष कष्टप्रद हैं।

''दण्डस्य पातनं चैव वाक्यारुष्यार्थ दूषगम् ।
क्रोधजेऽपिगणे विधात् कष्टमेतत्रिकं सदा ।। (मनु० 7/51)

अर्थात् क्रोध से किसी पर दण्ड प्रहार करना, क्रूर बचन कहना (गाली देना) और अर्थ अपहरण करना। ये तीन व्यसन क्रोधोत्पन्न व्यसनों में विशेष कष्टप्रद हैं।

उपर्युक्त तीनों व्यसनों से क्रोधोत्पन्न कायिक अपराध समाज में प्रायः होते रहते हैं जिनके सम्बन्ध में मनु और याज्ञवल्क्य दोनों अपनी-अपनी दृष्टि से गम्भीर

विचार किया है, जिनका संक्षेप में यहाँ विवेचन किया जा रहा है—

किसी के शरीर पर लाठी या दण्ड से प्रहार करना–

यदि कोई क्रोध से जिस किसी अंग से ब्राह्मण को मारता है, तो मनु के अनुसार उसका वही अंग काट देना चाहिये[3]. यदि कोई क्रोध से ब्राह्मण को मारने के लिए क्रोध से लाठी या डण्डे से मारता हो तो उसका वह हाथ काट लेना चाहिए[4]. किसी ब्राह्मण को हाथ से दण्ड प्रहार के अपराध पर याज्ञवल्क्य ने मनु द्वारा निर्दिष्ट हाथ काटने की अपेक्षाकृच्छ्र (डण्डा उठाने पर) अतिकृच्छ्र (लाठी डण्डा मार देने पर) तथा कृच्छातिकृच्छ्र (डण्डा मार कर रुधिर निकाल देने पर) व्रत करने की दण्ड की व्यवस्था दी हैं।

''विप्रदण्डोद्यमे कृच्छ्रस्त्वातिकृच्छ्रो निपातने ।
कृच्छ्रातिकृच्छ्रोऽस्तक्पाते कृच्छ्रोऽभ्यत्तरशोषिते ।। याज्ञ० 3/292

यदि कोई शूद्र जान बूझकर ब्राह्मण को क्रोध से मारपीट कर उत्पीड़ित करता है, तो राजा ऐसे सताने वाले शूद्र को छेदनताड़न और प्राणनाशक विविध कठोर दण्डों से दण्डित करे[5]. ऐसी मनु की कठोर दण्ड व्यवस्था हैं। याज्ञवल्क्य ने भी इस अपराध के सम्बन्ध में दण्ड की व्यवस्था में मनु की तरह का परिचय देते हैं।

विप्रपीडाकरं छेद्यमङ्गमब्राह्मणस्य तु ।
उद्गीर्णे प्रथमो दण्डः संस्पर्शे तु तद्वर्धिकः ।। (याज्ञ० 9/215)

ब्राह्मण को पैर से प्रहार करना–

यदि कोई समाज का निम्न वर्ण का व्यक्ति किसी ब्राह्मण को क्रोध से हाथ से मारता है तो उसके हाथ काट डालना, यदि लात मारता है तो इस अपराध के लिए मनु ने उसके पैर काट डालने की कठोर दण्ड व्यवस्था दी है।[6] जबकि इस म्बन्ध में याज्ञवल्क्य[7] भी मनु के समान कठोर प्रतीत होते हैं, तथापि ब्रह्महिला जैसे अपराध में रहस्य प्रायश्चित्त[8] बताने से उनका ग्राह्य या पैर प्रहार करने के अपराध में दण्ड विषयक उदार दृष्टिकोण का अनुमान लगाया जा सकता है।

अंग–भंग करना–

यदि क्रोध से कोई किसी पर दण्ड या अस्त्र प्रहार से खाल काटकर खूनमांस निकालकर अंग–भंग करता है तो मनु ने सजातीय का खाल और खून निकालने पर 100 पण जुर्माना, मांस काटने पर 6 निष्क और हड्डी तोड़ने पर अपराधी देश से निकाले जाने की दण्ड व्यवस्था निर्धारित की है।[9] याज्ञवल्क्य अंग–भंग करने के

अपराध का स्पष्ट उल्लेख न कर मारकर रुधिर निकाल देने अथवा चोट के स्थल पर खून आ जाने पर मनु के समान उपरिनिर्दिष्ट आर्थिक जुर्माना न कर इस अपराध के लिये प्रायश्चित्त स्वरूप अपराधी को कृच्छ्रातिकृच्छ्र व्रत[10] का विधान बताते हैं।

हाथ से केश, पैर, गर्दन अण्डकोश खींचना–

यदि क्रोधवश कोई शूद्र किसी ब्राह्मण की चोटी या केश पकड़कर खीचता है तो मनु इस अपराध की कठोर दण्ड व्यवस्था में राजा को बिना विचार किये उस शूद्र के दोनों हाथ काटने का निर्देश देते हैं[11] यही दण्ड विधान उन्होंने ब्राह्मण के पैर, दाढ़ी, गर्दन,एवं अण्डकोश शूद्र द्वारा हाथ से खींचने पर बताया है।

जबकि याज्ञवल्क्य ने इस सम्बन्ध में मनु जैसी कठोर दण्ड व्यवस्था न ग्रहण कर बलपूर्वक पैर, केश, वस्त्र आदि खींचने में दस पण का जुर्माना और पीड़ा पहुंचाते हुए वस्त्र से बांधकर, पैर से मारने पर अपराधी को सौ पण का अर्थदण्ड निर्धारित किया है।

पादकेशांशुककरोल्तुन्चनेषु पणान्दशः ।
पीडाकर्यां शुकावेष्टपादाभ्यासे शतं दमः ।।

याज्ञ० व्यवहाराः दण्डयारुष्य 19/217

कठोर भाषा, अपशब्द कहना या गाली देना–

यदि क्रोधवेश में कोई क्षत्रिय ब्राह्मण को कटुबचन या अपशब्द सुनाता है तो उसे सौ पण, और वैश्य यदि कठोर संभाषण (गाली) देकर बात करता है तो उसे 150 पण या 200 पण और यदि शूद्र अपशब्द बकता है तो उसको देहदण्ड (प्राणदण्ड) देने का विधान मनु ने निर्दिष्ट किया है।

शतं ब्राह्मणमाकृश्य क्षत्रियो दंजुमर्हति ।
वैश्योऽप्यर्धशतं द्वे वा शूद्रस्तु बधमर्हति ।। मनु० 8/267

याज्ञवल्क्य ने इस प्रकार कठोर सम्भाषण पर उत्तम साहस का दण्डविधान निर्दिष्ट किया है।[12] ब्राह्मण क्षत्रिय से यदि वैसी कठोर बात कहे तो उसे 50 पण, वैश्य से कटु बचन बोलने पर 25 पण और शूद्र से कटु संभाषण पर उसे 12 पण दण्ड देने का निर्देश मनु ने दिया है।[13] यदि समाज के तीन वर्णों (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य) लोग परस्पर एक दूसरे से कटु बचन कहें तो 12 पण और अवाच्च बचन बोले तो पूर्वोक्त दण्ड का दुगना दण्ड देने योग्य होता है—

समवर्णे द्विजातीनां द्वादशैव व्यतिक्रमे ।
वादष्वचनीयेषु तदेव द्विगुणं भवेत् ।। मनु॰ 8/269

किन्तु यदि शूद्र, ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य को पापी आदि कहकर गाली देता है तो वह जिह्वाछेदन का दण्ड पायेगा, क्योंकि उसकी उत्पत्ति जघन्य स्थान से हैं।

एकजातिर्द्विजातींस्तु वाचयादारुणयाऽऽक्षिपन् ।
जिह्वायाः प्राप्नुयाच्छेदं जघन्यप्रभवो हि सः ।। मनु॰ 8/270

यदिशूद्र क्रोध अथवा द्रोह से ब्राह्मण आदि द्विजातियों का नाम और जाति ग्रहणपूर्वक कटुबचन कहे तो मनु[14] ऐसे अपराधी के मुख में दस अंगुल की जलती लौह शलाका डालने का निर्देश दिया है।

ब्राह्मण-क्षत्रिय यदि परस्पर को पापी कहकर गाली[15] दें तो नीतिज्ञ राजा ब्राह्मण का प्रथम साहस और क्षत्रिय को मध्यम साहस दण्ड करें। वैश्य और शूद्र भी यदि इस प्रकार परस्पर गाली दें वह कहासुनी करें तो सजा इन्हें भी पूर्वोक्त दण्ड की व्यवस्था करें।[16]

जो अपने माता-पिता, पत्नी, भाई, बेटे और गुरु को गाली आदि कहकर कटुबचन कहे या गुरु का सम्यक् सम्मान न करें तो ऐसे अपराधी को मनु द्वारा एक सौ पण का दण्ड विधान निर्धारित किया गया है।

मातरं-पितरं जायां भ्रातरं तनयं गुरुम् ।
आक्षारयन्छतं दाप्यः पन्थानं याददगुरौः ।। मनु॰ 8/275

यदि वास्तव में कोई काना लँगड़ा है या उसी प्रकार का अन्य अंग-भंग वाला है, उसे वैसा कहकर चिढ़ाने या कटु सम्बोधन करने वाले को कम से कम कार्षापण दण्ड देने का मनु ने निर्देश दिया है।

काणे वाप्यक्षवा खन्जमन्यं वापि तथाविधम् ।
तथ्येनापि द्रुवन्दाप्यो दण्डं कार्क्षापणावरम् ।। मनु॰ 8/274

यदि कोई शूद्र क्रोध अथवा मिथ्या ज्ञानाभिमानी हो किन्हीं ब्राह्मणों को धर्मोपदेश करता है तो राजा उसके मुहँ और कान में खोलता हुआ तेल डालवा दें। जैसा कि मनु ने निर्दिष्ट किया है।

धर्मोपदेशं दर्पेण विप्राणमस्य कूर्वतः ।
तप्तमासेचयेन्तैलं वक्त्रे श्रैत्रे च पार्थिवः।। मनु॰ 8/272

इसी प्रकार यदि कोई किसी की विद्या, देश, जाति और शारीरिक क्षमता को घमण्ड से झूठ बताते हुए कठोर सम्भाषण करे तो मनु ने उसे दो सौ पण दण्ड देने की व्यवस्था निर्धारित की है।[17]

मनु के समान याज्ञवल्क्य ने भी क्रोध से प्रेरित वाक्पारुष्य सम्बन्धी विभिन्न अपराधों के अनुकूल दण्ड निर्धारित किये हैं। वर्णों की प्रतिलोमता से कटु संभाषण पूर्ण दोषारोपण करने पर याज्ञवल्क्य ने सम्भाषण कर्ता पर दूना तिगुना दण्ड निर्धारित किया है जबकि वर्णों की अनुसूमता से (बड़ी जाति वाले पर) मिथ्यारोप लगाये तो वर्णों की अनुलूमता से आधा दण्ड कम होता जाता है।[18] इसी प्रकार याज्ञवल्क्य ने किसी विकलेन्द्रिय और रोगी को सच्चे या झूठे निन्दापरक कटु बचनों से आक्षेप करने पर आदेश कर्त्ता को साढ़े तेरह पण का दण्ड का विधान याज्ञवल्क्य ने निर्धारित किया है।[19] इसी प्रकार यदि कोई किसी से उसकी माँ या बहिन को जार कहकर गाली देता है तो याज्ञवल्क्य ने गाली देने वाले से पच्चीस पण का दण्ड देने का विधान सुनिश्चित किया है।[20]

हीनवर्ण की स्त्रियों के विषय में ऐसी गाली देने पर उपरोक्त दण्ड का आधा और उत्तम वर्ण की परस्त्री के लिए कटु अश्लील सम्भाषण करने पर दूना दण्ड याज्ञवल्क्य ने निर्धारित किया है। इसी प्रकार वर्ण और जाति की उच्चता और निम्नता का विचार करते हुये दण्ड देना चाहिये।[21] यदि कोई क्रोधवश किसी की बाहु, गर्दन, आँख, हड्डी तोड़ने की धमकी देकर कटु सम्भाषण किसी से करता है तो उसे सौ पण का और यदि पैर, नाक, कान, और हाथ तोड़ने की धमकी दे तो उसका आधा अर्थात् पचास पण दण्ड देने का विधान याज्ञवल्क्य ने निर्धारित किया है।[22] यदि अशक्त व्यक्ति इस प्रकार का कटु बचन बोले तो उसे दस पण का दण्ड देना चाहिये और यदि शक्तिशाली व्यक्ति दुर्बल व्यक्ति से ऐसा कटु बचन कहे तो उसे सौ पण देने का विधान याज्ञवल्क्य ने बताते हुये उस दुर्बल व्यक्ति की रक्षा के लिए उससे प्रतिभू (जामिन) उपस्थित कराने का निर्देश दिया।[23]

इसी प्रकार क्रोधवश किसी पर कोई ब्रह्महत्या या मिथ्यारोप लगाये जिससे उसके पतित होने की सम्भावना हो तो उसे मध्यम साहस का दण्ड और उपपातक (गोवध आदि) का मिथ्या दोष लगाने पर प्रथम साहस का दण्ड देना चाहिये।[24] इस प्रकार हम देखते हैं कि मनु और याज्ञवल्क्य दोनों ही क्रोधप्रेरित वाक्पारुष्य विविध अपराधी एवं तत्सम्बन्धित दण्डों के विधान में पूर्णतया सावधान संलक्षित

होते हैं। सामान्यतया इस सम्बन्ध में दोनों के दृष्टिकोण प्रायः समान ही प्रतीत होते हैं।

किसी के ऊपर थूक देना— यदि कोई क्रोध या अहंकार या घृणा से तिरस्कार करने के लिए ब्राह्मण के ऊपर थूक देता है तो मनु के अनुसार[25] उस थूकने वाले के दोनों होंठ कटवाने का दण्ड निर्दिष्ट किया गया है। जबकि मनु की अपेक्षा याज्ञवल्क्य ने इस कठोर दण्ड की अपेक्षा अपराधी के होंठ कटवाने की अपेक्षा 20 पण देने का विधान[26] बताया है।

किसी के ऊपर पेशाब करना— यदि कोई व्यक्ति क्रोध या प्रतिशोध में अपवित्र करने की दुर्भावना से किसी ब्राह्मण के ऊपर पेशाब करता है तो मनु[27] ने उस अपराधी व्यक्ति के लिंग कटवाने के दण्ड का विधान बताया है। याज्ञवल्क्य[28] ने भी मनु के इस दृष्टिकोण का समर्थन किया है अर्थात् ब्राह्मण को पीड़ा देने वाला यदि अब्राह्मण हो तो अंग को (जिससे उसने पीड़ा पहुंचाई हो) काट डालना चाहिए।

अपानवायु (अधोवायु) छोड़ना— इसी प्रकार यदि कोई किसी ब्राह्मण के ऊपर क्रोध प्रतिशोध या दुर्भावना से अपान (अधोवायु) छोड़ता है तो ऐसे अपराधी का मनु ने गुदा या मलद्वार कटवाने का दण्ड निर्धारित किया है।[29] इस सम्बन्ध में याज्ञवल्क्य का भी ऐसा ही दृष्टिकोण है।

किसी ब्राह्मण आदि सवर्ण का अपवित्र करने की क्रोधमूलक प्रतिशोधात्मक दुर्भावना के वशीभूत होकर यदि कोई किसी पर अन्य दूषित अपवित्र पदार्थों भस्म, मल, कीचड़ और धूल, जूठा भोजन आदि फेंकने का अपराध करता है तो इस आपराधिक क्रिया के सम्बन्ध में मनु मौन है, किन्तु याज्ञवल्क्य[30] ने ऐसे अपराधी को दश पण दण्ड देने का निर्देश दिया है।

भस्मपङ्क रजः स्पर्शे दण्डो दशपणः स्मृतः।
अमेध्यपार्ष्णि निष्ठ्यूतस्पर्शने द्विगुणस्तः।।[30]

क्रोध प्रेरित अन्य कायिक अपराध— मनु और याज्ञवल्क्य ने क्रोधप्रेरित विविध कायिक हिंस्र अपराधों की गम्भीर मीमांसा की है। यदि कोई अन्त्यज अपने जिस किसी भी अंग से हाथ, पैर, दाँत, नाखून आदि से किसी भी ब्राह्मण या सवर्ण को मारता है तो मनु ने अन्त्यज के उस अंग को काटने[31] का किन्तु याज्ञवल्क्य ने परिस्थिति अनुसार अंग काटने[31] अथवा हाथ, पैर, दांत, तोड़ने कान, नाक काटने या फोड़ा कुचलने पर मध्यम साहस का दण्ड निर्धारित किया है।

करपाददतो भंगे छेदने कर्णनासयोः।
मध्योदण्डव्रणोद्भेदे मृतकल्पहते तथा।। याज्ञ० व्यव० 219

इसी प्रकार किसी के द्वारा क्रोध वश किसी का चलना, भोजन और बोलना रोक देने पर आँख फोड़ने, ग्रीवा, बाहु, जंघा तोड़ने पर याज्ञवल्क्य ने मध्यम साहस का दण्ड निर्दिष्ट किया है।

चेष्टाभोजनवाग्रोधे नेत्रादिप्रतिभेदने।
कन्धरा वाहुसेक्थनां च भंगे मध्यमसाहसः।। याज्ञ० 220

यदि व्यापारी लोग क्रोध या प्रतिशोध से प्रेरित होकर परस्पर मिलकर रजक आदि और शिल्पियों को पीड़ित करें तो याज्ञवल्क्य ने ऐसे अपराधियों को उत्तम साहस दण्ड देने का विधान बताया है।

सम्मूखकुर्वातामर्य सम्वाधं कारुशिल्पिनाम्।
अर्थस्य ह्रासं दृर्द्धिं वा जानतो दम उत्तमः।। याज्ञ० व्यव० 249

इसी प्रकार जो व्यापारी परस्पर मिलकर दूसरे देश से किसी के द्वारा लायी गई बस्तु को कम मूल्य पर बिकने से रोक देते हैं अथवा अधिक मूल्य पर बेचते हैं तो उनके लिए भी उत्तम साहस का दण्ड विहित है। (याज्ञ० व्यव० 250)

समीक्षा

इस प्रकार हम देखते हैं कि मनु और याज्ञवल्क्य दोनों ने क्रोध प्रेरित कायिक अपराधों तथा तत्सम्बन्धित दण्डों की गम्भीर मीमांसा की है। मनु हस्त, पाद, दण्ड प्रहारों में इन कायिक हिंस्त्र अपराधों के लिए अंग भंग जैसे कठोर दण्ड का विधान सुनिश्चित करते हैं, जबकि याज्ञवल्क्य मनु के मत का समादर करते हुए भी कहीं मनुस्मृति का अनुसरण तो कहीं पर अपना स्वतंत्र उदार दृष्टिकोण व्यक्त कर समुचित अर्थ दण्ड की व्यवस्था सुनिश्चित करते हैं। व्यावहारिक दृष्टि से मनु की अपेक्षा याज्ञवल्क्य के क्रोधमूलक कायिक विविध हिंस्त्र अपराधों का दण्ड विधान अधिक समीचीन पाया जाता है। इससे प्रतीत होता है कि याज्ञवल्क्य की अपेक्षा मनु के समय सामाजिक परिस्थितियां इन क्रोध-प्रेरित अपराधों के कठोर दण्डों को निर्धारित करने के लिए सर्वथा अनुकूल ही थीं।

सन्दर्भ

1. दशरामसमुल्यानि तथाष्टौ क्रोधजानि च।
   व्यसवानि दुरन्तानि प्रयत्नेन विवर्जयेत्।। — मनुस्मृति 7/45
2. मनुस्मृति 7/48
3. येन केनचिदङ्गेन हिंस्याच्चेच्छ्रेष्ठयन्त्यजः।
   छैतव्यं तत्तदेवास्य तन्मनोरनुशासनम्।। — मनुस्मृति 8/299
4. पाणिमुद्यम्य दण्डं व पाणिच्छेदनमर्हति।
   पादेन प्रहरन्कोपादच्छेनमर्हति।। — मनु० 8/280
5. ब्राह्मफान्बाधमानं तु कामादवरवर्णजम्।
   हन्याच्चित्रैर्वधोपायै रुद्वेजनकरैर्नृपः।। — मनु० 9/248
6. पाणिर्मुद्यम्य दण्डं वा पाणिच्छेदनसर्हति।
   पादेन प्रहरन्कोपादच्छेनमर्हति।। — मनु० 8/280
7. विप्रपीड़ाकर छेद्यमंङ्गम्याब्राह्मणस्य तु। — याज्ञवल्क्य दण्डयासष्य— 19/215
8. त्रिरात्रोपोषितो जप्त्वा ब्रह्ममहा त्वद्यमर्षणम्।
   अन्तर्जले विशुद्ध्येत दत्त्वा गां च पयस्विनीम।। — याज्ञवल्क्यस्मृति 3/301
9. त्वग्भेदकः शतं दण्ड्यो लोहितस्य च दर्शकः।
   मांसभेत्ता तु षण्णिकष्कान् प्रवास्यस्त्वस्थिभेदकः।। — मनुस्मृति 8/284
10. कृच्छ्रातिकृच्छ्रोऽस्टक्याते कृच्छ्रोऽभ्यन्तरशोणिते।। — मनु० 3/292
11. केशेषु गृह्णतो हस्तौ छेदयेदविचारयन्।
    पादयोर्दादिकायां च ग्रीवायां वृषणेषु च।। — मनुस्मृति 8/283
12. याज्ञवल्क्य व्यवहाराध्याय, वाक्यारुष्यम् — 18/211
13. वैविद्यन्टपदेवानां क्षेप उत्तमसाहसाः।
    मध्यमो जातिपूगानां प्रथमो ग्रामदेशयोः।।
14. नामजातिग्रहं त्वेषामनिद्रोहेण कुर्वतः।
    निक्षेप्यो योमयः शंकुर्ज्वलन्नास्ये दर्शाङ्गुलः।। — मनु० 8/271
15. ब्राह्मण क्षत्रियाभ्यां तु दण्डः कार्यो विजानता।
    ब्राह्मणे साहसः पूर्वः क्षत्रिये त्वेव मध्यमः।। — मनु० 8/76
16. मनुस्मृति 8/77
17. श्रुतं देशं च जातिं च कर्म शारीरमेव च।
    विलेथेन ब्रुवन्दर्पाह्दाप्यः स्याद्विशतं दमम्।। — मनु० 8/273
18. याज्ञवल्क्य वाक्पारुष्य 18/207
    प्रातिलोम्यापवादेषु द्विगुणात्रिगुणा दमः।
    वर्णानामानुलोम्येन तस्मादधोर्ध हानितः।।
19. सत्यासत्यान्यथा स्तो सैलो त्रैर्न्यूनाङ्गेन्द्रियरोगिणाम्।
    क्षेमं करोति चेद्दण्ड्यः पणानर्यात्रयोदशान्।। — याज्ञ० पाक्पारुष्य 18/204
20. अभिमन्तास्मि भगिनी मातरं वा तवेति हं।

शमन्तं दापयेन्राजा पञ्च विशतिकं दमम।। —याज्ञ० 18/205

21. याज्ञवल्क्य व्यवहाराध्याय वाक्पारुष्य 18/206
22. याज्ञवल्क्य व्यवहाराध्याय 18/208
 बाहु ग्रीवानेत्र सविथ विनाशे वाचिके दमः।
 शत्यस्तदर्धिकः पादनासाकर्णकरादिषु।।
23. बाहु ग्रीवानेत्रसक्थिविनाशे वाचिके दमः।
 शत्य स्तदर्धिकः पादनासाकर्णकरादिषु।। —याज्ञ० व्यवहाराध्याय 18/208
24. याज्ञवल्क्य व्यवहाराध्याय 18/210
25. अवनिष्ठीवतो दर्पाद् द्वावोष्ठौ छेदयेन्नृपः। —मनुस्मृति 8/282
26. याज्ञवल्क्य व्यवहाराध्याय (दण्डपारुष्य प्रकरण) 19/213
 भस्मयं करजः स्पर्शे दण्डो दश पणः स्मृतः।
 अमेध्यपार्ष्णि निष्यूतस्पर्शने द्विगुणस्वः।।
27. अवमूत्रयतो मेढ्रमवशर्धयतो गुदम्। —मनुस्मृति 8/282
28. विप्रपीडाकरं छेद्यमङ्गमब्राह्मणस्य तु। —याज्ञवल्क्य व्यवहाराध्याय 215
29. अवमूत्रयतो मेढ्रमवशर्धयतो गुदम्। —मनुस्मृति 8/282
30. विप्र पीडाकरं छेद्यमङ्गमब्राह्मणस्य तु। —याज्ञवल्क्य व्यवहाराध्याय 215
31. येन केनचिदङ्गेन हिंस्याच्चेच्छेणमन्त्यजः।
 छैतव्यं तत्तदेवास्य तन्मनोरनुशासनम्।। —मनुस्मृति 8/279
32. विप्रपीडाकरं छेद्यमङ्गमब्राह्मणस्य तु। —याज्ञवल्क्य व्यव० 215

चतुर्थ अध्याय

क्रोध प्रेरित कायिक विविध हिंस्त्र अपराध तथा तत्सम्बन्धित दण्डों का तुलनात्मक अध्ययन

वस्तुतः मानवीय आन्तरिक दुर्गुणों में क्रोध ही सर्वाधिक प्रभावी है, जो सामाजिकों को हिंस्त्र अपराध करने के लिये उत्प्रेरित करता रहता है। राज्य में यदि सामान्य नागरिकों में असंयत क्रोधी, "साहसी"[1] और "आततायी"जन है तो भयानक हिंस्त्र अपराध बढ़ते ही रहते हैं। तथा धन जन की अपार क्षति होती रहती है। अतः मनु और याज्ञवल्क्य ने ऐसे क्रोधी निर्धृण "साहसी"[2] और आततायी[3] जनों को कठोर दण्ड देने का निर्देश दिया है।

साहसे वर्तमाने तु यो मर्षयति पार्थिवः।
स विनाशं व्रजस्याशु विद्वेषं चाधि गच्छति।। — मनु० 8/346

न मित्रधारणाद्राजा विपुलाद्वा धनागमात्।
समुसृजेत् साहसिकान् सर्वभूतभयावहान्।। — मनु० 8/347

अर्थात् जो राजा हिंस्त्र साहस करने वाले अपराधी को क्षमा करता है, वह शीघ्र विनाश को प्राप्त होता है और सभी लोग उससे शत्रुता करने लगते हैं। मित्र की धारणा से अथवा प्रचुर धन सम्पर्क लाभ से राजा सब प्राणियों को भयभीत करने वाले "साहसिक"[4] को बिना दण्ड के न छोड़े। जब द्विजातियों का वर्ण और आश्रमधर्म साहसी लोग क्रोधावेश में चलने नहीं देते, जब विपरीत काल के कारण देश में अराजकता फैली हो और अपनी प्राण रक्षा के लिए अथवा धन, गौ आदि की रक्षा के लिए युद्ध करने कर प्रसंग हो, उसी प्रकार जब स्त्रियों और ब्राह्मणों की रक्षा के लिए आवश्यक हो तब द्विजातियों को शस्त्र ग्रहण कर ऐसे साहसिक अपराधियों का प्रतिकार अवश्य करना चाहिए। ऐसे समय धर्मतः हिंसा करने में मनु[5] ने दोष नहीं बताया है। क्रोध प्रेरित गम्भीर हिंस्त्र अपराधों में अधोलिखित अपराध उल्लेखनीय है। जिनकी संक्षेप में यहां विवेचना की जा रही है।

प्राण हत्या— यदि कोई क्रोध अथवा प्रतिशोध के वशीभूत होकर गुरु, अबोध बालक, अशैक्त वृद्ध अथवा शास्त्रविद् ब्राह्मण की प्राण हत्या आततायी बनकर करता है तो ऐसे हिंसक प्राणहर्त्ता का मनु के निर्देशानुसार निःशंक बध कर देना चाहिए।[6] याज्ञवल्क्य ने ब्राह्मण के प्राण-हर्त्ता "महापातकी"[7] की उसी हत ब्राह्मण के सिर की खोपड़ी हाथ में लेकर दूसरी खोपड़ी बांस के डण्डे से ऊपर बांधकर अपने किये हुए दुष्कर्म को सबसे जताकर भिक्षा से प्राप्त अल्पभोजन करते हुए शुद्धि हेतु बारह वर्ष व्यतीत करने का निर्देश दिया है।

शिरः कपाली ध्वजवान्, भिक्षाशी कर्मवेदयन्।
ब्रह्महाद्वादशान्दानि मितभुक् शुद्धिमाजुयात्।। — याज्ञ० प्रायश्चिता 243

क्रोधजन्य साहस अपराध के अन्तर्गत मनुष्य अथवा नारी बध को जघन्यतम अपराध माना गया है। मनुष्य हत्या तो भयंकर अपराध है ही, मनुष्यों में मूर्धन्य माने जाने वाले ब्राह्मण की हत्या घोर एवं जघन्यतम अपराध है। गौतमधर्म सूत्र में ब्राह्मण की हत्या का उल्लेख महापातकों[8] में हुआ है। इसी प्रकार अन्य तीनों वर्णों के मनुष्यों की प्राण हत्या के सन्दर्भ में भी प्रायश्चित विधान बताया गया है।[9] यदि कोई गाय की हत्या क्रोधावश में करता है तो इसका भी प्रायश्चित विधान किया गया है।[10] आपस्तम्ब ने भी ब्राह्मण की प्राणहत्या को गम्भीर अपराध माना ही है, वेदज्ञ ब्राह्मण के बध को तो जघन्यतम अपराध[11] मानते हैं। यदि संकल्प के साथ क्रोध में ब्राह्मण की हत्या की जाती है तो अपराध की गुरुता और बढ़ जाती है।[12] आपस्तम्ब धर्म सूत्र के अनुसार यदि प्रथम वर्ण ब्राह्मण को छोड़कर कोई अन्य वर्ण का व्यक्ति ब्राह्मण की प्राण हत्या करता है तो वह युद्ध में जाकर सेवियों द्वारा मारा जाकर ही अपने पाप से मुक्त हो पाता है।

प्रथमं वर्णं परिहाप्य प्रथमं वर्ण हत्वा संग्रामं गत्वाऽवतिक्षेत् तत्रैनं हन्युः।
— (आ० धर्मसूत्र 1/25/12)

इसी प्रकार ब्राह्मणेत्तर वर्णों के बध, स्त्रियों के बध, गाय की हत्या को भी आपस्तम्ब ने गम्भीर अपराध माना है। बौधायन धर्मसूत्र में भी प्राणहत्या को अपराध गम्भीर एवं अघन्यतम माना गया है। इस प्रकार के क्रोधजन्य अघन्य अपराधों के लिए दण्डविधान भी बौधायन धर्मसूत्र में प्रस्तुत किया गया है। (बौ०ध०सू० 1/10/18/18)

बौधायन धर्म सूत्र के अनुसार ब्रह्महत्या गम्भीरतम सामाजिक अपराध माना गया है, किन्तु क्षत्रिय, वैश्य या शूद्र द्वारा समान वंशवृत्ति और धनवाले व्यक्ति की

हत्या करने पर उतना गम्भीर अपराध नहीं होता है। (बौ०ध०सू० 1/10/18/20) बौधायन ने आगे यह भी उल्लेख किया[12] है कि यदि क्रोधावेश में प्रतिशोधवश कोई क्षत्रिय, वैश्य अथवा शुद्र की हत्या करे तो उसे मृत्युदण्ड देना चाहिए।[13] मनु के मतानुसार वेदादि के व्याख्याता ब्राह्मण, पिता माता, गुरु, गौ तथा सभी प्रकार के संन्यासी तपस्वी अबध्य हैं। अतः इन सभी के प्रतिकूल क्रोधवश आपराधिक आचरण करने वाले आततायी ही हैं। मनु ने आततायियों के बध को चाहे वह प्रत्यक्ष में किया गया हो अथवा अप्रत्यक्ष रूप से किया हो, अपराध नहीं माना है। मनु की अवधारणा है कि मारने वाले आततायी क्रोध मारे जाते हुए के क्रोध को बढ़ाता है।[15]

इस प्रकार से प्राणहत्या के सम्बन्ध में दण्डविधान मनु ने मानवीय दुष्प्रवृत्तियों को दृष्टि में रखकर ही किया है, क्योंकि यह स्वाभाविक ही है कि आततायी यदि किसी व्यक्ति विशेष को मारेगा तो मारे जाने के कारण उस व्यक्ति की क्रोधजन्य प्रवृत्ति विकृत होगी और वह क्रोधावेश में प्रतिकार के लिए अपना बुद्धि विवेक खोकर मारनेवाले की प्राणहत्या करने की स्थिति तक पहुंच सकता है। वह हत्या कर्म प्रतिकारात्मक भावावेश में अविवेक की अवस्था में ही करता है। अतः उसका अपराध क्षम्य है, क्योंकि आघात का प्रारम्भ तो आततायी की ओर से ही होता है।

याज्ञवल्क्य ने भी क्रोधवश किसी के शरीर पर शस्त्र चलाकर पुरुष अथवा नारी का बध करना साहस अपराध स्वीकार किया है तथा मनु के समान ही समीचीन दण्ड व्यवस्था निर्धारित की है।[16]

बृहस्पति का कथन है कि साहस के पांच प्रकार के पातकों में प्रतिशोधवश मनुष्य हत्या करना गम्भीरतम सामाजिक अपराध है तथा उन्होंने इसके अपराधी के लिए अर्थदण्ड के स्थान पर विविध प्रकार के वधों का विधान किया है।[17] बृहस्पति ने कई प्रकार के बधों का उल्लेख किया है, जिसमें प्रथम बध प्रकाश में सबके समक्ष तथा दूसरे बध अप्रकाश में छिपकर किये जाते हैं।[18] सामूहिक बध में मर्म पर प्रहार करने वाला व्यक्ति ही घातक माना जाता है और वही वस्तुतः पूर्ण दण्ड का भागीदार होता है।[19] हत्या कार्य में जो सहायता करता है, वह मर्मघाती के आधे दण्ड का भागीदार होता है।[20] विष्णुस्मृति[21] में भी विष- अग्नि द्वारा किसी की क्रोधावेश में प्राण हत्या करने के अपराध में प्राणदण्ड का विधान किया गया है। साथ ही स्त्री, बालक आदि का प्राणघात करने वाले को भी प्राणदण्ड का विधान सुनिश्चित किया गया है। कात्यायन ने भी हत्यारे आततायी का बध का विधान किया है।[22] वशिष्ठ स्मृति में भी 'छह प्रकार के आततायियों में आग लंगाने, विष देने, और शस्त्र से बध करने वाले जघन्य प्राण हत्याकारी आततायी अपराधियों को प्राणदण्ड का

विधान किया गया है।[23]

इस प्रकार हम देखते हैं कि केवल मनु और याज्ञवल्क्य ने पुरुष-स्त्री, बालक, गौ आदि की प्राणहत्या को जघन्यतम एवं गर्हित मानकर इनके अपराधियों को प्राण दण्ड का विधान किया है। अपितु अन्य धर्मशास्त्रों ने भी इनके दृष्टिकोण का अनुमोदन किया है, जो आधुनिक विधिशास्त्र के भी सर्वथा अनुकूल है।

आत्म हत्या— निराशा अथवा क्रोधवेश में आकर आत्म हत्या करना भी साहसिक अपराधों में अन्यतम सामाजिक अपराध है। संस्कृत धर्मशास्त्र में इस जघन्य अपराध को निन्द्य माना गया है। बृहस्पति[24] ने आत्महत्या को साहसकृत्य स्वीकार कर इस गर्हित अपराध का समुचित दण्ड विधान किया है। तथापि मनु और याज्ञवल्क्य ने साहस प्रकरण के अन्तर्गत आत्महत्या का अपराध रूप में स्पष्ट उल्लेख नहीं किया है, तथापि इनके टीकाकारों ने साहसिक अपराध के अन्तर्गत चाहे दूसरे के प्राणों की हत्या किसी ने की हो अथवा अपने प्राणों की समान रूप से अपराधियों की श्रेणी में आते हैं और इनके दण्ड का समुचित विधान किया गया है।

जो इस प्रकार के साहसिक दुष्कृतों के लिए किसी को उत्प्रेरित करें अथवा हत्या, आत्महत्या जैसे अपराध करने के लिए किसी को विवश करें, याज्ञवल्क्य ने साहसिक को दिये नये दण्ड से साहसिक अपराध कराने वालों से दुगना दण्ड लेने का विधान किया है।[25] और जो ऐसा कहे तुम ऐसा करो जो लगेगा, वह मैं दूंगा या जो कुछ भी होगा, मैं उससे निपट लूंगा, उससे चौगुना दण्ड लेना चाहिये।

इस प्रकार किसी अन्य की प्राण हत्या करने के जघ्न्य अपराध के समान आत्महत्या करना भी भीषण पाप है, जिसे हम आज भी अनेक हताश और विवश स्त्री, पुरुष और बाल-वृद्धों द्वारा समाज को सामान्य रूप से प्रायः जीवन में असफल होते देखा ही करते हैं।

भ्रूण हत्या एवं गर्भपात करना— प्रतिकारवश किसी गर्भिणी स्त्री के द्वारा स्वयं अथवा किसी अन्य व्यक्ति के द्वारा जब अपनी या पराई स्त्री के गर्भस्थ भ्रूण या जीवन की गर्भपात से हत्या की जाती है तो इसे भी धर्मशास्त्रियों ने जघन्य सामाजिक अपराध मानकर समुचित दण्ड विधान सुनिश्चित किया है।

यास्क ने ऋग्वेद (5/317) के अन्तर्गत 7 सामाजिक मर्यादाओं के भंग होने की अवस्था में जिन अपराधों के उत्पन्न होने की स्थिति विवेचित की है, उनमें भ्रूण हत्या भी एक जघन्यतम अपराध है। नारद स्मृति में[26] दस प्रकार के सामाजिक

अपराधों में गर्भपात का भी उल्लेख किया गया है।

मनु ने भी गर्भपात अथवा भ्रूण हत्या को ब्रह्म हत्या के समान अपराध मानकर दण्ड विधान निर्धारित कर यज्ञकर्ता, क्षत्रिय और वैश्य को प्रायश्चित करने का निर्देश दिया है।

हत्वा गर्भमविज्ञातमेतदेव व्रतं चरैत्।
राजन्यवैवूयौ चेजानावात्रेयीमेव च स्त्रियम्।। — मनु० 11/87

याज्ञवल्क्य ने भी भ्रूण हत्या अथवा गर्भपात कराने को जघन्यतम साहसिक अपराध माना है। उन्होंने इसे जीव हत्या के समान निन्द्य अपराध मानते हुए ऐसे अपराधियों के लिए उत्तम साहस के दण्ड का विधान किया है।

शस्त्रावपाते गर्भस्य पातने चोत्तमो दमः।
उत्तमो वाऽधमो वापि पुरुषस्त्री प्रमाणे।। — याज्ञ० व्यव० 277

विप्रदुष्टां स्त्रियं चैव पुरुषहनीमगर्भिणीम्।
सेतुभेदकरीं चाप्सु शिलां बध्वा प्रवेशयेत्।। — याज्ञ० 2/278

कुएं, तालाब या भोजन में विष मिलाना— जब क्रोध अथवा प्रतिशोध वश कोई व्यक्ति बैरभाव से किसी व्यक्ति या व्यक्तियों को मारने के लिए उनके अथवा उनके पशुओं को पीने वाले कुएं–तालाब के पानी या भोजन में विष मिलाता है तो इस प्रकार विष देकर प्राणहत्या करने वालों को भी धर्मशास्त्रकारों ने आततायी कहा है। वशिष्ठ स्मृति में छह प्रकार के आततायियों में विष देने वालों की भी गणना हुई है।[27] इसी प्रकार कात्यायन स्मृति में भी आततायियों की चर्चा में प्राण हत्याकारी विष देने वाले आततायियों का उल्लेख किया गया है।[28]

कहीं कोई क्रोधावेश में प्रतिकारार्थ वंश परिवार सहित किसी को विनष्ट करने की आपराधिक कुचेष्टा में सार्वजनिक कुएं या तालाब के पेयजल में विष न मिला दे। अतः विष के विक्रय को भी मनु ने विष[29] को निषिद्ध बताया है। पेय एवं भोज्य अदूषित द्रव्यों को विष अथवा अपेय अखाद्य पदार्थों से मिश्रित करने पर मनु[30] द्वारा अपराधी को प्रथम साहस दण्ड की व्यवस्था की गई है।

याज्ञवल्क्य ने भी मनु के समान जल या भोजन में विष मिलाने को जघन्य अपराध माना है। उनके मतानुसार यदि किसी स्त्री ने दूसरे को अथवा अपने पति को गुरु–बच्चों को मारने के लिए खाद्यान्न में विष दिया हो तो यदि वह गर्भिणी न हो तो उसके कान, हाथ, नाक, और होंठ काट कर उसे बैलों से मरवा डालने का

दण्ड विधान किया है।

विषाग्निदां पति गुरु निजापत्य प्रमापणीम्
विकर्ण करनासौष्ठीं कृत्वा गोभिः प्रमापयेत्।। — याज्ञ० व्यवहारा० 279

इसी प्रकार कभी प्रतिकार लेने वाले पुरुष द्वारा विष मिलाने के दुष्कृत्य पर कठोर दण्ड व्यवस्था लागू होती होगी। इस प्रकार मनु और याज्ञवल्क्य दोनों ने पेय और खाद्य पदार्थ में विष मिलाने को जघन्य अपराध मानकर समाज में पाप से भयरहित बनाने के लिए रोकने की समुचित दण्ड व्यवस्था सुनिश्चित की है, क्योंकि बड़े बड़े क्रोधी और क्रूर दुष्ट लोग भी दण्ड भय से मृदु होकर सुधर जाते हैं और उचित धर्म मार्ग पर चलने लगते हैं जैसा कि शुक्रनीति का इस सम्बन्ध में अभिमत है।

क्रूराश्च मार्दवे यान्ति, दुष्टा दौष्ट्यं त्यजन्ति च।
पशवोऽपि वशं यान्ति विद्रवन्ति च दस्यवः।।

जायते धर्मनिरताः, प्रजा दण्डभयेन च।
करोत्याघर्षणं नैव तथा चासत्यभाषणम्।। — शुक्रनीति 4/46-47

इस प्रकार से क्रोधावेश में प्रतिशोधार्थ किये गये विष मिलाने से जघन्य अपराधों में समुचित दण्ड से समाज में पुनरावृत्ति नहीं होती है तथा सभी नागरिक सद्भावपूर्वक धर्म का परिपालन करने लगते हैं।

आग लगाना— क्रोधावेश में प्रतिशोधवश किसी के प्रति हिंस्रभाव से उसकी धनसम्पत्ति तथा प्राणों का नाश करने के लिए जब कोई दिन या रात में घर, द्वार, गोष्ठ, खेत, खलिहान में आग लगाता है, तो वह जघन्यतम अपराध धर्मशास्त्रियों द्वारा निन्दित किया गया है।

विष्णु स्मृति[31] में प्रतिशोधपूर्वक प्राणहत्या अग्नि लगाकर करने वाले अपराधी आततायियों के लिए प्राणदण्ड का विधान किया गया है। वशिष्ठ ने 6 प्रकार के हिंस्र आततायियों का उल्लेख किया है, जिसमें अग्नि लगाकर[32] निर्दयतापूर्वक जलाकर धन-जन का भय करने वाले अपराधियों की भी गणना की गई है। जिन्हें इस साहसिक अपराध के लिए प्राणदण्ड देने का निर्देश दिया गया है। बृहस्पति ने क्रोधावेश में अग्नि लगाकर प्राणहत्या करने वाले अपराधियों को साहसिक[33] बताया है। कात्यायन[34] आततायियों की चर्चा करते हुए उनमें अग्नि लगाकर नर हत्या करने वाले की भी गणना करते हैं।

अन्य धर्मशास्त्रियों की इस साहसिक अपराध पर दण्ड व्यवस्था के अनुकूल मनु और याज्ञवल्क्य भी अपना दृष्टिकोण व्यक्त करते हैं। जिस स्त्री ने दूसरे को मारने के लिए घर जलाने के कुत्सित उद्देश्य से आग लगाई हो[35] यदि वह गर्भिणी न हो तो उसके कान, हाथ, नाक और ओंठ काटकर बैलों से मरवा डालने का कठोर निर्देश याज्ञवल्क्य ने दिया है। इस कठोर दण्ड विधान से निःसन्देह क्रूर, क्रोधी अपराधी प्रतिशोधवश इस साहसिक अपराध से विरत हो जाते होंगे, क्यों कि कठोर दण्ड से समुचित सामाजिक सुधार सामान्यतः होते रहते हैं और आग लगाने वाले निन्द्य साहसिक अपराधियों की संख्या शून्यप्रायः रह जाती होगी। क्यों कि याज्ञवल्क्य जैसे अति सुलझे हुए धर्मशास्त्री ने किसी दूसरे के खेत पकी फसल, खलिहान, घर, वन, गांव, बाढ़ा आदि में आग लगाने वाले साहसिक अपराधी को कट (सरहरी) में लपेटवा कर जलाने का कठोर दण्ड विधान को निर्धारित किया है।

क्षेत्र वेश्मवनग्रामविवीतखलदाहकाः।
राजपत्न्याभिगामी च दग्धव्यास्तु कटाग्निना।। — याज्ञ० व्यवहारा 282

पुल, जलाशय बांध को तोड़ना— यदि कोई क्रोध से प्रेरित होकर प्रतिशोधवश ग्राम, नगर मार्ग को जोड़ने वाले नदी, नाले के पुल अथवा भरे भारी जलाशय तट बाँध को तोड़ता है तो इस साहसिक हिंस्र अपराध से प्रभूत धन-जन का नाश हो जाता है। क्योंकि पुल तोड़ने से नागरिकों का आवागमन बन्द हो जायेगा और भरे जलाशय (झील, तालाब आदि) का सम्बन्ध तटबन्ध तोड़ने पर खेत, खलिहान घर द्वार सब नष्ट हो जायेंगे। ऐसे समय में साहसिक जघन्य अपराध के लिए धर्मशास्त्रियों ने समुचित दण्ड विधान सुनिश्चित किया है।

बृहस्पति ने पुल, जल या जलाशय आदि को नष्ट करना गम्भीर साहसिक अपराध बताया है। अतः इनके आततायी अपराधियों का बध करने का निर्देश दिया है।

आततायियों के अतिरिक्त साहस कृत्य करने वाले क्रोध प्रेरित जघन्य अपराधियों की चर्चा करते हुए मनु ने कहा है कि ग्राम्य-नगर के तड़ाग के बांध को अथवा आवागमन हेतु नदी-नाले पर निर्मित पुल को तोड़ना गम्भीर अपराध है जिसका दण्ड विधान अपराधी का बध है, किन्तु बाद में यदि वह उसे ठीक कर देता है तो उत्तम साहस का दण्ड उसे देना चाहिये।

यद्यपि प्रतिसंस्कुर्याद्दाप्यस्तूत्तमसाहसः।। — मनु० 9/279

याज्ञवल्क्य ने यद्यपि मनु (9/279) के समान उपर्युक्त साहसिक अपराध का स्पष्ट उल्लेख तो नहीं किया है तथापि देशकाल पात्रपरिस्थिति को ध्यान में रखते हुए इस प्रकार के छोटे बड़े साहसिक अपराधों का दण्ड विधान सुनिश्चित किया है।

क्षुद्रमध्यमहाद्रव्यहरणे सारतो दमः।

देशकाल वयः शक्तिसञ्चिन्त्य दण्ड कर्मणि।। — याज्ञ० व्यव० 275

क्रोध प्रेरित अन्य विविध हिंस्र अपराध

उपर्युक्त अपराधों के अतिरिक्त क्रोध प्रेरित अन्य हिंस्र सामाजिक अपराधी है, जिन पर विचार करते हुए धर्मशास्त्रियों ने उनका दण्ड विधान सुनिश्चित किया है। वस्तुतः विविध आन्तरिक विकारों— घृणा, क्रोध, हिंसा, कुटिलता, निष्ठुरता आदि से ऐसे हिंस्र अपराध समाज में प्रायः होते रहते हैं, जिनमें प्रतिशोध एवं क्रोधवश साहसिक द्वारा किया गया स्त्री संग्रहण जैसा परपीड़ादायक जघन्य अपराध भी है। इस सम्बन्ध में मनु (8/332) के दृष्टिकोण पर मेधातिथि अपना यह समीचीन विचार प्रकट करते हैं—

सहोबलं, तेन पर्तते साहसिकः।

दृष्टादृष्टद्रोषानापरिगण्य जलमाश्रित्य।।

स्तेयहिंसा संग्रहणादि परपीड़ाकरेषु वर्तमानः।

प्रकाशं पुरुषः साहसिकः।।

मनु के समान याज्ञवल्क्य भी स्त्रीसंग्रहण जघन्य साहसिक हिंस्र अपराध पर दण्ड विधान व्यक्त करते हैं—

पुमान् संग्रहणे ग्राह्यः केशाकेशि परस्त्रिया।

सद्यः वा कामजैश्चिह्नैः प्रतिपत्तो द्वयोस्तथा।। — याज्ञ०व्यव० 283

अर्थात् परायी स्त्री को बलपूर्वक केश पकड़कर काम क्रीड़ा करने से बनाये गये चिह्नों से व्यभिचार में प्रवृत्त पुरुष को राजा पकड़ कर दण्डित करे। सामूहिक भड़के क्रोध या प्रतिशोध में राज्य का अन्न भण्डार, शास्त्रागार, देवमंदिर आदि तोड़ना, जलाशय का जल हरण करना, अथवा जल मार्ग अवरुद्ध करना आदि गम्भीर साहसिक अपराध है। मनु ने इस पर अपना विचार व्यक्त करते हुए समुचित दण्ड व्यवस्था (प्राणदण्ड या प्रथम साहस दण्ड देना) निर्धारित की है।

कोष्ठागारायुधागारदेवतागारभेदकान्।

हस्त्यश्वररथहतृश्च हन्यादेवाविचारयन्।।

यस्तु पूर्वानिविस्य तडागस्योदकं हरेत्।
आगमं वाऽन्यपां भिधात् स दाप्यः पूर्वसाहसम्।। — मनु० 9/280-281

इसी प्रकार क्रोध या प्रतिशोध में राजा के कोश का बलात् अपहरण करने की हिंस्त्र कुचेष्टा भी साहसिक जघन्य अपराध है, जिसके लिए मनु ने कठोर प्राण दण्ड की व्यवस्था की है।

राज्ञः कोषापहर्तुश्च प्रतिकूलेषु च स्थितान्।
धातयेत् विविधैर्दण्डैररीणां चोपजापकान्।। — मनु० 9/275

याज्ञवल्क्य ने भी साहसकर्ता ऐसे हिंस्त्र अपराधियों के लिए मनु के समान ही दण्ड विधान निश्चित किया है। याज्ञ० व्यव० 230-231)

इसी प्रकार याज्ञवल्क्य ने प्रतिकारवश बलपूर्वक बन्दीगृह से बन्दी को छुड़ाने वाले, घोड़ा हाथी हरण करने वाले अथवा बलपूर्वक बन्दी का घात करने वालों को हिंस्त्र साहसिक अपराधी मानकर इनको समुचित दण्ड देने का निर्देश दिया है।

बन्दिग्राहांस्तथा वाजिकुञ्जराणां च हारिणः।
प्रसह्य धातिनश्चैव शूलानारोध्ययेन्नरान्।। — याज्ञ० व्यव० 273

समीक्षा

उपर्युक्त क्रोधप्रेरित प्रतिशोधात्मक कायिक हिंस्त्र विविध अपराधों पर दृष्टिपात करने पर हम पाते हैं कि प्रायः धर्म शास्त्र साहित्य में इनके दण्ड विधान पर गम्भीर विचार किया गया है। मनु और याज्ञवल्क्य ने भी इन साहसिक सामाजिक

अपराधों की जघन्यता को ध्यान में रखते हुए इनका कठोर दण्ड विधान सुनिश्चित किया है, चाहे भले ही वह प्राण दण्ड क्यों न हो। आज के विधिशास्त्र द्वारा भी इनके इस दण्डविधान की ग्राह्यता को अनुमोदित किया गया है और तदनुकूल न्यायालयों में आज भी यह समान रूप से व्यवहृत हो रहा है।

सन्दर्भ

1. स्यात्साहसं त्वन्यवत् प्रसभू कर्म यत् कृतम्।
   निस्वयं भवेत्स्तेयं हत्वाऽपव्ययते च या।। — मनु० 8/332
2. ऐन्द्रं स्थान ममि प्रैप्सुर्यशश्चाक्षेयमव्ययम्।
   नोपेक्षेत् क्षणमपि राजा साहसिकं नरम्।। — मनु० 8/244
3. गुरुं वा बालवृद्धौ वा ब्राह्मणं वा बहुश्रुतम्।
   आततायिनमायान्तं हन्यादेवविचारयन्।। — मनु० 8/350

4. सामान्यद्रव्यप्रसभहरयाणत् साहस स्मृतम्।
   तन्मूलाद्विगुणो दण्डो निह्नवे तु चतुर्गुणः।। —याज्ञ० साहस प्रकरणम् 20/230
5. शस्त्रं द्विजातिभिर्ग्राह्यं धर्मो यत्रोपरुध्यते।
   द्विजातीनां च वर्णानां विप्लवे धर्मकारिते।।
   आत्मनश्च परित्राणे दक्षिणानां च संगरे।
   स्त्री विप्राभ्युपपत्तौ च ध्नन्धर्मेण न दुष्यति।। —मनु० 8/348
6. गुरुं वा बालवृद्धौ वा ब्राह्मणं वा बहुश्रुतम्।
   आततायिनमायान्तं हन्यादेवाविचारयन्।। —मनु० 8/350
7. ब्रह्महां ....पतिताः। —गौतम धर्म सूत्र 3/3/1
8. ब्रह्महां सुरापगुरु तल्पगमात्टमित्ट योनिसम्बन्धगस्तेन ..... पतिताः।
   —गौतम धर्म सूत्र 3/3/1
9. अग्नौ सूक्तिर्ब्रह्महनस्त्रिरवच्छात्तस्थ। —गौतम धर्म सूत्र 3/4/2
10. गां च वैश्यवत्। —गौतम धर्म सूत्र 3/4/13
11. आपस्तम्ब धर्म सूत्र 1/28/21 ब्राह्मण मात्र च।
    अथभ्रूणहा श्वाजिनं वा बहिर्लोम परिधाय पुरुषशिरः प्रतीपानर्थमादाय।
12. यः प्रमत्तो हन्ति प्राप्तं दोषकलम्।
    सह संकल्पेन भूयः।। —आप०ध०सू० 1/29/2-3
13. बौ०ध०सू० 1/10/18/19
13अ. मनु० 4/162
14. मनुस्मृति 8/351
15. याज्ञवल्क्य स्मृति 2/266
16. याज्ञवल्क्य 2/278-279
17. बृहस्पति स्मृति—उद्धृत धर्मकोश, व्य० का०, पृ० 1646
18. बृहस्पति स्मृति उद्धृत स्मृति चन्द्रिका 2, पृष्ठ 723
19. बृहस्पति स्मृति—उद्धृत धर्मकोश, व्यवहार० का०, पृ० 1647, 48
20 बृहस्पति स्मृति उद्धृत स्मृति चन्द्रिका 2, पृष्ठ 723
21. विष्णु स्मति 5/9-17
22. कात्यायन स्मृति—(स्मृतिचन्द्रिका) 2, पृ० 723
23. वशिष्ठ स्मृति (स्मृति चन्द्रिका) 2, पृ० 731
24. बृहस्पति स्मृति—(धर्मकोश, व्य० का०) पृ० 1648
25. याज्ञवल्क्य व्यवहारा० 231
    यः साहसं कारयति स दाप्यो द्विगुणं दमम्।
    यश्चैव मुक्ताऽहि दाता कारयेत् स चतुर्गुणम्।।
26. नारद स्मृति-आज्ञालंघन कर्तारः स्त्रीवद्यो वर्णसंकरः।
    परस्त्रीगमनं चौर्य गर्भश्चैव पतिं विना।।
    वाक्पारुष्यमवाच्वं यत् दण्डपारुष्यमेव च।
    गर्भस्यपातनं चौवेत्यंपराधा दशैव तु।। —(नारद स्मृतिचन्द्रिका) 2, पृ० 63)

27. वशिष्ठ स्मृति— (स्मृति चन्द्रिका) 2, पृ० 741
    अग्निदो गरदश्चैव शास्त्रपाणिर्धना।
    क्षोत्रदारहरश्चैव षडेते आततायिनः।।
28. कात्यायन स्मृति— (स्मृतिचन्द्रिका) 2, पृ० 731
29. अपः शस्त्रं विषं ....। — मनु 10/88
30. अदूषितानां द्रव्याणं दूषणे भेदने तथा।
    मणीनांमपवेधेन्य दण्डःप्रथमसाहसः।। — मनु०
31. विष्णु स्मृति 5/9-17
32. वशिष्ठ स्मृति— (स्मृति चन्द्रिका) 2, पृ० 731
    अग्निदो गरदश्चैव शास्त्रपाणिर्धनापहः।
    क्षेत्रदारहरश्चैव षडेते आततायिनः।।
33. बृहस्पति स्मृति (स्मृति चन्द्रिका, 2), व्यवहारा प्र०, पृ० 764
34. कात्यायन स्मृति— (स्मृति चन्द्रिका) व्यव० 2, पृ० 731
35. विषाग्निदां पतिगुरु निजापत्य प्रमापणीम्।
    विकर्णकर नासौर्ष्ठी कृत्वा गोभिः प्रमापयेत्।। — याज्ञ० व्यवहार, 279

पंचम अध्याय

सामाजिक और धार्मिक अपराध एवं तत्सम्बन्धित दण्ड विधान

जीवन की विविधता के साथ-साथ अपराधों में भी विविधता उत्पन्न होती है। कुछ अपराध सामाजिक या नैतिक होते हैं, तथापि कुछ धार्मिक होते हैं। धर्मशास्त्रों के अनुसार विवाह सम्बन्ध यद्यपि सामाजिक परम्परा है, किन्तु उसकी व्यवस्था धर्म, कर्तव्य और सदाशयता से जुड़ी है।

समय पर कन्या का विवाह न करना

गौतम धर्म सूत्र में समय से कन्या का विवाह न करने वाले पिता आदि को दोषी बताया गया है।[1] इस सम्बन्ध में मनुस्मृति में कन्या और वर के विवाह सम्बन्धी अनेक गुण दोषों का विश्लेषण और निर्धारण किया गया है। मनु के अनुसार किसी दोष युक्त कन्या के दोष छिपाकर उसका कन्यादान करना गम्भीर सामाजिक अपराध है।[2] जो पुरुष दोषवती कन्या का दोष बिना बताये, उसे दान करे, उसको राजा 96 पण का अर्थदण्ड दें[3] तथा मनु ने विधान किया है कि जो पुरुष दोषवाली कन्या का दोष बताये बिना उसे किसी पुरुष के साथ व्याह दे तो वह उस दुरात्मा कन्यादाता के दान को लौटाकर व्यर्थ कर दे, अर्थात् उस कन्या को अपने पास न रखकर देने वाले को सौंप दे।[4] पागल, कुष्ठरोगी, क्षतयोनि कन्या के दोषों को छिपाकर विवाह करना अपराध है, किन्तु दोषों को प्रकट कर विवाह करने पर अपराध नहीं होता है।[5] विवाह व्यवस्था का विस्तृत अनुशीलन करने पर ज्ञात होता है, कि स्मृतिकाल में विवाह सम्बन्धी बंचनाएं संभव थीं।

दिखाई हुई कन्या के स्थान पर अन्य कन्या के साथ विवाह करना

मनु के द्वारा यह ठीक ही कहा गया है कि सुन्दरी या विदुषी कन्या को दिखाकर किसी अन्य कन्या के साथ विवाह करना कपटजनित अपराध होता है।[6] यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि जो कोई कपट वश अथवा द्वेष से कन्या पर मिथ्या दोषारोपण कर अकन्या अर्थात् क्षतियोनि कहकर मिथ्या दोष लगाये जाने पर 100 पण का दण्ड लगाने का विधान मनु ने किया है।[7]

किसी अन्य को कन्या देना

किसी वाग्दन्ता कन्या के पति मर जाने पर उसे किसी अन्य पुरुष को देना अपराध है, मनुस्मृति में ऐसा करने वाले को "पुरुषानृत" दोष का भागी कहा गया है।[8] ऋतुमती भी कन्या का किसी गुणहीन वर को देना अपराध है।[9] किन्तु उसे भी बड़ा अपराध यह है कि कन्या किसी गुणहीन वर को ऋतुमती होने के भय से दे दी जाय, मनुस्मृति में कन्या को विवाह स्वातन्त्र्य भी दिया गया है। यदि पिता योग्य वर मिलने पर भी कन्यादान नहीं करता है, तो यदि कन्या ऋतुमती हो, तो वह स्वयं तीन वर्ष तक प्रतीक्षा के अनन्तर अपने समान योग्यता वाले पति का वरण कर सकती है। इसके लिये कन्या और उसका पति दोषी नहीं होते।[10] इस सन्दर्भ में मनु स्मृति का समर्थन याज्ञवल्क्य स्मृति में भी किया गया है। याज्ञवल्क्य स्मृति में कहा गया है कि पिता, पितामह या भाई, कुल का कोई पुरुष और माता इनमें क्रमशः पहले वाले के अभाव में आगे वाला यदि प्रकृतिस्थ अर्थात् उन्मादादि रोग से मुक्त हो तो कन्यादान दे। यदि कन्या का अधिकारी व्यक्ति कन्यादान नहीं करता तो कन्या के प्रत्येक ऋतुकाल में उसे भ्रूण हत्या का पाप लगता है। यदि कन्यादान देने वाला कोई भी न हो तो कन्या को योग्य वर का स्वयं वरण कर लेना चाहिए।[10बी] याज्ञवल्क्य के अनुसार— जो व्यक्ति (दिखाई पड़ने वाले) दोषों को बिना बताये ही कन्या दान करता है, उसे उत्तम साहस का दण्ड मिलना चाहिए।

निर्दोष कन्या का परित्याग करना

कन्या को ग्रहण करके पुनः उसका त्याग करने वाले को भी यही दण्ड मिलना चाहिए और (विवाह के पूर्व) कन्या में मिथ्या दोष बताने वाले को सौ पणों का दण्ड देना चाहिये।[10सी] ऋतुमती कन्या को ग्रहण करने वाले पति से लोभवश कन्या का पिता यदि धन लेता है तो वह अपराधी होता है।[11]

कन्या विवाह के सम्बन्ध में याज्ञवल्क्य स्मृति में जो उल्लेख उपलब्ध होते हैं, उनसे तत्कालीन सामाजिक और सांस्कृतिक व्यवस्थाओं पर समुचित प्रकाश पड़ता है।

कन्याहरण

याज्ञवल्क्य स्मृति में कहा गया है कि कन्या विवाह में एक बार ही दी जाती है। अतः उसे देकर उसका अपहरण करना चौरकर्म के समान अपराध होता है।[12] कन्या के प्रत्यक्ष दोषों को बिना बताये उसका दान करना अथवा निर्दोष कन्या का त्याग करना, दोनों ही अपराध है।[13] स्त्री द्वारा व्यभिचार— अपराध है। दूसरों का गर्भ

धारण करना भी अपराध है।[14] आज्ञाकारिणी, वीरप्रसूता, मधुभाषिणी पत्नी का त्याग अथवा उसके रहते दूसरी पत्नी स्वीकार करना अपराध होता है। ऐसी स्थिति में राजा उससे धन का तृतीयांश दिलावे और यदि निर्धन हो तो और भोजन वस्त्र दिलाये।[15] विवाह के लिए प्रस्तुत आभूषणों से सुसज्जिता सवर्णा कन्या का अपहरण करना अपराध है। किन्तु यदि कन्या व्याही जाने वाली न हो तो अपराध न्यून होता है। उच्च जाति की कन्या का अपहरण घोर अपराध माना गया है।[16]

मनु स्मृति, याज्ञवल्क्य आदि स्मृतिकारों ने तत्कालीन सामाजिक जीवन का सूक्ष्म और गहन अध्ययन किया था। निष्प्रयोजन अथवा सप्रयोजन अनेक प्रकार के अपराध जो सामाजिक जीवन में घटित होते थे, उनकी ओर उनका ध्यान था। ऐसे कार्य जो सामूहिक या वैयक्तिक रूप में वर्ग, समाज या व्यक्ति के लिये क्षतिकारक होते थे, वे अपराध होते थे। अनेक छोटे छोटे अपराधों का उल्लेख स्मृतियों में उपलब्ध होता है किन्तु इनके लिए निरोधक उपायों अथवा तत्सम्बन्धी दण्डों का क्रमबद्ध उल्लेख नहीं मिलता। इस सम्बन्ध में कहा जा सकता है कि दैनन्दिन अपराधों के लिए कोई तात्कालिक न्याय व्यवस्था अवश्य रही होगी।

जीवनोपयोगी वस्तुओं को विनष्ट करना

मनु के अनुसार किसी वस्तु को विकृत या विनष्ट करना अपराध है चाहे यह कार्य ज्ञातभाव से किया जाय या अज्ञात भाव से किया जाय। मनुस्मृति में कहा गया है कि चमड़ा, चमड़े से बनी वस्तुओं, लकड़ी और मिट्टी से बने बर्तनों और आवश्यक जीवनोपयोगी उपकरणों तथा फल, फूलों, कन्दमूलों को नष्ट करना घोर अपराध हैं।[17] सामान्य नियम के अनुसार आकस्मिक और दैवी व्याघातों से घटित दुर्घटनाएं अपराध श्रेणी में परिगणित नहीं होती।

नाविक की असावधानी से होने वाले अपराध

नाविक की असावधानीवश होने वाले अपराध के लिए दण्ड व्यवस्था है। जैसे नाविकों की असावधानी से यदि यात्रियों या उनकी सामग्री की हानि हो जाये तो वह अपराध होता है और उसके लिए मनुस्मृति में कहा गया है कि यदि नाव खेने वालों की भूल से यात्रियों की कोई चीज नष्ट हो तो नाविकों को चाहिए कि थोड़ा-थोड़ा अपने पास से देकर उसे पूरा करे।[18]

जलाशयों को नष्ट करना या क्षति पहुँचाना : (प्रपाभेदन)

जल की प्याऊ या ग्राम अथवा नगर की परिखा, परकोटों आदि को तोड़ना

अपराध होता है।[19] सरोवर के जल या सिंचाई के जलमार्ग को बाधित या नष्ट करनेवाले व्यक्ति अपराधी होते हैं।[20] विश्वंसात्मक कार्यों में सहायता देने वाले व्यक्ति— अपराधी होते हैं।[21] याज्ञवल्क्य के अनुसार पुरुष के समान स्त्रियां भी अपराधिनी होती हैं। वे भी या तो स्वयं विघटन कार्य में सहायक होती हैं या उन्हें सम्पन्न करती हैं।[22] इस सम्बन्ध में याज्ञवल्क्य स्मृति में विशेष उल्लेख प्राप्त होते हैं। उनके अनुसार गृहदाह के लिए यदि कोई स्त्री अग्नि लाकर किसी अपराधी की सहायता करती है तो वह भी आपराधिनी होती है।[23] खेत, फसल, वन, घर, वाटिका, खलिहान आदि यदि किसी अन्य व्यक्ति के हों और उन्हें कोई जलाता है तो वह अपराधी होता है।[24]

उपर्युक्त विघटनकारी अपराधों के अतिरिक्त समाज में कुछ नैतिक और वैयक्तिक अपराध भी होते हैं।

अतिथि सत्कार न करना

धर्मशास्त्रों में अतिथि सेवा को बहुत महत्व दिया गया है और उसे यज्ञ की संज्ञा दी गयी है। तैत्तिरीय-उपनिषद् में अतिथि को देवता कहा गया है। अतिथि के महत्व का विशद् वर्णन स्मृतियों में भी किया गया है। सामान्य नियम के अनुसार अतिथि का यथोचित सत्कार न करना अपराध की श्रेणी में आता है। भनु के अनुसार अतिथि और गृहस्थ के भोजन में कोई अन्तर नहीं होना चाहिए। गृहस्थ वही खाने का अधिकारी है जो अपने अतिथि को खिलाता है और यदि वह ऐसा नहीं करता है तो वह गृहस्थ अपराधी होता है।[25] यदि कोई गृहस्थ अतिथि सत्कार के आकर्षणवश किसी दूसरे गांव में जाकर, दूसरे का भोजन ग्रहण करता है, तो वह अपराधी होता है।[26]

किसी के साथ प्रवञ्चना करना

समाज की इकाई परिवार में भी यदि कोई धूर्त व्यक्ति परिवार के अन्य व्यक्तियों से बंचना करता है तो वह अपराधी होता है। मनुस्मृति के अनुसार पारिवारिक सम्पत्ति में सभी भाइयों-बहनों का बराबर का हिस्सा होता है। यदि बड़ा भाई अन्य भाइयों को वस्तु-सम्पत्ति आदि में उचित भाग नहीं देता है, तो वह अपराधी होता है।[27] उपर्युक्त अपराधों के अतिरिक्त कुछ अन्य अपराध भी हैं।

विविध सामाजिक एवं धार्मिक अपराध

अन्य साधारण अपराधों का उल्लेख मनुस्मृति में किया गया है। जैसे— जुआ खेलना या खिलाना, वेदशास्त्रों का विरोध करना, पाखण्ड करना तथा आपत्तिकाल

में उपस्थित न रहने पर भी ब्राह्मण द्वारा शूद्र की आजीविका धारण करना अथवा महा (शराब, भाँग, आदि नशीली वस्तुएं) बनाना आदि अपराध की श्रेणी में परिगणित होते हैं।[28] सामाजिक क्षेत्र में कुछ अपराध ऐसे होते हैं जो प्रत्यक्षतः सामान्य होते हैं किन्तु उनके दुष्परिणाम अधिक और बड़े होते हैं। मनुस्मृति में कहा गया है कि मन्त्रादि के प्रयोग से यदि तान्त्रिक किसी व्यक्ति को मारता है तो वह अपराधी होता है। यदि वह मारने में सफल न हो तो भी अपराधी होने का पात्र होता है। इसके अतिरिक्त जो व्यक्ति मारणादि प्रयोगों के लिए किसी तान्त्रिकादि को नियुक्ति करता है तो वह व्यक्ति भी अपराधी होता है।[29]

पारिवारिक परिवेश में भी विहित कर्तव्यों का उल्लंघन करने वाला व्यक्ति अपराधी होता है। जो व्यक्ति माता, पिता, स्त्री और पुत्र का त्याग करता है, वह अपराधी होता है। मनुस्मृति में इसके लिए अर्थदण्ड की व्यवस्था की गयी है,[30] किन्तु गौतम ने राजा की हत्या करने वाले, शूद्र के लिए यज्ञ करने वाले, शूद्र से धन लेकर यज्ञ करने वाले, वेद की हानि करने वाले, ब्राह्मण विद्वान् की हत्या करने वाले, चाण्डाल आदि अन्त्यावसायियों के साथ रहने वाले और उनकी स्त्रियों के साथ सम्बन्ध रखनेवाले पिता का त्याग करने का सुझाव दिया है।[31] परिवेश और पर्यावरण की सुरक्षा का दायित्व समाज और राज्य दोनों का ही होता है। उदाहरणार्थ यदि राजमार्ग पर कोई स्वस्थ व्यक्ति मल मूत्र विसर्जित कर दे तो वह दो कार्षापण का भागीदार होता है।[32]

हरे वृक्ष काटना

आज की ही भाँति स्मृतिकाल में भी हरे वृक्ष काटना अपराध था। स्मृतिकार याज्ञवल्क्य के अनुसार कोपलों से युक्त डालों वाले वृक्षों की शाखा और तना या सम्पूर्ण वृक्ष जीविका निर्वाह का साधन हो जैसे आम इत्यादि, तो क्रमशः बीस, चालीस और अस्सी पण का दण्ड का भागीदार होता है।[32ए] यदि ये वृक्ष धार्मिक स्थान, श्मशान, सीमा, पवित्रस्थान और देवता के मन्दिर में उत्पन्न या पीपल, पलाश आदि धार्मिक महत्व वाले वृक्ष हैं तो उपर्युक्त दण्ड दुगुना हो जाता है।[32बी]

यद्यपि अन्य प्राचीन सभ्यताओं की तुलना में धर्म सम्बन्धी अपराधों के प्रति अधिक सहिष्णु एवं उदार दृष्टिकोण के दर्शन मिलते हैं, किन्तु कतिपय धार्मिक अपराध ऐसे थे, जिनके लिए कठोर दण्डों की व्यवस्था की गयी है। धर्मशास्त्रों के अनुशीलन से ज्ञात होता है कि राज्य और समाज में धर्म की प्रतिष्ठा सर्वोपरि थी। राजा स्वयं ही धर्म के अधीन राज्य का संचालन करता था और

धर्मानुसार न्याय की व्यवस्था करता है। स्मार्त व्यवस्था में वैदिक संस्कृति के अर्चन और आचरण की महत्ता स्वीकृत और व्याख्यायित की गयी है।

देवालयों एवं देव प्रतिमाओं को नष्ट करना

देवालयों एवं देव प्रतिमाओं को नष्ट करना एक गम्भीर अपराध समझा जाता है। मनु मंदिर तोड़ने वाले का बध करवा देने को कहते हैं।[33] कात्यायन के अनुसार— जो देव प्रतिमाओं को चुराता है, तोड़ता है, जलाता है अथवा मंदिरों को नष्ट करता है। उसे प्रथम साहस (250 पण) दण्ड देना चाहिये।[34] पुनश्च मनु प्रतिमा को तोड़ने अथवा किसी प्रकार से नष्ट करने वाले से राजा उन्हें ठीक कराये तथा उस व्यक्ति को 500 पण (मध्यम साहस) दण्ड दे।[35] विष्णु इसी अपराध में उत्तम साहस का दण्ड देने का निर्देश करते हैं।[36] शंख के अनुसार— इसी अपराध के लिए 800 पण का दण्ड देना चाहिये।[37] कौटिल्य के अनुसार देवता के निमित्त पशु, प्रतिमा, मनुष्य, खेत, घर, हिरण्य, स्वर्ण, रत्न और अन्न इन नौ वस्तुओं की जो भी चोरी करे उसे उत्तम साहस का दण्ड अथवा पीड़ा रहित प्राण दण्ड दिया जाय।[38] सोमदेव कृत यशतिलक चम्पू में एक मन्त्री के द्वारा बहुमूल्य मूर्तियों को तोड़कर उन्हें पिघलाने का उल्लेख मिलता है।[39] कल्हण ने अनेक ऐसे राजाओं का उल्लेख किया है जिन्होंने या तो मंदिरों को तोड़ा या मूर्तियों को चोरी करवा दिया।[40]

देवताओं और देव प्रतिमाओं की निन्दा करना

देवताओं और देव प्रतिमाओं की निन्दा करना भी अपराध था। याज्ञवल्क्य के अनुसार देवताओं पर आक्षेप करने से उत्तम साहस का दण्ड होता है।[41] कौटिल्य के अनुसार यदि कोई व्यक्ति देवालयों की निन्दा करे तो उसे उत्तम साहस का दण्ड दे।[42] धार्मिक सहिष्णुता के फलस्वरूप हम पाखण्डियों तथा नास्तिकों के लिए अधिक दण्डों का निर्देश नहीं देखते हैं। मनु अवश्य पाखंडियों को राज्य से निर्वासित कर देने को कहते हैं।[43]

स्मृतिकाल में धर्म का क्षेत्र व्यापक हो जाने के फलस्वरूप किसी को अपवित्र बस्तु खिलाकर अथवा शूद्रों द्वारा उच्च जाति के व्यक्तियों को स्पर्श करके दूषित करना भी धार्मिक अपराध समझा जाने लगा। याज्ञवल्क्य के अनुसार अभक्ष्य पदार्थ द्वारा ब्राह्मण को दूषित करने पर उत्तम साहस का, क्षत्रिय को दूषित करने पर मध्यम साहस का, वैश्य को दूषित करने पर प्रथम साहस का और शूद्र को दूषित करने पर 25 पण का दण्ड दिया जाना चाहिए।[44] कौटिल्य भी इसी मत के पक्षधर हैं।[45]

विष्णु ब्राह्मण को सुरापान कराकर भ्रष्ट करने वाले को मृत्यु दण्ड देने को कहते हैं।[46] उनके अनुसार शूद्र आदि जानबूझ कर उच्च जाति के व्यक्तियों को स्पर्श कर उन्हें दूषित करे, तो उसे प्राण दण्ड देना चाहिए।[47] केवल स्पर्शमात्र के लिए प्राणदण्ड देना अत्यन्त क्रूर एवं अमानवीय है। इसी से याज्ञवल्क्य एवं कौटिल्य जैसे उदारचिंतकों ने इस अपराध के लिए एक सौ पण के दण्ड का निर्देश दिया है।[48]

इसी प्रकार मनु के अनुसार यज्ञोपवीत आदि ब्राह्मण के चिह्नों को धारण करने वाले शूद्रों को राजा हाथ आदि कटवा कर दण्डित करे।[49] याज्ञवल्क्य इसी अपराध के लिए पांच सौ पण का दण्ड (मध्यम साहस) देने को कहते हैं।[50] कौटिल्य के अनुसार जो शूद्र अपने को ब्राह्मण बताये और देव निमित्त धन का अपहरण करे ऐसे व्यक्ति को या तो औषधियों से अन्धा करा दिया जाय अथवा 200 पण का दण्ड दिया जाय।[51] स्मृतिकारों के अनुसार शूद्र द्वारा धार्मिक अपराध समझा जाता था।[52] जानबूझ कर वेद पाठ करने अथवा सुनाने के लिए उसे कठोर शारीरिक दण्ड दिये जाते हैं। स्मृतियों में वैदिक मतानुसार वर्ण व्यवस्था को प्रधानता और गौरव प्रदान किया गया है। न्याय व्यवस्था में वर्ण व्यवस्था से सम्बद्ध सिद्धान्त और नियम पूर्ण रूप से समाविष्ट हैं। इसीलिए एक ही प्रकार के अपराध के लिए वर्णभेद के आधार पर दण्ड व्यवस्था में भी भेद हो जाता है। राजा का दायित्व प्रजा द्वारा धर्मपालन करवाने का होता है, किन्तु धर्म की व्यवस्था देना, धार्मिक आचरण का मार्ग प्रदर्शन करना एवं धर्म को यथार्थ अर्थों में प्रतिष्ठित करना ब्राह्मण का कर्तव्य और ध्येय होता है। इसी प्रकार क्षत्रिय का कर्तव्य और ध्येय रक्षण, पालन एवं युद्ध करने में होता है। कृषि, वाणिज्य और गौ रक्षण के द्वारा वैश्य धन का संग्रह करता है और शूद्र सभी वर्णों की सेवा का कार्य करता है। धर्म के प्रथम चरण पर भिन्न भिन्न वर्णों के लिए उनके कार्य, व्यवसाय, गुण और स्वभाव के अनुरूप धर्म पालन का निर्देश हैं। गौतम के अनुसार विहित कर्मों को न करने वाला तथा अविहित कर्मों को करने वाला दण्ड का भागी होता है।[53] आपस्तम्ब ने भी नियमों का उल्लंघन अपराध माना है।[54]

विशिष्ट वर्ण के लिए विशिष्ट धर्म विहित होता है और तत्सम्बन्धी वर्ग के स्वधर्म पालन न करने पर वह अपराधी होता है तथा दण्ड का भागी होता है अथवा उसका प्रायश्चित या प्रतिकार करना होता है। धर्मसूत्रों एवं स्मृतियों का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि ब्राह्मण यद्यपि सब वर्णों में श्रेष्ठ और धर्म का व्यवस्थापक होता है किन्तु ज्ञात अथवा अज्ञात भाव में वह भी यदि नियमों का उल्लंघन करता है तो वह भी राजा के द्वारा दण्ड का भागी होता है। इसी प्रकार किसी वर्ण विशेष का

व्यक्ति किसी अन्य वर्ण के धर्म के पालन का अनाधिकारी होता है और ऐसा करने पर दण्ड का पात्र होता है। इसी प्रकार विहित नियम के अनुसार स्वधर्म पालन न करने पर अथवा उसका उल्लंघन करने पर भी वह प्रायश्चित अथवा दण्ड का पात्र होता है।

मनुस्मृति के अनुसार यदि ब्राह्मण चोर का धन लेकर अथवा चोर से यज्ञ कराकर या उसे विद्या पढ़ाकर उससे दक्षिणा लेता है, तो वह चोर के समान ही अपराधी माना जाता है।[55] उक्त नियम के अनुसार ब्राह्मण के नैतिक बल का संकेत किया गया है और उसे लोभ या प्रवचन से सुरक्षित रहने का निर्देश दिया गया है। ब्राह्मण के कर्तव्य के सम्बन्ध में यही कहा गया है कि किसी स्वामी विहीन सम्पत्ति का भोग करने का अधिकार ब्राह्मण के लिए तभी सम्भव है जब वह उसे राजा के द्वारा दी गई हो, अन्यथा सम्पत्तिभोग चोरी के समान दण्डनीय अपराध है।[56] नारद स्मृति में भी मनु के उक्त मत का पोषण किया गया है।[47] ब्राह्मण द्वारा चौर कर्म करने पर उसे ब्राह्मण का अपराध क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र की अपेक्षा कई गुना अधिक होता है। ब्राह्मण चोरी के गुण दोषों से भलीभांति परिचित रहता है, अतः जानबूझकर किया हुआ अपराध निःसन्देह दण्डनीय होता है।[58] गुरु का कर्तव्य है कि वह अपने शिष्य को सन्ध्या वन्दनादि के लिए प्रेरित करे और यदि शिष्य विहित विधि का त्याग करके यज्ञ करे, तो ऐसा करने वाला शिष्य और इस अकरणीय को सहन करने वाला गुरु दोनों अपराधी होते हैं।[59] मनु के अनुसार पूज्य व्यक्ति भी अपने धर्म का पालन नहीं करता तो दण्डनीय होता है। पिता, आचार्य, मित्र, माता, स्त्री, पुत्र और पुरोहित आदि में जो अपने धर्म में तत्पर नहीं रहता वह अपराधी होता है।[60] मनु के अनुसार धर्म की आजीविका वाला ब्राह्मण यदि धर्म से भ्रष्ट हो जाय तो राजा द्वारा दण्डनीय होता है।[61] ब्राह्मण के अपराध के सम्बन्ध में ही मनुस्मृति में निर्देश है कि शुभ कार्य के निमित्त यदि बीस ब्राह्मणों को भोजन कराना हो और उसमें योग्य प्रतिवेशी और अनुवेशी ब्राह्मणों को सम्मिलित न किया गया हो, तो वह भोजन कराने वाले ब्राह्मण के लिए अपराध की स्थिति होती है।[62] सम्पन्न ब्राह्मण, किसी यज्ञोपवीत संस्कार से युक्त ब्राह्मण से उसकी इच्छा से प्रतिकूल किसी लोभवश, दास कर्म कराता है या उसे दास कर्म करने के लिए विवश करता है, तो यह उस सम्पन्न ब्राह्मण के लिए अपराध है।[63] ब्राह्मण सम्बन्धी अपराधों की स्थिति का अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि अनेक अपराध दोष की सीमा तक आकर समाप्त हो जाते हैं। और उनके लिए किसी दण्ड व्यवस्था का स्पष्ट निर्देश नहीं है किन्तु ब्राह्मण द्वारा किये गये कुछ अपराधों के लिए कठोर दण्ड को विधान किया गया है उदाहरणार्थ यदि ब्राह्मण

न्यायालय में मिथ्या भाषण करे या कूटसाक्षी दे तो वह राज्य निष्कासन के दण्ड का भागी होता है।[64] इसी प्रकार ब्राह्मण किसी भी की गवाही स्वीकार करके फिर गवाही देने में तटस्थ हो जाय या इन्कार कर दे, तो भी देश निष्कासन के दण्ड का भागीदार होता है।[65]

समीक्षा

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि मनु और याज्ञवल्क्यकालीन समाज में सामाजिक नियमों के उल्लंघन करने पर अनेक धार्मिक अपराध प्रचलित थे, जिनमें ब्राह्मण के द्वारा स्वर्ण की चोरी, ब्राह्मण को पीड़ित करना, देव मंदिर या देव प्रतिमाओं को विनष्ट करना, प्रपाभेदन, हरे वृक्षों को काटना, पुरोहित द्वारा यज्ञानुष्ठान अधूरा छोड़कर जाना अथवा पुरोहित को या यजमान द्वारा दक्षिणा न देना, अन्य कन्या को दिखाकर अन्य कन्या के साथ विवाह करना आदि अनेक अपराध उल्लेखनीय हैं। मनु और याज्ञवल्क्य ने इन सामान्य धार्मिक अपराधों के उन्मूलनार्थ समाज में समुचित दण्ड व्यवस्था निर्धारित की हैं।

वस्तुतः समाज में धार्मिक नियमों के परिपालनार्थ सभी वर्णों के व्यक्तियों को धर्मनिष्ठ और कर्त्तव्यपरायण बनाने की सद्दिशा में मनु द्वारा निर्दिष्ट निर्देशों का याज्ञवल्क्य ने अनुसरण करते हुए धर्म प्रतिकूल, समाजविरोधी आचरण करने वाले, विभिन्न अपराधियों के लिए समुचित दण्ड व्यवस्था की है। इससे लोक जीवन में सुख शान्ति, शुचिता और सदाचरणशीलता सम्बन्धित होगी और सामाजिक एवं ध ार्मिक अपराध समाज में स्वतः ही स्वल्प होंगे। यदि किसी समाज अथवा राज्य में धार्मिक एवं सामाजिक सद्भावना प्रतिष्ठापित होकर अपराध-विहीन आदर्श नागरिक निर्भय होकर विधि विहित जीवन यापन करते हैं तो वस्तुतः वह सुख शान्ति युक्त समाज अथवा राज्य आदर्श राज्य, "रामराज्य" ही होगा, जो मनु और याज्ञवल्क्य के लिए परम अभीष्ट है तथा उनकी अवधारणा के अनुकूल भी।

सन्दर्भ

1. गौतम धर्म सूत्र 2/9/22
2. मनुस्मृति 8/224
3. यस्तु दोषवर्ती कन्यामनाख्याय प्रयच्छिति।
   तस्य कुर्यान्नृपो दण्डं स्वयं षण्णवतिं पणान्।। — मनु० 8/227
4. यस्तु दोषवर्ती कन्यामनाख्यायोपपादयेत्।
   तस्य तद्वितथं कुर्यात्कन्यादातुर्दुरात्मनः।। — मनु० 9/73
5. नोन्मत्ताया न कुष्ठिन्या न च या स्पृष्टमैथुना।
   पूर्व दोषानमिख्याप्य प्रदाता दण्डमर्हति।। — मनुस्मृति 8/205
6. मनुस्मृति 8/204
7. अकन्येति तु यः कन्या ब्रूयाद्द्वेषेण मानवः।
   स शतं प्राप्नुयाद्दण्डं तस्या दोषमदर्शयन्।। — मनु० 8/225
8. न दत्त्वा कस्यचित्कन्यां पुनर्दवाद्विचक्षणः।
   दत्त्वा पुनः प्रयच्छन्ति प्राप्नोति पुरुषानृतम्।। — मनु० 9/71
9. काममामरणात्तिष्ठेद्गृहे कन्यर्तुमत्यपि।
   नच्चैवैनां प्रयच्छेत्तु गुणहीनाय कर्हिचित्।। — मनु० 9/89
10. अदीयमाना भर्तारमाधिगच्छेद्यदि स्वयं।
    नैनः किञ्चिद्वाप्नोति न च यं साधिगच्छति।। — मनु० 9/91

10बी. याज्ञवल्क्य स्मृति, 1/63-64

10सी. अनाख्यायद्दद्दोषं दण्ड्य उत्तम साहसम्।
अदुष्टां तु त्यजन्दण्डयो दूषयंस्तु मृषां शतम्।। — याज्ञवल्क्य स्मृति, 9/66

11. पित्रे न दद्याच्छुल्कं तु कन्यामृतुमतीं हरन्।
    स हि स्वाम्यादतिक्रामेततूनां प्रतिरोधनात्।। — मनुस्मृति 9/93
12. सुकृदेव कन्या प्रदीयत इति शास्त्रनियमः।
    अतस्तां दत्त्वा अपहरन् कन्यां चोरवद्दण्ड्यः।। — याज्ञवल्क्य स्मृति, 1/65
13. याज्ञवल्क्य स्मृति, 1/66
14. व्यभिचरादृतौ शुद्धिर्गर्भे त्यागो विधीयते।
    गर्भभर्तृवधादौ च तथा महती पातके।। — याज्ञवल्क्य स्मृति, 1/72

15. आज्ञासंपादिनीं दक्षां वीरसूं प्रियवादिनीम्।
    त्यजन्दाप्यस्तृतीयांशमद्रव्यो भरणं स्त्रियाः।। —याज्ञवल्क्य स्मृति, 1/76
16. याज्ञवल्क्य स्मृति 2/287
17. मनुस्मृति 8/288, 289
18. मनुस्मृति 8/408, 409
19. मनुस्मृति 8/319
20. मनुस्मृति 9/281
21. मनुस्मृति 9/274
22. याज्ञवल्क्य स्मृति 2/278
23. याज्ञवल्क्य स्मृति 2/279
24. याज्ञवल्क्य स्मृति 2/282
25. मनुस्मृति 3/106
26. मनुस्मृति 3/104
27. मनुस्मृति 9/212, 213
28. मनुस्मृति 9/225
29. मनुस्मृति 9/290
30. मनुस्मृति 8/389
31. गौतम धर्म सूत्र 3/211
32. मनुस्मृति 9/282
32ए. याज्ञवल्क्य स्मृति, व्यवहाराध्याय 19/227
32बी. याज्ञवल्क्य स्मृति, व्यवहाराध्याय 19/228
33. मनुस्मृति 9/280
34. कात्यायन, 808
35. मनुस्मृति 9/285
36. विष्णु॰ 5/174
37. शंखलिखित— विवाद रत्नाकर पृष्ठ 364 में उद्धृत।
38. कौटिल्य 4/85/10
39. यशस्तिलक चम्पू 11
40. राजतरंगिणी 5/169, 7/696, 7/1089
41. कौटिल्य, 3/75/18

42. याज्ञवल्क्य० 2/211
43. मनुस्मृति 9/225
44. याज्ञवल्क्य स्मृति 2/296
45. कौटिल्य, 4/88/13
46. विष्णु० 5/98–103
47. वही 5/104
48. याज्ञवल्क्य० 2/234
49. मनुस्मृति 9/224
50. याज्ञवल्क्य० 2/304
51. कौटिल्य, 4/85/10
52. गौतम, 13/4–5, बृहस्पति 20/12
53. गौतम धर्म सूत्र, 2/3/24
54. आपस्तम्ब धर्म सूत्र, 2/27/18
55. मनुस्मृति 8/340
56. वही, 8/37
57. नारद स्मृति, 10/7
58. मनुस्मृति 8/338
59. मनुस्मृति 8/317
60. मनुस्मृति 8/335
61. मनुस्मृति 9/273
62. मनुस्मृति 8/392, 293
63. वही, 8/412
64. याज्ञवल्क्य 2/81
65. याज्ञवल्क्य स्मृति 2/82

षष्ठ अध्याय

काम प्रेरित विविध सामाजिक अपराध तथा तत्सम्बन्धित दण्डों का तुलनात्मक अध्ययन

अनादि काल से अनधिकृत रूप से कामप्रेरित विविध क्रियायें सामाजिक अपराधों के रूप में परिभाषित हुई है। स्मृतिकारों ने इन कामप्रेरित अपराधों को नैतिक एवं वैवाहिक जीवन के प्रति गम्भीर अपराध के रूप में विहित किया है।[1] पति-पत्नी के पवित्र सम्बन्धों पर अत्यधिक बल दिया गया है।[2] मनु, याज्ञवल्क्य एवं अन्य स्मृतिकारों ने जिन विविध कामप्रेरित अपराधों एवं तत्सम्बन्धित दण्डों का विवेचन किया है वे इस प्रकार हैं—

(1) कन्या-दूषण

स्मृतिकारों ने व्यभिचार अथवा बलात्कार को अनैतिक कृत्य के रूप में देखा है। मनु तथा याज्ञवल्क्य आदि स्मृतिकारों ने कन्या के साथ अवैध संभोग को घृणित एवं कुत्सित अपराध माना है। परन्तु इस अपराध का भी निर्धारण वर्ण भेद के आधार पर किया गया है। इसको तीन आधारों पर विभाजित किया गया— (1) सवर्ण के साधारण (2) अनुलोम वर्ण के आधार पर (3) प्रतिलोम वर्ण के आधार पर। कन्या दूषण या संग्रहण दो प्रकार से होता है (1) मैथुन के द्वारा (2) अंगुलि निक्षेपण के द्वारा। मनु के अनुसार न चाहती हुई और अविवाहित अक्षत योनि कन्या को संभोग के द्वारा दूषित करना सवर्णेत्तर पुरुष का गम्भीर अपराध है, किन्तु यदि कन्या संभोग की इच्छा करती हो तो उसे दूषित करने वाला सवर्णी पुरुष अपराधी नहीं होता है। उक्त कार्य गान्धर्व विवाह माना जाता है।[3] नारद ने भी सवर्ण पुरुष के द्वारा गमन करने पर कन्या को वस्त्राभूषण से अलंकृत कर विवाह कर देने का विधान किया है। किन्तु यदि पुरुष ऐसा न करे तो अपराधी होता है।[4] याज्ञवल्क्य के अनुसार जिस कन्या का विवाह होने वाला हो, उस आभूषणों से युक्त सवर्णा कन्या के साथ संभोग एक गंभीर अपराध है, किन्तु उच्च वर्ण की कन्या होने पर अपराध की गम्भीरता बढ़ जाती है। याज्ञवल्क्य ने कन्या का प्रेम न हो और वह पुरुष

से उच्च जाति की हो, तो अपराध होता है।[5] मनु के अनुसार उच्च जाति के पुरुष के साथ संभोग की इच्छा करने से उसकी सेवा करने वाली कन्या को कुछ भी दण्ड न दें, पर हीन जाति के पास जाने वाली कन्या को दण्ड दें।[6] इसी प्रकार उत्तम वर्ण की कन्या के साथ समागम करने वाला नीच जाति का पुरुष बंध दण्ड का पात्र होता है। समान वर्ण की कन्या के साथ संभोग करने वाले को यदि कन्या का पिता चाहे तो शुल्क लेकर छोड़ सकता है। (इसका आशय यह हुआ कि फिर उसी के साथ विवाह हो जाता है)।[7] इस संदर्भ में नारद का कथन है कि यदि कन्या प्रतिलोम वर्ण की है तथा उसे उसकी इच्छा के विरुद्ध दूषित करने वाले को बध-दण्ड तथा कन्या की इच्छा होने पर धन दण्ड देना चाहिए।[8] याज्ञवल्क्य के अनुसार यदि कोई अपने से हीन जाति की प्रेम न करने वाली कन्या को बलपूर्वक नखक्षतादि से दूषित करे तो उसका अपराध गम्भीर होता है।[9] विश्वरूप के मत में भी गान्धर्व विवाह का विषय होने के कारण सकामा, सवर्णा कन्या अथवा अनुलोम कन्या को दूषित करने पर अपराध नहीं होता है।[10] मनु ने अंगुलि निक्षेपण के द्वारा सवर्णी कन्या की योनि दूषित करने वाले पुरुष को दो अंगुलियों को काटने का विधान किया है।[11] मनु की इस व्याख्या पर मेधातिथि ने "षट्शतानि व दण्ड्यः है" कहकर उक्त दोनों दण्डों में विकल्प कर दिया है। कुल्लूक के अनुसार यह दण्ड अंगुलियों से कन्या की योनि को दूषित करने मात्र में प्रयुक्त होता है।[12] यदि कन्या, कन्या के साथ ऐसा दुर्व्यवहार करे, तो वह 200 पण का अर्थदण्ड राजा को दे और दुगुना शुल्क लड़की के पिता को दे। ऐसी लड़की को दस कोड़े का ताड़न दण्ड भी मनु ने विहित किया है।[13] यदि स्त्री ऐसा कुकृत्य करे तो राजा तत्काल उसकी दो अंगुली कटवाकर, उसके सिर के बाल मुंड़वाकर, गधे पर बैठा कर सड़कों पर घुमावे।[14]

व्यभिचार

याज्ञवल्क्य ने अपनी स्मृति में ऐसे काम-प्रेरित सम्बन्धों की लम्बी सूची दी है, जिनमें व्यभिचार जघन्य अपराध घोषित होता है। पिता की बहन, माता, भाभी, स्नुषा, सौतेली माता, बहन, आचार्य की पुत्री, आचार्य की पत्नी या अपनी पुत्री से संभोग करने वाला, गुरुपत्नी भोगी के समान होता है। यदि ये स्त्रियां स्वेच्छा से भोग करती हैं तो उनके लिये भी कठोर दण्ड की व्यवस्था है।[15] न्यूनाधिक परिवर्तन के साथ नारद ने भी याज्ञवल्क्य के मत का समर्थन किया है। नारद के मतानुसार मौसी, विमाता, सास, चाची, मामी, फूफी, मित्र की पत्नी, शिष्य की पत्नी, बहिन, बहिन की सखी, बधू, पुत्री, गुरुपत्नी, सगोत्रा, शरणागता, रानी, प्रव्रजिता, धात्री, साध्वी व उच्च जाति की स्त्रियों के साथ संग्रहण[15अ] या संभोग करना जघन्य अपराध हैं।[16]

शूद्र द्वारा ब्राह्मणी के साथ संग्रहण : धर्मशास्त्र का आद्योपान्त अनुशीलन करने पर द्योतित होता है किसमस्त अपराध एवं दण्ड विधान वर्ण व्यवस्था पर आधारित है। वर्ण की अनुलोमता एवं प्रतिलोमता के अनुसार अपराध की गम्भीरता निर्धारित होती थी। जहाँ चोरी जैसे अपराधों में दण्ड व्यवस्था अनुलोम थी, वहीं व्यभिचार जैसे अपराधों में प्रतिलोम हो गयी हैं। चतुर्वर्णों में शूद्र का स्थान निम्नवत् तथा ब्राह्मण का स्थान उच्चतम होता है, अतः शूद्र द्वारा ब्राह्मण- स्त्री के साथ व्यभिचार अत्यधिक गम्भीर अपराध माना गया हैं। मनु के अनुसार यदि न चाहती हुई ब्राह्मणी के साथ शूद्र संभोग करे, तो अपराध गम्भीरतम होता है। मेघातिथि, जहाँ 'अब्राह्मण' का अथ क्षत्रिय करता है। वहीं कुल्लूक एवं गोविन्दराज ने दण्ड की अधिकता को ध्यान में रखकर अब्राह्मण का अर्थ शूद्र ही लगाया है। वशिष्ठ के अनुसार यदि शूद्र, ब्राह्मण स्त्री के साथ संभोग करता है तो अपराध अधिक गम्भीर होता है, किन्तु यदि वह क्षत्राणी या वैश्या के साथ संभोग करें, तो अपराध ब्राह्मणी के साथ किये संभोग की तुलना में कुछ कम गम्भीर होता है।[17]

उपर्युक्त विवरण में हम देखते हैं कि मनु, वशिष्ठ आदि स्मृतिकारों ने शूद्र द्वारा द्विज स्त्री के साथ व्यभिचार को जघन्य अपराध माना है, परन्तु याज्ञवल्क्य, नारद, बृहस्पति व व्यास आदि आचार्यों ने शूद्र द्वारा व्यभिचार को अलग से वर्णित नहीं किया है। इन आचार्यों ने हीनवर्ण के अंतर्गत ही, शूद्र को समाविष्ट कर लिया है।

सवर्ण पुरुषों द्वारा व्यभिचार : आपस्तम्ब धर्मसूत्र के अनुसार यदि प्रथम तीन(ब्राह्मण,क्षत्रिय, वैश्य) उच्च वर्ण का पुरुष शूद्र वर्ण की स्त्री से संभोग करे, तो उसे राज्य से निर्वासित कर देना चाहिए।[18] मनु के अनुसार पति द्वारा रक्षित ब्राह्मणी के साथ, यदि ब्राह्मण बलात्कार करता है, तो उसका अपराध संभोग की इच्छा करने वाली ब्राह्मणी, के साथ संभोग करने की अपेक्षा अधिक होता है। इसी प्रकार रक्षित क्षत्राणी के साथ वैश्य और वैश्या के साथ क्षत्रिय संभोग करे तो अरक्षित ब्राह्मणी के साथ संभोग करने के बराबर अपराध होता है।[19] इस संदर्भ में याज्ञवल्क्य ने उच्च वर्णी परस्त्री के साथ व्यभिचार करने पर गम्भीर अपराध माना है किन्तु अपने समवर्णी तथा अपने से निम्नवर्णी स्त्री के साथ व्यभिचार करने पर अपेक्षाकृत कम गम्भीर अपराध माना है।[20] नारद ने भी सजातीय व्यभिचार को उतना ही गम्भीर अपराध माना है, जितना याज्ञवल्क्य ने माना है।[21]

ब्राह्मण द्वारा व्यभिचार : मनु ने अरक्षित क्षत्राणी, वैश्य एवं शूद्रा के साथ

संभोग वाले ब्राह्मण का अपराध गहन माना है, परन्तु यदि वह अन्त्यजा के साथ मैथुन करता है, तो उसका अपराध, उपर्युक्त से दुगना हो जाता है।[22] यदि पति से सुरक्षित क्षत्राणी या वैश्या के साथ ब्राह्मण संभोग करे तो अरक्षित स्त्रियों से संभोग करने की अपेक्षा अधिक गम्भीर अपराध होता है।[23] याज्ञवल्क्य नारद आदि अन्य स्मृतियों का अनुशीलन करने पर ज्ञात होता है कि ब्राह्मण द्वारा व्यभिचार कृत्य का अलग से वर्णन मनु के अतिरिक्त अन्य किसी स्मृतिकार ने नहीं किया है। याज्ञवल्क्य, नारद आदि स्मृतिकारों ने उच्चवर्ण द्वारा किये गये व्यभिचार के अन्तर्गत ही ब्राह्मण द्वारा किये व्यभिचार को भी सम्मिलित कर लिया है। उक्त विषय में एक उल्लेखनीय तथ्य यह है कि ब्राह्मण के लिए शारीरिक दण्ड का सभी स्मृतिकारों ने निषेध किया है। मनु के मतानुसार ब्राह्मण को प्राणदण्ड विहित होने पर उसका मुण्डन करा देना ही प्राणदण्ड के समान है।[24]

ब्राह्मणी के साथ व्यभिचार : मनु के अनुसार यदि वैश्य व क्षत्रिय सुरक्षित व गुणवान् ब्राह्मणी के साथ संभोग करें तो अपराध अधिक गम्भीर होता है, परन्तु अरक्षित ब्राह्मणी के साथ संभोग करें तो उक्त अपराध की अपेक्षा कम गम्भीर होता है।[25] बृहस्पति ने भी पति द्वारा सुरक्षित ब्राह्मणी के साथ संभोग करना गम्भीर अपराध माना है।[26] याज्ञवल्क्य का कथन है कि अपने से उच्च जाति की स्त्री के साथ व्यभिचार करना गुरूतम अपराध है और इसके लिए कठोर दण्ड की व्यवस्था है।[27]

नारद तथा बृहस्पति ने उच्चवर्ण की स्त्री के साथ व्यभिचार करने पर स्पष्ट बध दण्ड का विधान दिया है।[28]

प्रायः सभी स्मृतिकारों ने उच्चवर्णीय पुरुष द्वारा निम्नवर्णीय स्त्री के साथ व्यभिचार का विस्तृत वर्णन किया है। बृहस्पति के अनुसार यदि संभोगित स्त्री, संभोगी पुरुष से निम्न वर्ण की है, तो अपराध आधा हो जाता है, परन्तु यदि छलपूर्वक संभोग किया गया है, तो अपराध गहनतम होता है।[29] याज्ञवल्क्य ने अनुलोम क्रम से अरक्षित हीनवर्ण की स्त्री के साथ संभोग करने पर मध्यम साहस का दण्ड विहित किया है।[30] यहाँ यह ध्यातव्य है कि मनु द्वाराविहित मध्यम साहस 500 पण का है, तथा याज्ञवल्क्य द्वारा विहित मध्यम साहस दण्ड 540 पण का है, परन्तु मनु ने अनुलोम-क्रम से सुरक्षित शूद्रा के साथ संभोग करने पर क्षत्रिय व वैश्य के लिए, याज्ञवल्क्य से लगभग दो गुना 1000 पण) उत्तम साहस दण्ड का विधान किया है।[31] याज्ञवल्क्य ने अन्त्यावसायिनी हीना स्त्री के साथ संभोग करने पर मध्यम

साहस का दण्डविधान दिया है।[32] विश्वरूप ने 'हीनां स्त्रीम्' की व्याख्या हीनांत्वनुलोमां-स्त्रियम्' तथा मिताक्षरा ने भी "हीनां स्त्रियमन्त्यावसायिनीम्" की है। अपरार्क ने "अन्त्यां स्त्रीम्" ऐसा अर्थ किया है और कहा है कि यह दण्ड ब्राह्मण से भिन्न अन्य वर्ण के लिए है।[33] नारद के अनुसार भी अन्त्यावयाची स्त्रियों का गमन करने पर मध्यम साहस का दण्ड होता है।[34] विष्णु का कथन है कि हीनवर्ण की स्त्री के साथ व्यभिचार करने पर मध्यम साहस का अर्थदण्ड होता है, परन्तु अस्पृश्य स्त्री में गमन करने का बध दण्ड विहित है।[35]

याज्ञवल्क्य के मत में ब्राह्मण क्षत्रिय एवं वैश्य आदि चाण्डाली के साथ संभोग करते हैं, जो यौनाकृति का चिह्न दाग कर उन्हें देश से निष्कासित कर दिया जाय।[36] परन्तु मिताक्षरा में उक्त अपराध को इतने गम्भीर रूप में नहीं लिया गया है। इसके विपरीत यदि शूद्र चण्डाली के साथ गमन करे, तो शूद्र चण्डाल हो जाता है।[37] वीर मित्रोदय ने शूद्र के द्वारा चण्डाली से व्यभिचार करने पर भग-चिह्न अंकित करने का विधान किया है, देश निष्कासन का नहीं।[38] इसी प्रकार की व्याख्या विश्वरूप ने दी है, तथा साथ में यह भी कहा है कि शुद्र को निर्वासित कराना, उसको दास बनाने के लिए है उसको दास बनाकर प्रायश्चित् कराना चाहिए।[39] अपरार्क के मतानुसार यदि द्विजाति तथा शूद्र, चण्डाली के साथ संभोग करे तो उनके मस्तक पर सिर रहित पुरुष आकृति अंकित कर उन्हें देश से निष्कासित कर दिया जाय।[40]

स्वैरिणी स्त्री के साथ व्यभिचार : याज्ञवल्क्य का कथन है कि पुरुष संभोग से जीविका चलाने वाली स्वैरिणी दासी के साथ धन दिये ही संभोग करना अपराध है। यदि अनेक, पुरुष मिलकर बलपूर्वक स्वेरिणीदासी के साथ संभोग करे तो उपर्युक्त अपराध का दुगना होता है।[41] नारद ने नियत पुरुष द्वारा रखी हुई, स्वैरिणी स्त्री के साथ समागम करने पर परस्त्रीगमन का दोष माना है। नारद के अनुसार ये गमन योग्य नहीं होती, क्योंकि दूसरे के द्वारा ग्रहण की गयी होती है। परन्तु नारद ने यह भी कहाँ है कि धन देकर रखी हुई स्त्री के साथ कोई यदि दूसरे के घर में समागम करता है तो अपराध माना जाता है।[42] परन्तु यदि स्त्री स्वयं पुरुष के पास आये तो पुरुष का अपराध नहीं होता है। नारद का मत है कि स्वेच्छा से पुरुष के पास आने वाली अब्राह्मणी, वैश्यादासी, निष्कासिनी, आदि स्त्रियों, से समागम अपराध नहीं है।[43] बौधायन के मतानुसार देवदासियों तथा वेश्याओं के साथ संभोग में पुरुष का अपराध नहीं माना है।[44] कात्यायन ने भी माना है कि स्वेच्छा से आयी हुई स्त्री के साथ समागम पुरुष का अपराध नहीं है।[45] यांज्ञवल्क्य ने पुरुष के द्वारा दूसरे की अवरुद्धा जिसका बाहर निकलना मना हो तथा भुर्जिष्या किसी विशेष पुरुष

को सौपी गयी दासी से संभोग करना अपराध माना है।[46]

याज्ञवल्क्य के अनुसार यदि कोई वेश्या शुल्क लेकर स्वस्थ रहते हुए भी पुरुष से संभोग की इच्छा न करे तो वह लिए हुए शुल्क का दुगुना धन दण्ड स्वरूप दे। तथा बिना शुल्क लिए ही संभोग की स्वीकृति देने के बाद नट जाने वाली वेश्या शुल्क के बराबर धन दे। इसी प्रकार का दण्ड-विधानयाज्ञवल्क्य ने वेश्या के समीप गये हुए पुरुष के विषय में विहित किया है। यदि पुरुष शुल्क देने के बाद स्वस्थ होते हुए भी संभोग न करे तो उसे शुल्क वापस नहीं मिलता है।[47] व्यास ने बलात् वेश्या के पास जाने वाले पुरुष को अपराधमाना है।[48]

स्त्री द्वारा व्यभिचार एवं गर्भपात करना :

स्त्री संग्रहण से सम्बन्धित अपराध के सम्बन्ध में सामाजिक धारणा यह है कि स्त्रियों से पुरुषों की अपेक्षा अधिक इन्द्रिय संयम अथवा सतीत्व की आशा की जाती है। दूसरे शब्दों में समाज की कठोरता पुरुषों की तुलना में स्त्रियों के प्रति ज्यादा है। भावावेगवश पथभ्रष्ट हुई स्त्री को समाज पतिता कहकर उसकी भर्त्सना करता है। जबकि अनेक भद्र पुरुष कामुकतावश अनेक लैंगिक अपराध करते हैं। लेकिन नारी गर्भधारण, संतानोत्पत्ति जैसे बाह्य लक्षणों के कारण, अपने काम प्रेरित अपराधों को छिपा नहीं पाती है और उसे समाज एवं कानून की प्रताड़ना ज्यादा मिलती है। स्मृतिकारों ने स्त्रियों द्वारा किये गये अपराधों को पुरुष की तुलना में अधिक गम्भीर माना है। गौतम ने स्त्री द्वारा व्यभिचार एवं गर्भपात को गम्भीर अपराध माना है। व्यभिचार के पश्चात प्रायश्चित न करने वाली स्त्री को कुत्ते से नुचवाने का विधान किया है।[49] विष्णु ने रजस्वला स्त्री का उच्च वर्ण वाले पुरुषों का स्पर्श तथा उनके पास संभोग करना गम्भीर अपराध माना है।[50] आतस्तम्ब धर्मसूत्र में शूद्र के साथ संभोग करने वाली स्त्री को नियम उपवासों से पीड़ित करने को कहा है, परन्तु यह विधान उस त्रैवर्णिक स्त्री के विषय में समझना चाहिए, जिसके कोई संतान न हो।[51]

याज्ञवल्क्य ने स्त्री द्वारा तीन वर्ण के पुरुष के साथ समागम करना गम्भीर अपराध माना है।[52] स्मृति चन्द्रिका ने याज्ञवल्क्य को उद्धृत कर कहा है कि यहाँ नारी के लिए भी दण्डविधान होने से ऐसा प्रतीत होता है कि यह कथन पारस्परिक अनुराग से उत्पन्न वैषयिक उपभोग के विषय में है। साथ ही स्त्री को कठोर दण्ड दिया गया है। अतः ऐसा प्रतीत होता है, कि यह दण्ड विधान उस स्त्री के लिए है जिससे उसके निकट सम्बन्धी सतीत्व का पालन करवाना चाहते हैं। सजातीय एवं

अनुलोम गमन के विषय में स्त्री के अपराध को पुरुष के अपराध से आधा माना गया है, तथा इसी प्रकार का दण्ड विधान भी किया जाता है, क्योंकि याज्ञवल्क्य के उक्त कथन में बधदण्ड के आधे अर्थात् नाक, कान काटने का दण्ड विहित किया गया है।[53] कात्यायन ने भी इसी प्रकार की व्याख्या प्रस्तुत की है।[54] प्रायः सभी स्मृतिकारों ने अनिच्छा से धोखे से सम्भुक्त नारी को अपराधिनी माना है। बृहस्पति ने भी ऐसी स्त्री को घर में गुप्त रूप से रखने तथा उसके लिए शृंगार वर्जित करने की व्यवस्था की है। ऐसी स्त्री को भूमि पर शयन करना चाहिए तथा मात्र जीवनयापन के लिए अन्न ग्रहण करना चाहिए। हीनवर्ण के द्वारा संभोगित स्त्री या तो त्याज्य है या वध्य हैं।[55]

मनु के अनुसार यदि काम के वशीभूत होकर कोई स्त्री पुरुष के पास स्वयं जाय तो स्त्री गम्भीर रूप से अपराधिनी मानी जाती है।[56] इसी प्रकार का विचार बृहस्पति का भी होता है। किसी पुरुष के घर पर आकर कोई स्त्री स्पर्शादि से प्रलोभित करके कामोत्तेजित कर दे तो नारी ही अपराधिनी होती है। ऐसी नारी के लिए कठोर दण्ड की व्यवस्था की गई है।[57] कात्यायन ने भी कामभाव से किसी स्त्री का स्वयं आकर कामाचार करना गम्भीर अपराध माना है। पति के परदेश चले जाने पर यदि कोई स्त्री अभिसार करे तो उसका अपराध पूर्वोक्त अपराध से कम माना जाता है। उन्होंने ऐसी स्त्री को बन्धन में रखने का विधान दिया है।[58]

याज्ञवल्क्य ने स्त्रियों को कामप्रेरित अपराध निम्नांकित माने हैं। निम्न जाति के पुरुष के साथ व्यभिचार करना, भ्रूण हत्या करना।[59] मिताक्षरा की व्याख्या से कुछ इस प्रकार की प्रतीति होती है कि हीनवर्ण के पुरुष के साथ व्यभिचार करना ब्राह्मणी स्त्री के लिए पतन का कारण है, अन्य वर्ण की स्त्री के लिए नहीं इस मत की प्रतीति वहीं पर उद्धृत शौनक के इस मत से भी होती है कि पुरुष के जो पतन के निमित्त होते हैं, वही स्त्री के लिए भी होते हैं, किन्तु ब्राह्मणी हीनवर्ण की सेवा करने पर अधिक पतित होती है। संभवतः इन्हीं पतन के कारणों का प्रतिपादन करने के लिए इससे पूर्व याज्ञवल्क्य की मिताक्षरा टीका में उद्धृत वशिष्ठ ने शूद्र के साथ व्यभिचार से गर्भधारण करने वाली, भ्रूण हत्या, करने वाली पति की हत्या करने वाली, गुरु के साथ संभोग करने वाली स्त्रियों को त्याज्य माना है।[61] मनु के साथ गौतम ने भी ऐसी स्त्री या कन्या को अपराधिनी माना है, कि जो किसी दूसरी कन्या या स्त्री की योनि दूषित करती है।[62] मनु के मतानुसार जो स्त्री अपने सौन्दर्य या धन के घमण्ड में आकर किसी पुरुष के साथ व्यभिचार करे तथा अपने पति का अपमान करे वह अपराधिनी मानी जायेगी।[63]

उपर्युक्त विवरण से ज्ञात होता है कि मनु याज्ञवल्क्य आदि आचार्यों ने स्त्री के अपराध निर्धारण में भी वर्ण की उच्चता एवं निम्नता का विशेष ध्यान रखा है। यही कारण है कि उच्च वर्ण के पुरुष के साथ संभोगरत कन्या को अपराधिनी नहीं माना गया है, जबकि अपने से निम्न वर्ण के पुरुष के साथ संगति करने वाली कन्या को अपराधिनी माना गया है।

अप्राकृतिक व्यभिचार : अप्राकृतिक व्यभिचार के अन्तर्गत धर्मशास्त्रकारों ने पशुओं के साथ मैथुन तथा स्त्रीयोनि के अतिरिक्त मानव शरीर के अन्य किसी अंश में किये गये मैथुन को ग्रहण किया है। याज्ञवल्क्य ने गौ मैथुन को पुरुष का गम्भीर अपराध माना है।[64] नारद ने भी गाय के साथ मैथुन करने वाले को उतना ही गम्भीर अपराधी माना है, जितना याज्ञवल्क्य ने माना है। नारद ने ब्राह्मण के द्वारा गौ मैथुन करना भी गम्भीर अपराध माना है तथा एक सुवर्ण का दण्ड निर्धारित किया है।[65] अन्य पशुओं की योनि में मैथुन करना गौमैथुन की अपेक्षा कम गम्भीर अपराध है।[66]

याज्ञवल्क्य ने स्त्री योनि के अतिरिक्त मुखादि अन्य अंगों में मैथुन करना अपराध माना है।[67] याज्ञवल्क्य के इस कथन की व्याख्या करते हुए 'विवाद-रत्नाकार' तथा विवाद चिन्तामणि में कहा गया है कि अतिराग से जब कोई पुरुष दूसरे पुरुष के पास जाता है, अर्थात् समलैंगिक कृत्य करता है तब वह अपराध होता है, परन्तु अपरार्क ने इसकी भिन्न व्याख्या की है। उनके मत में याज्ञवल्क्य का अभिप्राय मूत्रपुरीष आदि फेंकने से है।[68]

काम-प्रेरित अपराधों के लिए दण्ड व्यवस्था :

स्मृतिकारों ने इन विविध काम-प्रेरित अपराधों के लिए अर्थदण्ड, शारीरिक दण्ड (अंगच्छेदन) तथा मृत्यु-दण्ड का विधान किया है। यहाँ हम इनका विस्तृत वर्णन प्रस्तुत कर रहे हैं।

अर्थदण्ड निम्न अपराधों में विहित है : आपस्तम्ब के अनुसार यदि कोई युवा व्यक्ति जानता हुआ भी कुत्सित उद्देश्य से ऐसे स्थान पर चला जाय, जहाँ कोई विवाहिता स्त्री या कन्या बैठी हो तो उसको अर्थदण्ड देना चाहिए।[69] विष्णु धर्म सूत्र के अनुसार अप्राकृतिक व्यभिचार के लिए ब्राह्मण को 12, क्षत्रिय को 12, वैश्य को 100 और शूद्र को 500 कार्षापण का दण्ड निर्धारित है।[70] मनु ने अर्थदण्ड का निर्धारण वर्ण भेदानुसार किया है। सुरक्षित ब्राह्मणी के साथ ब्राह्मण के बलात् संभोग करने पर 1000 पण और सकामा ब्राह्मणी के साथ करने पर 500 पण का दण्ड विहित है।[71] सुरक्षित क्षत्राणी से यदि वैश्य तथा वैश्या से यदि क्षत्रिय संभोग करे,

तो क्रमशः 500 पण एवं 1000 पण का दण्ड होता है।[72] रक्षित क्षत्राणी व वैश्या के साथ गमन करने पर ब्राह्मण को उत्तम साहस दण्ड, तथा शूद्रा के साथ संभोग करने वाले क्षत्रिय एवं वैश्य पर भी 1000 पण का दण्ड होगा। 1000 पण का दण्ड अन्त्यज स्त्री के साथ संभोग करने पर ब्राह्मण पर भी होता है।[73] अरक्षित क्षत्राणी, वैश्या, शूद्रा के साथ संभोग करने वाले बाह्मण, वैश्य को 500 पण का दण्ड तथा क्षत्रिय को सिर मुड़ाकर 500 पण का दण्ड विहित है।[74] सुरक्षित ब्राह्मणी के साथ यदि, क्षत्रिय व वैश्य संभोग करे तो क्रमशः 1000 पण तथा 500 पण का दण्ड तथा मूत्र से मुण्डन करा दिया जाय। यदि अरक्षित ब्राह्मणी है तो मात्र अर्थदण्ड ही लिया जाय।[75] याज्ञवल्क्य के अनुसार सजातीय पर स्त्री से संभोग करने पर उत्तम साहस तथा वर्ण की अनुलोमता होने पर मध्यम साहस का दण्ड होता है।[76] नारद ने सजातीय स्त्री में यौनपुन्येन गमन करने पर उत्तम साहस तथा अनुलोम क्रम से गमन करने पर मध्यम साहस का दण्ड को विहित किया है।[77]

परपुरुष से बातचीत करना : मनु एवं याज्ञवल्क्य ने पति के मना करने पर भी परपुरुष से बातचीत करने पर 100 सुवर्ण का दण्ड कहा है।[78] उसी प्रकार निषेध किये जाने पर परस्त्री से सम्बन्ध रखने वाले पुरुष को याज्ञवल्क्य ने 200 पण से दण्डित करने का विधान किया है।[79] किन्तु मनु ने व्यभिचार के विषय में अनिन्दित भी पुरुष को अरण्य में, घने वृक्षादि से युक्त वन में, नदी के किनारे, एकान्त में परस्त्री से बातचीत करने पर 1000 पण से दण्डित करने का विधान दिया है।[80]

मनु ने कन्या सम्बन्धी व्याभिचार कर्म के विषय में अर्थदण्ड का विधान करते हुए कहाँ है कि समवर्णी कामुक कन्या के साथ संभोग न करके मात्र उसे दूषित करने पर पुरुष 200 पण के दण्ड का भागी होता है। यहाँ पर उसका अंगुलिच्छेदन नहीं होगा। विवाद-रत्नाकर का मत है कि यह दण्ड व्यवस्था हीन कन्या के विषय में है, किन्तु यदि कन्या ही कन्या की योनी को दूषित करे तो 400 पण का दण्ड होता है।[81] याज्ञवल्क्य ने ब्याही जाने वाली सवर्णा कन्या को अपहृत करने वाले पुरुष को उत्तम साहस का दण्ड तथा ब्याही जाने वाली न होने पर प्रथम साहस का दण्ड निर्धारित किया है तथा कन्या के वास्तविक दोष को प्रकाशित करने पर 100 पण का तथा मिथ्या दोषारोपण पर 200 पण का दण्ड विधान किया है।[82] इस संदर्भ में मनु ने अर्थदण्ड का परिणाम अपेक्षाकृत न्यून रखा है। मनु के अनुसार दोषयुक्त कन्या का दोष न बताकर दान कर देने पर 96 पण तथा द्वेष के कारण कन्या को क्षतयोनि

कहकर और दोष को न प्रमाणित करने पर 100 पण दण्ड विहित है।[83]

याज्ञवल्क्य ने नियत 50 पण के दण्ड का विधान उस व्यक्ति के लिए किया है, जो किसी नियत पुरुष द्वारा रोकी गयी दासी के साथ गमन करे। मिताक्षर ने इस कथन में आये "च" शब्द से वेश्या और स्वैरिणी स्त्रियों को ग्रहण किया।[84] व्यास ने भी अवरुद्धा स्त्री के साथ गमन करने पर 50 पण का अर्थदण्ड निर्धारित किया है।[85] नारद ने भी इस अपराध के लिए 50 पण का दण्ड निर्धारित किया है।[86] अप्राकृतिक मैथुन के विषय में विष्णु, नारद,एवं याज्ञवल्क्य ने विभिन्न अर्थदण्ड निर्धारित किए हैं। विष्णु के अनुसार पशुओं के साथ मैथुन करने पर 100 कार्षापण का दण्ड मिलना चाहिए।[87] नारद ने गाय के अतिरिक्त, अन्य पशुओं के साथ व्यभिचार करने पर 100 पण का दण्ड निर्धारित किया है, तथा गाय के साथ मैथुन करने पर मध्यम साहस के दण्ड का विधान दिया है।[88] पशुओं के साथ व्यभिचार के संदर्भ में विहित दण्ड विधानों में याज्ञवल्क्य स्मृति, नारद स्मृति से साम्य रखती है।[89]

काम-प्रेरित अपराधों का दण्ड विधान :

काम प्रेरित अपराधी के लिए शारीरिक दण्डों का भी विधान है, जिनका विस्तृत विवरण इस प्रकार है।

धर्मशास्त्रों में निरूपित दण्ड व्यवस्था में अंगच्छेन का विधान किया गया है। गौतम धर्मसूत्र में किसी द्विजाति स्त्री के शूद्र द्वारा व्यभिचारित होने पर शूद्र के इन्द्रियच्छेदन की व्यवस्था की गयी है।[90] आपस्तम्ब धर्मसूत्र में भी इसी प्रकार का दण्ड विधान किया गया है। आपस्तम्भ का मत है कि दूसरे की औरत के साथ मैथुन करने पर शिश्नच्छेदन दण्ड देना चाहिए।[91] इसी प्रकार की व्यवस्था का नारद ने भी विधान किया है।[92] पति के द्वारा सुरक्षित या असुरक्षित द्विजस्त्री के साथ संभोग करने वाले शूद्र को लिंगच्छेदन का दण्ड मनु ने निर्धारित किया है।[93] उनका मत है कि यदि कोई ब्राह्मणेत्तर जाति का पुरुष सम्भोग की इच्छा न रखती हुई कन्या का सम्भोग करे तो उसे लिंगच्छेदन का दण्ड देना चाहिए। बृहस्पति ने उक्त दण्ड व्यवस्था में मनु का समर्थन् करते हुए लिंगच्छेदन के साथ अण्डकोष काटने का भी विधान किया है।[94] नारद ने विमाता, मौसी, गुरुपत्नी, बहिन और वधू आदि नारियों के साथ संभोगरत होने पर शिश्न-कर्त्तन का विधान किया है। किन्तु मनु के अनुसार यदि समवर्णी व्यक्ति कन्या के साथ संभोग.न करके बलात् उसकी योनि में अंगुलि प्रवेश करें तो उस व्यक्ति की अंगुलियाँ काट लेनी चाहिए।[94] याज्ञवल्क्य ने अपने से हीन

जाति की न चाहने वाली कन्या को बलपूर्वक नखक्षतादि से दूषित करने वाले व्यक्ति के हाथ काटने की व्यवस्था दी है। इसके साथ-साथ अपने से निम्न कोटि के पुरुष के साथ व्यभिचार करने वाली स्त्री के नाक, कान काटने का विधान उन्होंने प्रतिपादित किया है।[95] मनु ने किसी कन्या की योनि को अंगुलि प्रक्षेपण द्वारा दूषित करने वाली स्त्री की अंगुलि काटने तथा सिर मुड़ाकर गधे पर घुमाने की व्यवस्था की है।[96]

धर्मशास्त्रों में शारीरिक दण्ड के अर्न्तगत कुत्तों से नुचवाने की भी दण्डविधि निर्धारित की है। गौतम ने कुत्तों से नुचवाने का दण्ड उसी स्त्री के लिए विहित किया है, जो अपने अपराध का प्रायश्चित न करे। मनु अपने पति का अपमान करके दूसरे पुरुष की संगति करने वाली स्त्री को कुत्तों से नुचवाने का विधान देते हैं।[97]

स्मृतिकारों ने कामप्रेरित विविध अपराधों को अत्यन्त गम्भीर दृष्टि से देखा है, तथापि उसके लिए मृत्युदण्ड जैसे कठोर दण्डों का भी विधान इस प्रकार किया है— गौतम धर्मसूत्र के अनुसार यदि शूद्र द्विजाति की रक्षा में नियुक्त और उसकी स्त्री के साथ संभोग करे, तो वह शूद्र मृत्युदण्ड का अधिकारी होता है।[98] इसी प्रकार की व्यवस्था आपस्तम्ब और उनके भाष्यकार 'हरदत्त ने भी दी हैं।[99] हरदत्त द्वारा गौतम के भाष्य में "आर्याभिगमनम्" के अतिरिक्त "आर्यस्त्री" कहने का आशय है आर्यपुत्र द्वारा विवाहित शूद्रा स्त्री।" अतः ब्राह्मण द्वारा विवाहित शूद्रा से संभोग की स्थिति में भी उस शूद्र के लिए मृत्युदण्ड विहित है।[100]

इसके विपरीत याज्ञवल्क्य ने प्रतिलोम क्रम से व्यभिचार करने में प्रवृत्त होने मात्र से क्षत्रियादि के लिए वधदण्ड की व्यवस्था की है। मिताक्षरा भाष्य के अनुसार यह बधदण्ड गुप्ता स्त्री के विषय में समझना चाहिए।[101] मनु ने भी न चाहती हुई ब्राह्मण-स्त्री के साथ संभोग करने पर मृत्युदण्ड का विधान किया है मेधातिथि ने "अब्राह्मण" का अर्थ "क्षत्रियादि" किया है। कुल्लूक ने दण्ड की कठोरता को देखते हुए इसका आशय शूद्र किया है।[102] विष्णु ने अस्पृश्य स्त्री के साथ गमन करने पर पारदारिक मृत्युदण्ड का विधान किया है।[103] याज्ञवल्क्य एवं मनु के अनुसार हीनवर्णी पुरुष यदि अपने से श्रेष्ठ जाति वाली कन्या के साथ, चाहे वह संभोग की इच्छा रखती हो अथवा नहीं, संभोग करे, तो उसे प्राणदण्ड मिलना चाहिए।[104] कात्यायन ने भी बलात् संभोग करने पर मृत्युदण्ड का विधान किया है।[105] मनु, याज्ञवल्क्य और नारद ने विमाता, मौसी, बहिन, वधू, गुरुपत्नी, सगौत्रा, शरणागता,

स्त्रियों के साथ व्यभिचार करने पर प्राणदण्ड का विधान किया है। यदि स्त्री की भी सहमति हो, तो उसे भी प्राणदण्ड विहित है।[106] याज्ञवल्क्य के मत में उत्तम जाति की स्त्री के साथ यदि चण्डाल सम्भोग करे, तो उसे इस जघन्यतम कृत्य के लिए मृत्युदण्ड ही एकमात्र विधान है।[107] उनके अनुसार यदि स्त्री की जाति, पुरुष की जाति से ऊँची हो, तो ऐसे व्यभिचारी पुरुष को मृत्युदण्ड ही अभीष्ट हैं।[108] मनु ने अभिरक्षित द्विजस्त्री के साथ संभोग करने पर अन्य दण्डों के साथ मृत्यु-दण्ड का विधान किया है।[109]

मृत्युदण्ड शारीरिक व आर्थिक दण्डों के अतिरिक्त विविध कामप्रेरित अपराधों हेतु देश,निष्कासन एवं सामाजिक तिरस्कार का भी विधान है। काम- प्रेरित विविध अपराधों हेतु देश-निष्कासित व सामाजिक तिरस्कार का विधान इस प्रकार है— बृहस्पति के अनुसार जो अपराधी बलपूर्वक पर स्त्री से व्यभिचार करता है उसे लिंगच्छेदन के साथ गधे पर बैठाकर घुमाना चाहिए।[110] यमस्मृति में कहा गया है कि जो ब्राह्मणी वैश्य अथवा क्षत्रिय से सम्भोग कराती है उसका शिरोमुण्डन करवाकर उसे गधे पर घुमाना चाहिए।[111] मनु ने अभिरक्षित ब्राह्मणी के साथ संभोग करने वाले क्षत्रियके सिर को गधे के मूत्र से मुड़वा देने का विधान दिया है।[112] मनु के अनुसार विविध काम-प्रेरित ब्राह्मण अपराधी का मुण्डन कराना व सामाजिक रूप से उसे तिरस्कृत करना ही मृत्युदण्ड होता है।[113]

इस प्रकार धर्मशास्त्रों के अध्ययन से विदित होता है कि धर्माचरण, जीवन की स्वाभाविक व्यवस्था नहीं है। अपितु धर्मशास्त्र में धर्मशास्त्र द्वारा स्थापित कठोर मर्यादा की व्यवस्था हैं। यहाँ यह भी परिलक्षित होता है कि हीनवर्णी द्वारा, उच्चवर्णीव्यक्ति के प्रति काम-प्रेरित अपराधों के लिए दण्ड के पात्र समझे जाते थे।

समीक्षा

प्रस्तुत अध्याय में विविध काम प्रेरित अपराधों का प्रतिपादन किया गया है। उक्त अवधारणाएं यद्यपि आज भी सार्थक हैं, परन्तु अब वर्ण पर आधारित न होकर यह एक समान लागू हो गई है। दण्ड व्यवस्था भी प्रायः बहुत कुछ प्राचीन रूप हैं। दण्ड व्यवस्था भी प्रायः बहुत कुछ प्राचीन रूप में ही हमें देखने को मिलती है। हपारे संविधान में व्यभिचार, बलात्कार इत्यादि कामप्रेरित अपराधों हेतु भारतीय दण्ड संहिता के अनुरूप दण्ड देने की व्यवस्था की गई है। मनु और याज्ञवल्क्य जैसे स्मृतिकारों ने कामप्रेरित दुष्प्रवृत्तियों को नियन्त्रित बनाये रखने के लिए सूक्ष्म से सूक्ष्म अपराधों को भी अनदेखा नहीं किया। जिससे मनु और यज्ञवल्क्य जैसे तत्कालीन

समाज नियन्ताओं की सदाचरण के प्रति स्वस्थ्य चिन्ता का परिचय मिलता है। वस्तुतः धर्मशास्त्रों ने धर्मानुकूल सदाचरण को भारतीय सामाजिक आदर्श के प्रमुख आधार स्तम्भ की भाँति देखा और उसे ही एक स्वस्थ एवं सशक्त समाज का संवाहक माना है। इसी लिए सभी मानवीय क्रिया कलापों में सदाचार की अवमानना को दण्डनीय अपराध की श्रेणी में सभी समृतिकारों ने रखा है।

उपर्युक्त कामप्रेरित विविध सामाजिक अपराधों की समुचित निष्पक्ष दण्डव्यवस्था से मनु और याज्ञवल्क्य दोनों स्मृतिकारों ने सदाचरणशील, नियमानुकूल एवं अपराधविहीन समाज की संस्थापना के लिए दिग्बोध देने में सार्थक सत्प्रकाश किया है, जो आज भी आदर्श लोकजीवन के लिए हमें दिशा निर्देश दे रहें हैं।

सन्दर्भ

1. बृहस्पति स्मृति 29/1-3 तथा नारद स्मृति, 2/59
2. **šThe term which scholars translate as adultery is not properly rendered. Shri Sangrahana lit. means seizing women to oneself, which covers both rape and adultory. It ought to be rendered as offences regarding women seizing, is against both their husband or guardian when it is adultery and against husband and wife or guardian and women when rape.› Jayaswal, K.P., Manu and Yagnavalkya, p. 154.**
3. मनुस्मृति 8/264, 366
4. नारद स्मृति 15/72
5. याज्ञवल्क्य स्मृति 2/287, 288
6. कन्यां भजन्तीमुत्कृष्टं न किञ्चिदपि दापयेत्।
   जघन्यं सेवमानां तु संयतां वासयेद्गृहे।। —मनु० 8/365
7. उत्तमां सेवमानस्तु जघन्यो बधमर्हति।
   शुल्कं दद्यात्सेवमानः समामिच्छेत्पिता।। —मनुस्मृति 8/366
8. नारद स्मृति 15/71
9. याज्ञवल्क्य स्मृति 2/288 पर मिताक्षरा
10. इच्छन्तीषु कन्यासु सवर्णास्त्रनुलोमासु वा प्रदूष्याप—
    हृतासु न दोषः, गान्धर्वविवाहविषयत्वात्। —याज्ञ० स्मृति 2/288
11. मनुस्मृति 8/367 (पर विश्वरूपं की टीका)
12. मनुस्मृति 8/367 पर मेधातिथि तथा कुल्लूक की टीका)
13. मनुस्मृति 8/369
14. मनुस्मृति 8/370

15. याज्ञवल्क्य स्मृति 2/232-233
    उपचारक्रिया केलिः स्पर्शे भूषणचाससाम्।
    स खट्वासनं चैव सर्वं संग्रहणम् स्मृतम्।।
    स्त्रियं स्पृशेद्देशे यः स्पृष्टो वा मर्षयेत्तथा।
    परस्परस्यानुमतिं सर्वं संग्रहणं स्मृतम्।।— मनुस्मृति 8/357
16. नारद स्मृति 15/73, 74, 75
17. वसिष्ठ स्मृति— उद्धृत धर्मकोश, व्यवहार काण्ड, पृ० 1845
18. आपस्तम्ब धर्मसूत्र 2/27/8
19. मनुस्मृति 8/378, 382
20. याज्ञवल्क्य स्मृति 2/286
21. नारद स्मृति 15/70
22. मनुस्मृति 8/385
23. मनुस्मृति 8/383
24. मनुस्मृति 8/379 मौण्ड्य प्राणान्तको दण्डो ब्राह्मणस्य विधीयते।
25. मनुस्मृति 8/376-377
26. बृहस्पति स्मृति— उद्धृत धर्मकोश, व्यवहार काण्ड, पृ० 1886
27. याज्ञवल्क्य स्मृति 2/286
28. नारद स्मृति 15/70 तथा बृहस्पति स्मृति— उद्धृत स्मृति चन्द्रिका (2), पृ० 320
29. बृहस्पति स्मृति— उद्धृत धर्मकोश, व्यवहार काण्ड, पृ० 1886
30. याज्ञवल्क्य स्मृति 2/286
31. मनुस्मृति 8/283
32. याज्ञवल्क्य स्मृति 2/289
33. याज्ञवल्क्य स्मृति 2/289 पर विश्वरूप, मिताक्षरा, अपरार्क की टीका।
34. नारद स्मृति 15/76
35. विष्णु स्मृति, 5/41-43
36. याज्ञवल्क्य स्मृति 2/294
37. याज्ञवल्क्य स्मृति 2/294 पर मिताक्षरा टीका।
38. ''शूद्रस्त्वन्ताभिगमे तथा भगाद्याकारेणाङ्क्य एव न तु प्रवास्यःस्यात्।'' वीर मित्रोदय की याज्ञवल्क्य स्मृति 2/294 पर टीका।
39. याज्ञवल्क्य स्मृति 2/294 पर विश्वरूप की टीका।
40. याज्ञवल्क्य स्मृति 2/294 पर अपरार्क की टीका।
41. याज्ञवल्क्य स्मृति 2/290-291
42. नारद स्मृति 15/78, 79
43. नारद स्मृति 15/60
44. बौधायन उद्धृत धर्मकोश, व्यवहार काण्ड, पृ० 1845
45. कात्यायन स्मृति, उद्धृत धर्मकोष, व्यवहार काण्ड, पृ० 1888
46. याज्ञवल्क्य स्मृति 2/290

47. याज्ञवल्क्य स्मृति 2/292
48. व्यास स्मृति, उद्धृत धर्मकोश, व्यवहार काण्ड, पृ० 1890
49. गौतम धर्मसूत्र 3/3/9, 3/5/15
50. विष्णु धर्मसूत्र 5/105
51. आपस्तम्ब धर्मसूत्र 2/27/10
52. याज्ञवल्क्य स्मृति 2/286
53. स्मृति चन्द्रिका, भाग-2, पृ० 744-45
54. कात्यायन उद्धृत स्मृति चन्द्रिका, भाग-2, पृ० 745
55. बृहस्पति स्मृति—उद्धृत स्मृति चन्द्रिका, भाग-2, पृ० 743-44
56. मनुस्मृति 8/358
57. बृहस्पति स्मृति—उद्धृत स्मृति चन्द्रिका, भाग-2, पृ० 750
58. कात्यायन स्मृति—उद्धृत स्मृति चन्द्रिका, भाग-2, पृ० 749
59. याज्ञवल्क्य स्मृति 3/297
60. पुरुषस्य यानि पतननिमित्तानि स्त्रीणामपि तान्येव।
ब्राह्मणी हीनवर्णसेवायामधिकं पतितः।।
—याज्ञवल्क्य 3/297 पर मिताक्षरा में शौनक का मत।
61. याज्ञवल्क्य स्मृति 1/72 पर मिताक्षरा में उद्धृत वाशिष्ठ का मत।
62. गौतम धर्मसूत्र, उद्धृत धर्मकोश, व्यवहार काण्ड, पृ० 1843
63. मनुस्मृति 8/371
64. याज्ञवल्क्य स्मृति 3/293
65. नारद स्मृति, उद्धृत धर्मकोश, व्यवहार काण्ड, पृ० 1884
66. नारद स्मृति, 15/76
67. याज्ञवल्क्य स्मृति 2/293
68. याज्ञवल्क्य स्मृति, 2/293 पर
विवाद रत्नाकर, विवाद चिन्तामणि तथा अपरार्क की टीका।
69. आपस्तम्ब धर्मसूत्र, 2/26/19
70. विष्णु धर्मसूत्र 5/40-42
71. मनुस्मृति 8/378
72. मनुस्मृति 8/382
73. मनुस्मृति 8/383, 385
74. मनुस्मृति 8/384
75. मनुस्मृति 8/375, 376
76. याज्ञवल्क्य स्मृति 2/286
77. नारद स्मृति, 15/70
78. मनुस्मृति 8/361
79. याज्ञवल्क्य स्मृति 2/285
80. मनुस्मृति 8/356

81. मनुस्मृति 8/369
82. याज्ञवल्क्य स्मृति, 2/287, 289
83. मनुस्मृति 8/224
यस्तु दोषवतीं कन्यामनाख्याय प्रयच्छन्ति।
तस्य कुर्यान्नृपो दण्डं स्वयं षण्णवतिं पणान्।।
मनुस्मृति 8/225
अकन्येति तु यः कन्यां ब्रूयाद्द्वेषेण मानवः।
सशतं प्राप्नुयाद्दण्डं तस्य दोषमदर्शयन्।।
84. अवरुद्धासु दासीषु भूजिष्यासु तथैव च।
गम्यास्वपि पुमान्दाप्यः पञ्चाशत्पणिकं दमम्।।
—याज्ञवल्क्य स्मृति 2/290 तथा उस पर मिताक्षरा।
85. परोपरुद्धागमने पञ्चाशत्पणको दमः।।
—व्यास स्मृति, उद्धृत स्मृतिचन्द्रिका, भाग–2, पृ० 950
86. नारद स्मृति, 15/79
87. विष्णु धर्मसूत्र 5/44
88. नारद स्मृति, 15/76
89. याज्ञवल्क्य स्मृति, 2/289
90. गौतम धर्म सूत्र 2/3/2
91. आपस्तम्ब धर्मसूत्र, 2/26/20
92. नारद स्मृति, 15/75
93. मनुस्मृति 8/375
94. नारद स्मृति, 15/73, 74, मनुस्मृति 8/370
95. याज्ञवल्क्य स्मृति, 2/286
96. मनुस्मृति 8/370
97. गौतम धर्म सूत्र 3/5/14, 15, मनुस्मृति 8/371
98. गौतम धर्म सूत्र 2/3/2
99. आपस्तम्ब धर्मसूत्र, 2/27/9
100. आपस्तम्ब, 2/27/9 पर हरदत्त की टीका।
101. याज्ञवल्क्य स्मृति, 2/286 तथा उस पर मिताक्षरा टीका।
102. मनुस्मृति 8/358 तथा मेधातिथि तथा कुल्लूक।
103. विष्णु धर्मसूत्र, उद्धृत धर्मकोश, व्यवहार काण्ड, पृ० 1846
104. मनुस्मृति 8/366, याज्ञवल्क्य स्मृति, 2/288
105. कात्यायन स्मृति, उद्धृत स्मृतिचन्द्रिका, भाग–2, पृ० 742
106. मनुस्मृति 11/170, 171, याज्ञवल्क्य स्मृति, 3/232, 233, नारद स्मृति 15/73–75
107. याज्ञवल्क्य स्मृति, 2/294
108. बृहस्पति स्मृति, उद्धृत स्मृति चन्द्रिका, भाग–2, पृ० 743

109. मनुस्मृति 8/374
110. बृहस्पति स्मृति, उद्धृत स्मृति चन्द्रिका, भाग-2, पृ० 742
111. यम स्मृति, उद्धृत धर्मकोश व्यवहार काण्ड, पृ० 1890
112. मनुस्मृति 8/375
113. मनुस्मृति 8/379

सप्तम अध्याय

व्यावसायिक (आजीविका सम्बन्धी) विविध अर्थ- लोभ मूलक सामाजिक अपराधों तथा तत्सम्बन्धित दण्डों का तुलनात्मक अध्ययन

स्मृतियों तथा धर्मसूत्रों के समुचित अध्ययन से ज्ञात होता है कि मानवीय जीवन में धन की अनिवार्यता संग्रह और महत्ता की गौरव किसी भी युग में कम नहीं हुआ। भौतिक एवं सामान्यजीवन में धन का आकर्षण और लोभ मनुष्य की प्रवृत्ति रही है तथापि मानव जीवन के चार पुरुषार्थों में अर्थ को पर्याप्त स्थान प्राचीन भारतीय मनीषी ने दिया हुआ है। इसी लोभ एवं आकर्षण से विवश होकर मनुष्य अनेक प्रकार से धन सम्बन्धी अपराध करता है, किन्तु लोकहित एवं जनकल्याण के उद्देश्य से धन सम्बन्धी विविध व्यवस्थाओं का होना आवश्यक है।

धनापहरण

इस सम्बन्ध में मनु स्मृतिकार का कथन है कि यदि कोई मनुष्य या बन्धु बान्ध्व, बन्ध्या अथवा रोगिणी की सम्पत्ति का किसी ब्याज से अपहरण करता है, तो वह चोर के सदृश अपराधी है।[1] गैर स्वामिक धन पर मिथ्या स्वत्व स्थापित करने वाला व्यक्ति अपराधी होता है।[2] प्रत्यर्थी द्वारा अधिक धन लेकर कम बतलाने और अर्थी द्वारा कम धन देकर अधिक धन का अभियोग स्थापित करने की स्थिति में अर्थी व प्रत्यर्थी दोनों ही अपराधी होते हैं।[3] कपटपूर्वक धन का अपहरण करने वाला व्यक्ति तथा उसके सहायक सभी अपराधी होते हैं।[4]

निक्षेपाहार

धर्मार्थ स्वीकार किया गया धन यदि किसी अन्य कार्य में लगाया जाय और धन देने वाले के मांगने पर लोभवश उसे न लौटाया जाय तो वह गम्भीर अपराध

होता है।[5] याज्ञवल्क्य स्मृति के अनुसार जो किसी वर्ग के सामूहिक धन को अधर्म पूर्वक अपहृत करता है, वह अपराधी होता है।[6]

धर्मशास्त्रों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि वर्ण और व्यवसाय का सम्बन्ध उस काल में स्थापित हो चुका था। वर्णगत व्यवसाय को सामाजिक मान्यता प्राप्त हो चुकी थी और व्यावसायिक नियम निर्धारित किये गये थे। स्मृतिकारों ने निम्नांकित प्रसंगों को अपराध घोषित कर उनके सम्बन्ध में समुचित दण्ड व्यवस्था का विधान दिया है। निक्षेपाहार, मिथ्या चिकित्सन, अबीज-विक्रय, बंचक, स्वर्णकार, जुआ खिलाने वाले, जुलाहे का सूत हरण करने वाले, वैश्य या श्रेष्ठी का तुलादि परीक्षा में दोषी पाया जाना, दोषपूर्ण सामग्री से वाणिज्य करना, नाविक के दोष से वस्तु नाश होना आदि।

आजीविका सम्बन्धी अर्थलोभमूलक विविध अपराध एवं दण्ड

धोबी के अपराध

मनु स्मृति में कहा गया है कि कपड़े पीटने के लिए धोबी के पास सेमल की लकड़ी का पट्टा होना चाहिए। पट्टा चिकना हो, और उस पर कपड़े धीरे- धीरे धोने चाहिए। इसके अतिरिक्त भिन्न भिन्न लोगों के कपड़े मिलाना भी अनुचित है। किसी व्यक्ति के कपड़ों का अन्य किसी व्यक्ति को पहनने के लिए देना भी अनुचित है। यदि धोबी उपर्युक्त कर्मों को करता है तो राजा द्वारा दण्ड का भागी होता है।[7] रजक के कर्तव्य के सम्बन्ध में याज्ञवल्क्य स्मृति में व्यवस्था की गयी है कि धोबी द्वारा दूसरे के कपड़ों को धारण करना अनुचित है। और ऐसा करना अपराध है। उक्त नियम के अतिरिक्त यदि धोबी धोने के लिए बस्त्रों का विक्रय करता है अथवा भाड़े पर देता है या बन्धक रखने के लिए देता है या किसी के मांगने पर देता है तो उसका अपराध उत्तरोत्तर बढ़ता जाता है।[8]

वंचक स्वर्णकार के अपराध

धोबी के अपराधों के समान स्वर्णकारों के अपराधों का उल्लेख भी स्मृतियों में किया गया है। मनुस्मृति के अनुसार सुनार व्यवसायियों में सर्वाधिक निम्न और निकृष्ट हैं। स्मृतिकार मनु ने राज्य में इन्हें कण्टक के समान माना है। सुनार के अपराधों को चोरी जैसे अपराध से भी अधिक गम्भीर अपराध की श्रेणी में रखा गया है। सुनार का व्यवसाय अत्यन्त अविश्वसनीय है। वह स्वर्ण, रजत आदि की चोरी

में सिद्धहस्त होता है। स्वर्ण आदि धातुओं में टीन धातु का सम्मिश्रण कर सकता है। स्मृतिकार मनु ने स्वर्णकार की अनैतिक वृत्ति को गम्भीरतम अपराध की श्रेणी में रखा है।[9]

जुलाहे तन्तुवाय के अपराध

व्यवसाय कोटि के अपराधों में रजक एवं स्वर्णकार के समान ही जुलाहे अथवा तन्तुवाय के अपराधों का भी उल्लेख स्मृतियों में किया गया है। तन्तुवाय के लिए नियम है कि वह दस पल सूत के अदले ग्यारह पल कपड़ा दे। यदि वह ग्यारह पल से कम कपड़ा देता है तो अपराधी है।[10] मनुस्मृति के अनुसार जुलाहा, धोबी, स्वर्णकार आदि व्यवसायिकों के समान चिकित्सिक भी आता है।

मिथ्या चिकित्सन

चिकित्सक भी स्वार्थ, लोभ अथवा अज्ञानवश अपराध करता है। स्मृतिकरों का मत है कि चिकित्सक यदि अज्ञानवश पशुओं की समुचित चिकित्सा नहीं कर पाता, तो वह अपराधी होता है, किन्तु यदि मानव चिकित्सक उचित रूप से तत्पर न हो अथवा संदिग्ध मन से चिकित्सा करता है तो वह पशु चिकित्सक के अपराध से भी अधिक बड़ा अपराधी होता है। याज्ञवल्क्य ने अल्पज्ञानी वैद्य की भर्त्सना की है और कहा है कि वह पशु पक्षियों की झूठी चिकित्सा करता है तो अपराधी होता है। किन्तु मनुष्यों तथा राजपुरुषों के चिकित्सा सन्दर्भ में अल्पज्ञानी वैद्य के अपराध की मात्रा क्रमशः बढ़ती जाती है।[11] विष्णु का मत है कि ऐसा वैद्य जो राजपुरुषों या उत्तमपुरुषों की मिथ्या चिकित्सा करे, उसे उत्तम साहस का दण्ड दिया जाय, मध्यम पुरुषों के साथ करे तो मध्यम साहस दण्ड दे तथा पशुओं के साथ करे, तो प्रथम साहस का दण्ड दे।[12] याज्ञवल्क्य का कथन है कि जो अल्प ज्ञानी वैद्य पशु-पक्षियों की झूठी चिकित्सा करता है तो प्रथम साहस का दण्ड दिया जाय, मनुष्य की चिकित्सा करे तो मध्यम साहस तथा यदि राजपुरुष की चिकित्सा करे, तो उत्तम साहस का दण्ड दिया जाना चाहिए।[13] मिताक्षरा ने इसे स्पष्ट करते हुए कहा है कि वह अपने को वैद्य बताता है, जबकि इसके विषय में उसे कुछ भी ज्ञान नहीं है।[14]

बृहस्पति के अनुसार यदि कोई वैद्य व्याधि औषधि व मंत्र के विषय में कुछ भी नहीं जानते हुए रोगी व्यक्ति से उसका इलाज करने के लिए पैसे ले ले तो वह चोर के समान दण्डनीय है।[15] मिथ्या चिकित्सा व चिकित्सक के व्यवसाय के प्रति कौटिल्य का कथन है कि राजा को बिना सूचित किये, यदि कोई वैद्य किसी ऐसे

रोगी की चिकित्सा करता है जो मृत्यु के करीब है और दवा देने के दौरान ही उसकी मृत्यु हो जाय तो उस वैद्य को प्रथम साहस का दण्ड दिया जाय। यदि उपचार में भूल हो जाने के कारण मृत्यु हुई हो, तो मध्यम साहस का दण्ड व शरीर के किसी विशेष अंग का गलत उपचार होने के कारण वह अंग जाता रहा हो, तो वैद्य को दण्ड पारुष्य प्रकरण के अनुसार यथावत् दण्ड देना चाहिए।[16]

जुआ खेलना अथवा खिलाना

जुआ खेलने वाले व खिलाने वालों के सन्दर्भ में नारद का कथन है कि ऐसे व्यक्ति जो झूठे अक्ष से जुआ खेलते हैं। राजा उनके गले में अक्षों की माला बाँध कर द्यूत खलने के स्थान से बाहर निकाल देगा।[17] बृहस्पति भी ऐसे जुआरियों को राजकीय सम्पत्ति को हरण करने वालों को तथा गणों को ठगने वालों को राज्य से निर्वासित करने को कहते हैं।[18] विष्णु जुआरियों के अपराध के सन्दर्भ में कठोर दण्डविधान बताते हैं। उनका कथन है कि झूठे अक्ष से खेलने वालों के हाथ कटवाने को तथा जुये में धोखा देने बालों को अंगूठा एवं तर्जनी काट देना चाहिए।[19] कौटिल्य द्यूताध्यक्ष द्वारा रखवाये गये कौड़ियों और पॉसों को बदलने वाले जुआरियों को बारह पण दण्ड देने को तथा छल व कपट से जुआ खेलने वाले को प्रथम साहस का दण्ड देने एवं उसके जीते हुए धन को छीनने को कहते हैं। रखवाये गये पासों को बदलकर दूसरे को धोखा देने वाले को चोर के समान दंडित करने को कहते हैं।[20]

खोटे सिक्कों का चलाना

आधुनिक युग की भाँति स्मृति काल में भी जाली सिक्कों की समस्या गम्भीर रूप से व्याप्त थी। याज्ञवल्क्य का कथन है कि जो नाणक (सिक्के) की परीक्षा करने बाला (नाणक परीक्षी) खोटे सिक्के को खरा कहता है व खरे को खोटा कहता है उसे उत्तम साहस का दण्ड देना चाहिए।[21] कौटिल्य भी जाली सिक्कों को स्वीकार करने वाले अथवा उनका निर्यात करने वाले पर एक हजार पण दण्ड करने को कहते हैं एवं वह व्यक्ति राजकोष में जो राजकोष में असली सिक्कों क जगह जाली सिक्के रखे, उसे मृत्युदण्ड देने को कहते हैं।[22]

कम माप-तोल के साधनों का प्रयोग करना

सुदृढ़ व्यापार व्यवस्था को चलाने के लिये यह नितांत आवश्यक है कि माप व तौल के सही साधन प्रयोग में लाये जाय, इसके लिए यह आवश्यक है कि उनके तराजू व बाट गलत न हों। याज्ञवल्क्य का कथन हैं कि जो तराजू से तौलने, राजा की आज्ञा, तौल के मानों (बटखरों) और नाणक (सिक्कों) में धूर्तता करें तो उसे

उत्तम साहस का दण्ड देना चाहिए।[23] कौटिल्य ने एक पूरा अध्याय "व्यापारियों से प्रजा की रक्षा" विषय पर लिखा है।[24] शंख लिखित भी गलत तराजू, बॉट व प्रतिमान का प्रयोग करने वालों को अंगच्छेद आदि शारीरिक दण्डों को देने को कहते हैं।[25] कौटिल्य के अनुसार बाजार के अध्यक्ष (संस्थाध्यक्ष) का कर्तव्य है कि वह तराजू, बॉट और माप के बर्तनों का भी अच्छी तरह निरीक्षण करे जिससे माप-तौल में कोई गड़बड़ी न होने पाये। जो व्यक्ति अधिक भार के तराजू-बाँट से माल खरीद कर हल्के तौल से उसे बेचे तो उसको 24 पण का दण्ड देना चाहिए।[26] विष्णु भी नाप तौल में गड़बड़ी करने वाले को उत्तम साहस का दण्ड देने को कहते हैं।[27] याज्ञवल्क्य का विचार था कि नाप-तौल में धूर्तता करके किसी बस्तु का आठवाँ भाग ले ले तो उससे 200 पण दण्ड लेना चाहिए। अपहृत दण्ड के कम या अधिक होने पर दण्ड भी कम या अधिक होता है।[28]

खाद्य वस्तुओं एवं औषधियों में मिलावट करना

वस्तुओं में मिलावट करने के लिये भी कठोर दण्ड दिया जाता था। याज्ञवल्क्य का कथन है कि औषधि तेल, नमक, गन्ध, धान्य और गुड़ आदि वस्तुओं में विक्रय द्वारा अधिक लाभ पाने के लिए असार द्रव्य डालकर मिलावट करने पर 16 पण दण्ड लिया जाय।[29] कौटिल्य कभी ऐसी वस्तुओं में मिलावट करने वाले को 12 पण का दण्ड विहित करते हैं।[30] मनु का विचार था कि अधिक मूल्यवाली वस्तु में थोड़ी मूल्य वाली वस्तु मिलाकर नहीं बेची जानी चाहिए।[31]

धोखा देकर नकली या घटिया माल को बेचना

घटिया माल को बढ़िया बताकर बेचने वाले व्यापारियों को दण्ड दिया जाता था। कौटिल्य के अनुसार जो व्यापारी लकड़ी, लोहा, मणि, रस्सी, चमड़ा, मिट्टी, सूत, छाल और ऊन से बने हुए घटिया माल को बढ़िया बताकर बेचता हो, उस पर वस्तु की कीमत का आठ गुना अर्थदण्ड किया जाय।[32] याज्ञवल्क्य भी कौटिल्य की भाँति घटिया वस्तु को बढ़िया कहकर बेचने पर अर्थदण्ड का विधान करते हैं। उनके अनुसार मिट्टी, चमड़ा, मणि, सूत, लोहा, और बल्कल के वस्त्र को घटिया होने पर भी अच्छा बताकर बेचने वाले से जितने मूल्य पर विका हो उसे आठ गुना दण्ड लेना चाहिए।[33] इसके अतिरिक्त जो एक के हाथ बेची गई वस्तु को पुनः दूसरे के हाथ बेचता है अथवा दोषपूर्ण वस्तु को निर्दोष कहकर बेचता है उससे राजा वस्तु के मूल्य का दो गुना दण्ड लेवे।[34] बृहस्पति इस सन्दर्भ में और भी कठोर दण्ड-विधान विहित करते हैं। उनके अनुसार यदि एक व्यापारी किसी वस्तु के दोष

छिपाकर या मिलावट करके वस्तु बेचे या पुरानी वस्तु को नई वस्तु बताकर बेचता है तो उससे वस्तु का दो गुना दण्ड क्रेता को तथा उतना ही राजकोष को दें।[35] नकली वस्तु को असली वस्तु बनाकर बेचने पर दण्ड मिलता है। कौटिल्य के अनुसार बनावटी कस्तूरी, कपूर आदि वस्तुओं को असली कहकर, दूसरे देश में पैदा हुई कमसल वस्तुओं को असली देश की बनाकर, चमकदार, बनावटी मोती को, मिलावटी वस्तु को, अच्छे माल की पेटी को दिखाकर रद्दी माल की पेटी देने पर व्यापारी को 24 पण का दण्ड दिया जाय।[36] विष्णु भी मिलावटी वस्तुओं को असली कहकर बेचने पर 100 पण कार्षापण के दण्ड का विधान करते हैं।[37] बृहस्पति का कथन है कि जो व्यापारी नकली सोना, मोती और मूँगे को बनाता हो और बेचता हो, तो वह क्रेता को उसका मूल्य और राजा को उसका दो गुना अर्थदण्ड के रूप में दे।[38] याज्ञवल्क्य के अनुसार ढककर रखी हुई वस्तु को अपने हाथ की सफाई से कुछ और ही बनाकर लोगों को ठगता है और जो बनावटी कस्तूरी आदि गन्धक रखता है अथवा बेचता है, उसको इस प्रकार दण्ड लगता है। कृत्रिम कस्तूरी आदि का मूल्य एक पण से कम हो, तो पचास पण और एक पण मूल्य हो तो एक सौ पण, दो पण मूल्य होने पर दो सौ पण का अर्थ दण्ड और मूल्य की वृद्धि के अनुसार दण्ड दिया जाता है।[39] मनु ने इस विषय में विस्तार से उल्लेख तो नहीं किया है, परन्तु इस विषय में उनके विचार भी इस कथन से स्पष्ट हो जाते हैं कि जो मनुष्य नहीं जमने वाले बीज को, जमने वाले बीज कहकर बेचे तथा अच्छे बीज में दूषित बीज मिलाकर बेचे तो उसे राजा विकृत बध (अंगच्छेदन) से दण्डित करे।[40]

स्वर्ण विक्रय सम्बन्धी विविध अपराध

सबसे अधिक बेईमानी की संभावना स्वर्ण में रहती है इसी से मनु सब कंटकों में सबसे बड़ा कंटक स्वर्णकार है। यदि अन्याय लानेवाला व्यक्ति (किस प्रकार सोना, चांदि आदि चुराने अथवा अच्छे धातु के साथ हीन धातु मिलाने वाला पकड़ा जाय तो राजा उसके शरीर के प्रत्येक अंग को शस्त्रों से टुकड़े टुकड़े करवा डाले।[41] इस सन्दर्भ में कात्यायन का भी विचार है कि जो स्वर्णकार सवर्ण के साथ मिलावट करता है या गलत माप विक्रय करता है, उसके तीन अंग काट दिये जायँ और उत्तम साहस दण्ड दिया जाय।[42] कौटिल्य स्वर्णकारों द्वारा की जाने वाली इन चोरियों से भलीभाँति परिचित थे। इसी से कौटिल्य का विचार था कि सुनार के लिए आवश्यक था कि वह आभूषण या सोना चाँदी खरीदने से पहले स्वर्णाध्यक्ष को सूचित करें, अन्यथा उसे दण्ड मिलता था। चोर के हाथ से खरीदने पर उसे 48 पण और दूसरों से छिपाकर गहने आदि को तोड़ मरोड़कर थोड़ी कीमत से खरीदे तो उसे चोर का

दण्ड दिया जाय। इसके अतिरिक्त यदि सुनार सोने में से एक माष की चोरी कर ले तो उस पर 200 पण एक धरण चाँदी से एक माष चाँदी चुरा ले तो 12 पण दण्ड दिया जाय। यदि कोई सुनार खोटे सोने, चाँदी पर नकली रंग चढ़ा दे या शुद्ध सोना चांदी में नकली वस्तु मिला दे तो उस पर पाँच सौ पण दण्ड दिया जाय। यदि कोई सुनार खोटे सोने, चाँदी पर नकली रंग चढ़ा दे तो उसकी जाँच आग में तपाकर करनी चाहिए।[43]

जुलाहे और धोबी के विविध अपराध

इसी प्रकार तन्तुवाय (जुलाहा) दस पल सूत से ग्यारह पल से कम कपड़ा बुनकर देता है तो उसे बारह पण के अर्थदण्ड देने का विधान है।[44] धोबी भी यदि किसी के धुलाई के लिए आये हुए वस्त्रों को दूसरों को पहनने के लिए देता था या बेचता था, तो वह दण्डनीय होता था। याज्ञवल्क्य के अनुसार जो धोबी धोने के लिए मिले हुए कपड़े पहनता था, तो वह तीन पण का भागीदार होता था। यदि वह बेचता है या किराये पर देता है तो दस पण का दण्ड होगा।[45] इसके अतिरिक्त धोबी वस्त्रों को चिकने लकड़ी या पत्थर के पाट पर न धोकर अन्यत्र धोता था तो वह भी दण्ड का भागीदार होता था। वह क्षतिपूर्ति के साथ साथ वह छः पण दण्ड भी देता था।[46]

राज प्रतिबन्धित वस्तुओं का विक्रय

राज्य कुछ वस्तुओं के निर्माण व विक्रय पर अपना एकाधिकार रखता था। यदि कोई व्यापारी इन वस्तुओं को बनाता या बेचता था तो उसे दण्ड मिलता था। मनु का कथन है कि राजा से सम्बद्ध बिक्री करने योग्य विख्यात (वर्तन या राजोपयोगी हाथी, घोड़ा, गाड़ी आदि) सामान तथा निर्यात के लिए मना किये गये पदार्थ को लोभ से दूसरे देश में ले जाने वाले व्यापारी की सम्पूर्ण सम्पत्ति को राजा, राज्य की ओर से अपहरण कर ले।[47] कौटिल्य का विचार भी मनु के विचार से साम्य रखता है। कौटिल्य के अनुसार जो व्यापारी शस्त्र, कवच, लोहा, रथ, रत्न, अन्न और पशु आदि किसी प्रतिबन्धित वस्तु को लाये या ले जाये, तो उत्तम साहस का दण्ड दिया जाय व उसकी वस्तु को जब्त कर लिया जाय।[48] याज्ञवल्क्य के अनुसार भी राजा द्वारा विक्रयार्थ निषिद्ध और राजा के योग्य वस्तु बेची जाने पर भी राजा की हो जाती है। उसका राजा अपहरण कर लेता है।[49] कौटिल्य बिना राजाज्ञा के नमक बनाने पर उसके व्यापार करने पर उत्तम साहस का दण्ड देने को कहते हैं।[50] परन्तु इस नियम से वानप्रस्थियों, श्रोत्रिय, बेगार ढोने वाले और तपस्वी लोगों पर लागू होता है।[51] व्यापारी यदि राज्य द्वारा निर्धारित मूल्य के अनुसार वस्तुओं का विक्रय नहीं करता

था तो उसे दण्ड प्राप्त होता था। मनु का इस विषय में राजा के लिए निश्चित निर्देश है कि वह आयात-निर्यात की दूरी, स्थान, कितने दिनों तक रखे रहने से कितना लाभ होगा, कितना बटेगा। कर्मचारियों या अन्य कुली आदि तथा कीड़े आदि के कारण कितना माल घटेगा इत्यादि सभी बातों का विचार कर बाजार में बेचने योग्य समस्त सौदों का मूल्य निश्चित करके क्रय-विक्रय करवाये। राज्य सरकार पाँच पाँच या पन्द्रह पन्द्रह दिनों के पश्चात् मुख्य व्यापारियों के सामने मूल्य का निर्धारण करता रहे।[52] याज्ञवल्क्य भी राजा द्वारा निर्धारित मूल्य पर ही प्रतिदिन क्रय या विक्रय करने को कहते हैं।[53]

वस्तुओं की जमाखोरी करना अथवा अधिक बढ़े मूल्य पर बेचना

जो व्यापारी आपस में मिलकर राजा द्वारा निर्धारित मूल्य की वृद्धि या ह्रास को जानते हुए भी रजक आदि को तथा अन्य शिल्पियों को पीड़ित करे तो उन्हें उत्तम साहस का दण्ड देना चाहिए।[54] कौटिल्य के अनुसार जो व्यापारी आपस में मिलकर किसी वस्तु को बेचने से रोक दें और फिर उसी वस्तु को अनुचित मूल्य (बाद में बढ़े हुए मूल्य) पर बेचे या खरीदे, तो उनमें से प्रत्येक को एक एक हजार पण का दण्ड दिया जाए।[55] याज्ञवल्क्य का कथन है, जो व्यापारी आपस में मिलकर दूसरे दूसरे देश से लाई गई वस्तु को कम मूल्य पर बिकने से रोकें अथवा अधिक मूल्य पर बेचते हैं, उनको उत्तम साहस का दण्ड देना चाहिए।[56]

अर्थ कर (चुंगी) न देना

चुंगी न देने पर भी व्यापारी को दण्ड मिलता था। मनु के अनुसार शुल्क (चुंगी) से बचने के लिए चुंगी घर का रास्ता छोड़कर दूसरे रास्ते से सौदा ले जाने वाला, असमय में विक्रय करने वाला व्यापारी चुंगी के वास्तविक मूल्य के आठ गुना मूल्य के अर्थ-दण्ड से दण्डनीय होता है। कौटिल्य के विचार भी इस सन्दर्भ में मनु के विचार से साम्य रखते हैं। कौटिल्य का कथन है कि जो व्यापारी छिपकर या किसी छल से चुंगी दिये बिना ही चले जायँ या चुंगी घर लाँघ कर चले जायें, उन्हें नियत शुल्क से आठ गुना अधिक शुल्क का दण्ड देना चाहिए।[58] याज्ञवल्क्य भी शुल्क से बचने वाले के लिए सौदे व तौल को कम बताने वाले, शुल्क स्थान से भागने वाले और विवादास्पद पण्य को खरीदने वाले से पण्य का आठ गुणा दण्ड देने को कहते हैं।[59] चुंगीकर के मामले में विष्णु तो काफी कठोर दण्ड विधान बताते हैं। उनके अनुसार यदि कोई व्यापारी चुंगी न दे तो उसका सामान राज्य की ओर से हड़प लेना चाहिए।[60]

समीक्षा

मनु द्वारा प्रतिपादित विविध अर्थ-लोभ मूलक सामाजिक अपराधों का विवेचन किया गया है। स्मृतिकाल में भी वस्तुतः आज की तरह की भारतीय मानक ब्यूरो (आई०एस०आई० मार्क) बाजार मूल्य नियंत्रण तथा कार्य नियन्त्रण आदि जैसी प्रणालियां प्रचलित थीं। विविध आर्थिक लेन-देन, कार्य व्यवहारों, व्यापार वाणिज्य समागम जैसी आर्थिक प्रक्रियाओं के समागम में शुचितापूर्ण सदाचार एवं नियन्त्रण बनाये रखने के लिए विविध आर्थिक अपराधों हेतु उचित एवं अनुकूल दण्ड व्यवस्था की गयी थी। वस्तुतः सभी आर्थिक अपराधों हेतु उचित एवं अनुकूल दण्ड व्यवस्था की गयी थी। वस्तुतः सभी आर्थिक कार्य-कलाप पूर्णतः राजकीय नियंत्रण में ही होते थे। जिनका नियम उल्लंघन करने वालों को दण्डित करने का समुचित प्रावधान मनु और याज्ञवल्क्य द्वारा किया गया है। इस प्रकार तत्कालीन सामाजिक परिप्रेक्ष्य में मनु की अर्थ लोभ मूलक अपराधों एवं तद्विषयक दण्ड व्यवस्था की अवधारणा वर्तमान सन्दर्भों में भी सार्थक एवं समीचीन है। इसी लिए कुछ परिमार्जित एवं परिवर्धित रूप में उक्त अवधारणाएं आज भी विधि एवं न्याय व्यवस्था पर लागू की गई है।

वस्तुतः अर्थ मूलक अनेक अपराध आज भी समाज में प्रचलित हैं, जिनका नियंत्रण और उन्मूलन मनु और याज्ञवल्क्य जैसे मूर्धन्य धर्म शास्त्रियों द्वारा निर्धारित समुचित दण्ड विधान से ही संभव है। इस दृष्टि से मनु और याज्ञवल्क्य स्मृति की न्यायसंगत दण्ड व्यवस्था आज भी इस देश के लिए दिग्बोधक है।

सन्दर्भ

1. मनुस्मृति 8/28-29
2. मनुस्मृति 8/36
3. मनुस्मृति 8/59
4. मनुस्मृति 8/193
5. मनुस्मृति 8/212, 213
6. याज्ञवल्क्य स्मृति 2/187, 190
7. मनुस्मृति 8/396
8. याज्ञवल्क्य स्मृति. 2/238
9. मनुस्मृति 9/292

10. मनुस्मृति 8/397
11. याज्ञवल्क्य स्मृति 2/242
12. विष्णु विवाद रत्नाकर, पृष्ठ 306 में उद्धृत।
13. याज्ञवल्क्य स्मृति 2/242
14. वही 2/242 पर मिताक्षरा।
15. बृहस्पति स्मृति, 22/8
16. कौटिल्य 4/76/1
17. नारद०, विवाद रत्नाकर, पृष्ठ 307 में उद्धृत।
18. बृहस्पति०, 22/9
19. विष्णु० विवाद-रत्नाकर, पृष्ठ 308 में उद्धृत।
20. कौटिल्य 4/74/20
21. याज्ञवल्क्य स्मृति 2/40, देखिये कौटिल्य 4/76/1
22. कौटिल्य 4/76/1
23. याज्ञवल्क्य स्मृति 2/240
24. कौटिल्य 4/76/1
25. शंखलिखित, विवाद-रत्नाकर, पृष्ठ 298 में उद्धृत।
26. कौटिल्य० 4/76/1
27. विष्णु० 5/122-123
28. याज्ञवल्क्य स्मृति 2/244
29. याज्ञवल्क्य स्मृति 2/245
30. कौटिल्य० 4/77/2
31. मनुस्मृति 8/203
32. कौटिल्य० 4/77/2
33. याज्ञवल्क्य स्मृति 2/246
34. वही, 2/257
35. बृहस्पति०, 22/7
36. कौटिल्य० 4/77/2
37. विष्णु० 5/124 विवाद-रत्नाकर, पृष्ठ 299 में उद्धृत।
38. बृहस्पति०, 22/14
39. याज्ञवल्क्य स्मृति 2/247-248
40. मनुस्मृति 9/291
41. मनुस्मृति 9/292
42. कात्यायन०, विवाद-रत्नाकर, पृष्ठ 309 में उद्धृत।
43. कौटिल्य० 4/76/1
44. मनुस्मृति 8/397
45. याज्ञवल्क्य स्मृति 2/238

46. कौटिल्य० 4/76/1
47. मनुस्मृति 8/399
48. कौटिल्य०, 2/37/21
49. याज्ञवल्क्य स्मृति 2/261
50. कौटिल्य० 2/18/12
51. वही
52. मनुस्मृति, 8/401-402
53. याज्ञवल्क्य स्मृति 2/251
54. याज्ञवल्क्य स्मृति 2/249, विष्णु० 5/130
55. कौटिल्य०, 4/77/2
56. याज्ञवल्क्य स्मृति 2/250
57. मनुस्मृति 8/400
58. कौटिल्य०, 2/37/21
59. याज्ञवल्क्य स्मृति 2/262
60. विष्णु० 3/15-16

अष्टम अध्याय

मोह–मद प्रेरित विविध अपराध तथा तत्सम्बन्धित दण्डों की तुलनात्मक विवेचना

मोह मद प्रेरित विविध अपराध एवं दण्ड विधान

मानव के पाप अथवा अपराध मोह–मदजन्य कारणों पर भी आधारित होते हैं ऋग्वेद में ऋषि वशिष्ठ वरुण की प्रार्थना करते हुए कहते हैं—"ओ वरुण! पाप स्वयं की पाप–प्रवृत्ति से नहीं उत्पन्न हुआ, इसका मूल सुरा, क्रोध, द्यूत अथवा उचित (ज्ञान) में है।[1] कभी कभी देखा जाता है कि मनुष्य प्रेरित अपनी दूषित मनोवृत्तियोंवश अपराध करता है। प्रस्तुत अध्याय में यही विवेचित किया गया है कि मनु और याज्ञवल्क्य जैसे स्मृतिकारों ने इस प्रकार के अपराधों का विवेचन कैसे किया है? तथा उनका दण्ड विधान क्या है?

मिथ्या साक्ष्य प्रस्तुत करना

ऐसे व्यक्ति जो न्यायालय में अनृत देते थे उनकी गणना भी प्रकट चोरों के की गयी है। मनु का कथन है कि लोभ या मोहवश असत्य गवाही देने पर एक सहस्त्र पण, मोह से असत्य गवाही देने पर प्रथम साहस, भय से असत्य गवाही देने पर दो मध्यम साहस, मित्रता से असत्य गवाही देने पर चौगुना अर्थात् चार प्रथम साहस, कामवश असत्य गवाही देने पर दस गुना प्रथम साहस, क्रोध से असत्य गवाही देने पर तिगुना मध्यम साहस, अज्ञान से असत्य गवाही देने पर सौ पण का अर्थ देना चाहिए।[2] यह नियम केवल शूद्र, वैश्य, क्षत्रिय पर ही लागू किया जा सकता है। यदि अपराधी ब्राह्मण है तो उसे मात्र देश से निकाल देना चाहिए।[3] मनु ने झूठे साक्षी को दण्ड देते समय इस बात पर ध्यान देने को कहा है कि मनुष्य ने ऐसा अनृत साक्ष्य किस भावना के वशीभूत होकर दिया है। असत्य गवाही देने वाले अ–ब्राह्मण

अपराधी को इस प्रकार का अर्थदण्ड दिया जाता था। विष्णु के अनुसार झूठी गवाही देने वाले की सर्व-सम्पत्ति का अपहरण कर लेना चाहिए।[4] इसी सन्दर्भ में बृहस्पति का कथन है कि ऐसे मध्यस्थ जो पक्षपात, लोभ या किसी अन्य उद्देश्य से किसी भी पक्ष को ठगते हैं तथा ऐसे साक्षी जो झूठी गवाही देते हैं, उन्हें विवाद के धन से दूने धन का अर्थदण्ड देना चाहिए।[5]

मनु के समान याज्ञवल्क्य ने मिथ्या साक्ष्य प्रस्तुत करने के अपराध में सम्बन्ध में गम्भीरतापूर्वक विस्तार से विचार किया है। इन्होंने तपस्वी, दानी, कुलीन, सत्यवादी, धार्मिक, सरल, पुत्रवान्, धनवान्, स्मार्तकर्मों के अनुष्णता ब्राह्मणादि की साक्ष्य हेतु सत्पात्र स्वीकारा है। तथा स्त्री, बालक, वृद्ध, जुआरी, मदमत्त, उन्मत्त, पाखण्डी, झूठे लेख लिखने वाले, विकलेन्द्रिय, पतिर्त, धन देने वाले शत्रु, चोर, साहसी, मित्र एवं बान्धवों द्वारा त्यक्त व्यक्तियों को साथी नहीं बनाना चाहिए।[7] किन्तु चोर और साहस आदि में सभी साक्षी हो सकते हैं।

सर्वं साक्षी संग्रहणे चौर पारुष्य साहसे। — याज्ञवल्क्य 3/72

उपर्युक्त साक्षियों में यदि कोई मोहमदवश असत्य कथन अथवा मिथ्या साक्ष्य प्रस्तुत करता है अथवा साक्ष्य देना स्वीकार करके भी साक्ष्य प्रस्तुत न करे तो राजा अर्थदण्ड रूप में सम्पूर्ण ऋण का धन तथा उसका दशमांश जुर्मने में वसूल करे। इन सभी धनों को छियालीसवें दिन दिला देना चाहिए।[8] जो नीच व्यक्ति तथ्य या रहस्य को जानता हुआ भी साक्ष्य (गवाही) नहीं देता है वह कूट साक्षियों का अपराध या पाप करता है और उसे उन्हीं के समान दण्ड देना चाहिए।[9]

मनु के समान याज्ञवल्क्य की अवधारणा है[10] कि लोभ या मोहवश मिथ्या साक्ष्य (कथन) प्रस्तुत करने वाले कूटसाक्षियों में प्रत्येक से उस विवाद में हारने वाले पर जितना दण्ड हो उससे दूना धन दण्ड के रूप में लेना चाहिए और वह यदि ब्राह्मण है तो उसे अपने राज्य से निर्वासित कर देना चाहिए।

पृथक् पृथक् दण्डनीयाः कूटकृत्साक्षिणस्तथा।
विवादाद् द्विगुणं दण्डं विवास्थो ब्राह्मणः स्मृतः।। — याज्ञ० 3/81

किन्तु जहाँ साक्ष्य में सत्य बोलने से चारों वर्णों में यदि किसी वर्ण के व्यक्ति के बध की संभावना हो, वहां साक्षी झूठ बोल सकता है।[11] इस असत्य भाषण की शुद्धि के लिए द्विज सरस्वती देवी के लिए चरु बनाकर चढ़ाये।

इस प्रकार हम देखते हैं कि मनु और याज्ञवल्क्य दोनों की दृष्टि में लोभ या

मोह से प्रेरित होकर मिथ्या कथन, कूट साक्ष्य अथवा झूठी गवाही देने वाले व्यक्ति अपराधी समझे जाते थे तथा इनके दण्ड की समुचित व्यवस्था भी इन दोनों

धर्मशास्त्रियों ने निर्धारित की है— यथा मनु.........

लोभात्सहस्त्रं दण्ड्यस्तु मोहात्पूर्वं तु साहसम्।
भयाद्द्वौ मध्यमौ दण्डौ मैत्रात् पूर्वं चर्तुर्गुणम्।। — मनु० 8/120

धन-धान्य, सूत-कपास एवं पशु हरण करना

यदि लोभ या मोह मदवश कोई किसी का धान्य सूत कपास एवं पशु आदि हरण करता था तो धर्मशास्त्रियों ने इस साहस अपराध की सम्यक् दण्ड व्यवस्था सुनिश्चित की हैं।

"कात्यायन" के अनुसार प्रच्छन्न या प्रकाश एवं रात्रि या दिन में परधन अपहरण करना स्तेय है।[12] नारद के अनुसार व्यक्ति को नशे की स्थिति में लाकर उसकी सम्पत्ति का अपहरण करना चोरी है।[13]

वस्तुओं के मूल्य के आधार पर स्तेय के भी तीन भाग हैं— क्षुद्र, मध्यम और उत्तम। मनु ने स्तेय और साहस में अन्तर व्यक्त किया है।[14] दूसरे की सम्पत्ति का बल पूर्वक राजकर्मचारी, उस धन के स्वामी अथवा अन्य किसी की उपस्थिति में अपहरण करना ही साहस है। साहस में सम्पत्ति के अतिरिक्त पशु, स्त्री, आदि का अपहरण करना भी सम्मिलित है। चोरी की अपेक्षा, बल एवं दर्प से धान्य, सम्पत्ति, सूत कपास आदि का अपहरण गम्भीर अपराध माना जाता है। एवं स्तेय की अपेक्षा इसका अतिरिक्त दण्ड भी होता है।[15] मनु के अनुसार सूत, कपास, सुरा, बनाने की दृव्य सामग्री, गोबर, गुड़, दही, दूध छांछ, पानी, तृण, बांस की टोकरी, पशु के चमड़े, सींग, तेल, घी पकवान आदि अन्य साधारण बस्तुओं का हरण करने पर उन वस्तुओं के मूल्य का दुगुना दण्ड करना चाहिए।[16] इसी प्रकार ब्राह्मण की गायों का अपहरण करने वाले, बन्ध्या गाय के नाथने और पशुओं के चुराने पर राजा तुरन्त चोर का आधा पांव कटवा डाले।[17] श्रेष्ठ पशु (हाथी, घोड़ा आदि) शस्त्रादि, जीवनरक्षक दवाइयों के हरण करने पर, राजा देश, काल को देखकर दण्ड की व्यवस्था करें।[18]

मनु ने कुलीन पुरुषों और कुलीन स्त्रियों को तथा बहुमूल्य रत्नों को हरण करने के गम्भीर अपराध मानते हुए इनके अपराधी को प्राणदण्ड दिये जाने का प्रावधान किया है—

पुरुषाणां कुलीनानां नारीणां च विशेषतः।
मुख्यानां चैव रत्नानां हरणे बधमर्हति।। — मनुस्मृति 8/323

याज्ञवल्क्य ने भी धनधान्य, अथवा सामान्य द्रव्य के अपहर्त्ताओं को गम्भीर साहसिक अपराधी मानकर उनके समुचित दण्ड का प्राविधान किया है। उनके अनुसार पर द्रव्य के हरण करने बालों को उस वस्तु के मूल्य का दुगुना और अपहरण करने के अपराध को अस्वीकार करने पर चौगुना दण्ड दिये जाने का परामर्श दिया है—

सामान्य द्रव्य प्रसभ हरणोत्साहसं स्मृतम्।
तन्मूल्याद्द्विगुणो दण्डो निह्नवे तु चतुर्गुणः।। — याज्ञवल्क्य स्मृति 3/230

मनु के समान अन्य स्मृतिकारों के समान दूसरे के धन का अपहरण करने वाले तस्करों को दो श्रेणियों में विभाजित किया है। (1) प्रकाश तस्कर तथा (2) अप्रकाश तस्कर।[19] इन दोनों प्रकार के सम्पत्ति अपहर्त्ता तस्करों के दण्ड का विधान भी मनु और याज्ञवल्क्य आदि धर्मशास्त्रियों ने विधिवत् किया है।

मदिरा पान करना

मदिरा पान मोह मद प्रेरित समाज का सामान्य प्रचलित अपराध है, जिसके सम्बन्ध में धर्मशास्त्रकारों ने गम्भीर विचार किया है। बौधायन धर्म सूत्र[20] में सुरापान को साहस के अन्तर्गत आने वाले पातकों में गिनकर निषिद्ध माना गया है। मदिरापान करके उन्मत्त यदि पागल जैसी विविध चेष्टाएं करता है तो यह साहस जैसे अपराध का ही एक रूप माना जायेगा।[21]

गौतम धर्म सूत्र में भी सुरापान को महापातक के अन्तर्गत गिनाया गया है।[22]

(अ) स्त्री का मदिरा पान करना

जो स्त्री पति से रोकी जाने पर भी मोहमद से प्रेरित होकर यदि मदिरा पीती है तो राजा उसे छः कृष्णल दण्ड दे।[23] इतना ही नहीं, जो स्त्री अपने स्वामी के विपरीत आचरण करने वाली या मदिरा पीने वाली हो तो उसका स्वामी उसके रहते दूसरा विवाह भी कर सकता है। इस सम्बन्ध में मनु का विचार है—

मद्यपाऽसाधुवृत्ता च प्रतिकूला च या भवेत्।
व्याधिता वाधि वेतव्या हिंस्रार्थघ्नी च सर्वदा।। — मनु० 9/80

मनु ने स्त्रियों के मद्यपान[24] को उनके छः दोषों में गिनाकर त्याज्य माना है। याज्ञवल्क्य ने भी सुरापान को सामान्यतः महापातक के अन्तर्गत निन्दनीय अपराध मान्म है। उन्होंने स्त्री के मदिरापान करने का उल्लेख अप्रत्यक्षतः कर सामान्य रूप से मद्यपान और मद्यप को त्याज्य बताया है।[25] मद्यप के साथ निवास करने वाले भी

महापातकी होते हैं। याज्ञवल्क्य ने सुरा पीने वाली स्त्री का उपभोग भी उपपातक बताते हुए वर्जित माना है।[26]

(ब) ब्राह्मण अथवा ब्रह्मचारी का मदिरा पान करना

मोह मद प्रेरित भी मदिरा पान करने की दुष्प्रवृत्ति कभी ब्राह्मण एवं ब्रह्मचारी जैसे पवित्र जनों में भी अपराध रूप में परिलक्षित होती है। यद्यपि ब्राह्मण को मदिरा छूने तक का निषेध[27] मनु द्वारा किया गया है, तथापि यदा–कदा ब्राह्मण, ब्रह्मचारी भी मदिरापान मोह मद से प्रेरित होकर कर लेते थे। मनु ने कहा कि जिस ब्राह्मण शरीर की आत्मा एक बार भी मदिरा से प्लावित हो जाती है उसका ब्राह्मणत्व नष्ट हो जाता है, और वह शूद्रत्व को प्राप्त होता है।

यस्य कायगतं बृह्म मद्येनाप्लाव्यते सकृत्।
तस्य व्यपैति ब्राह्मण्यं शूद्रत्वं च स गच्छति।। — मनु० 11/97

यदि ब्राह्मण मोह से मदिरा पीता है तो उस पाप (अपराध) के लिए उसे प्रायश्चित हेतु अग्नि वर्ण की तप्त मदिरा पीना चाहिए, जिससे उसका शरीर दग्ध होकर निष्कलुष हो जाय।[28] अथवा शुद्धि हेतु गो मूत्र, जल, गाय का दूध, गाय का घृत, गाय का गोबर का रस, इनमें से किसी एक को आग के समान लाल करके तब तक पीना चाहिए, जब तक मर न जाये।

गोमूत्रमग्निवर्णं वा पिबेदुदकमेव वा।
पयोघृतं वामरणाद्गोशकृतद्रसमेव वा।। — मनु० 11/91

अथवा सुरापान के दोष शान्त्यर्थ ऊनी वस्त्र पहने, जटा रखे और सुरापान का चिह्न धारण करे। एक वर्ष तक रात में एक बार किसी अन्न की पीठी या तिल की खली मात्र खाय।

अतएव सुरापान को निकृष्ट कार्य मानते हुए मनु ने ब्राह्मण आदि द्विजातियों को मदिरा पान न करने का निर्देश दिया है।

सुरा वै मलमन्नानां पाप्मा च मलमुच्यते।
तस्माद् ब्राह्मणराजन्यो वैश्यश्च न सुरां पिवेत्।। — मनु० 11/93

इस प्रकार हम देखते हैं कि मनु और याज्ञवल्क्य दोनों मदिरा पान को महापातक (घोर अपराध) मानते हुए परिष्कृत सामाजिक व्यवस्था में इसके पान का निषेध किया है।

ब्रह्मचारी का मैथुन करना

ब्रह्मचारी के द्वारा मदिरा (मद्य) मांस और मैथुन[29] (स्त्री सहवास) करना सर्वदा वर्जित है। मोह और आसक्ति से प्रेरित होकर ब्रह्मचारी को स्त्रियों की ओर सकाम दृष्टि से देखना अथवा उनका आलिंगन कर[30] मैथुन करना सर्वथा त्याज्य है। यदि ब्रह्मचारी सभी अपनी इच्छा से काम अथवा मोहवश वीर्यपात करता है तो वह अपने व्रत (ब्रह्मचर्य) का नाश करता है।[31]

याज्ञवल्क्य ने भी ब्रह्मचारी के लिए स्त्री-सहवास वर्जित बताया है तथा साथ में मधु, मांस, लेप और अंजन जूठा भोजन कठोर बचन, जीवहिंसा, उदय और अस्त के समय सूर्य-दर्शन, अश्लील भाषण, और दोषान्वेषण से भी परहेज रखने का परामर्श दिया है। याज्ञवल्क्य ने ब्रह्मचारी द्वारा किसी स्त्री के साथ संभोग (मैथुन) करने पर उसे "अवकीर्णी" बताते हुए इस अपराध अथवा पाप के प्रायश्चित हेतु निर्ऋति देवता के लिए गदहे द्वारा पशुयज्ञ करने पर शुद्ध होने का विधान किया है। यथा—

अवकीर्णी भवेद् गत्वा ब्रह्मचारी तु योषितम्।
गर्दभं पशुमालम्यं नैर्ऋतं स विशुधयति।। — याज्ञवल्क्य प्राय० 280

इसके अतिरिक्त बिना अवस्थता के सात दिन तक भिक्षाटन और अग्निकर्म छोड़ने पर "कामावकीर्ण" आदि मंत्र से पुनः अग्नि का उपस्थापन उसे करना चाहिए।

भैक्षाग्निकार्ये त्यक्त्वा तु सप्तरात्र मनातुरः।
कामावकीर्ण इत्याभ्यां जुह्यादाहुतिद्वयम्।।
उपस्थानं ततः कुर्यात् सं मा सिचन्त्वनैन तु।। — याज्ञ० प्राय० 281

यदि ब्रह्मचारी स्त्री मोहवश स्वप्न में अथवा स्त्री सहवास में वीर्यपात करता है तो इस अपराध या पाप के लिए प्रायश्चित स्वरूप उसे सूर्य की अर्चना कर "पुनर्भाय", ऋचा का तीन बार जप करना चाहिए।[33] इसके अतिरिक्त ब्रह्मचारी को घड़े में पानी, फूल, गाय का गोबर, मिट्टी और कुश आवश्यकतानुसार लाकर प्रतिदिन भिक्षा भी मांग लानी चाहिये।[34]

इसी प्रकार संन्यासिनी अथवा परिव्राजिका का संभोग सम्बन्धी अपराध विचारणीय है। नारद तथा मत्स्यपुराण इनके साथ किये संभोग को अत्यन्त पाप मानते हैं। जबकि याज्ञवल्क्य और कौटिल्य कुछ पण का ही दण्ड निर्धारित करते हैं।[35]

वस्तुतः कौटिल्य ने संन्यासी और संन्यासिनियों अथवा परिव्राजिकाओं को

उच्च दृष्टि से नहीं देखा है, क्योंकि उनके समय में बौद्ध भिक्षु एवं भिक्षुणियों तथा परिव्राजिकाओं का समाज में भोग विलास पूर्ण नग्नचित्र प्रस्तुत था। अतएव वे उनका विधि सम्मत सर्वमान्य दण्ड प्रक्रिया से नियमन करना चाहते थे। सर्वप्रथम उन्होंने भिक्षु और परिव्राजिकाओं को लौकिक शासन के सामने सामान्य नागरिक के रूप में उत्तरदायी बनाया। इसका स्पष्टीकरण इस प्रकार भी किया जा सकता है कि कौटिल्य और याज्ञवल्क्य निम्नवर्ण की परिब्राजिकाओं के सम्बन्ध में विधान कर रहे हैं और नारद एवं मत्स्य पुराण उच्चवर्ण की।[36] किन्तु इस संगति का कोई समुचित आधार नहीं है। मनु पर कुल्लूक ने व्याख्या करते समय प्रव्रजिता का अर्थ स्पष्टतया बौद्ध और ब्रह्मचारिणी किया है।

बौद्धा ब्रह्मचारिणीभिः संभाषाः कुर्वन् किञ्चिद दण्डमात्रं दाप्यः स्यात्।।
— मनु० 8/363 पर कुल्लूक भट्ट की व्याख्या

कौटिल्य[37] ने समाज में घूमने फिरने वाली परिव्राजिकाओं का स्तर वेश्या से अधिक नहीं रखा, क्योंकि वेश्या और परिब्राजिका के साथ व्यभिचार के अपराध में कुछ पण दण्ड का विधान किया है। पण की मात्रा में थोड़ा भेद है न कि अपराध की प्रकृति या विशेषता में। म०म० काणे महोदय ने मत्स्य पुराण[38] के बचन में वर्गोत्कृष्टा का सम्बन्ध प्रव्रजिता के साथ लगाना चाहा, यह सर्वथा अनुपयुक्त है। प्रव्रजिता और वर्णोत्कृष्टा दोनों के साथ हुए अपराध में यहां कहा जा रहा है जैसा कि "तथैव च" शब्द से सुस्पष्ट है।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर हम कह सकते हैं कि धर्मशास्त्र साहित्य में विशेषतः मनु और याज्ञवल्क्य ने ब्रह्मचारी अथवा ब्रह्मचारिणी, संन्यासी या संन्यासिनी या परिव्राजिका, भिक्षु या भिक्षुणी को मैथुन (संभोग) करने को गम्भीर अपराध या पाप मानते हुए इसके समुचित प्रायश्चित अथवा दण्ड की व्यवस्था की है।

परादाराभिमर्शन

मोह-मद वश यदि कोई व्यक्ति पराई स्त्री के साथ संभोग करने में प्रवृत्त होता है तो इस गम्भीर अपराध के लिए उन्हें भयंकर दण्ड दे उसके नाक-कान आदि कटवाकर देश से निकाल दे।[39] क्योंकि परस्त्रीगमन से वर्ण संकर होता है। जिससे मूल ही हरण करने वाला अधर्म सर्वनाश का कारण होता है।[40] मनु के अनुसार परस्त्रीगमन का अपवाद जिस व्यक्ति पर लगा है, ऐसा कोई पुरुष यदि किसी परस्त्री के साथ एकान्त में संभाषण करे तो राजा उस पर प्रथम साहस दण्ड करे।[41]

किन्तु जो पुरुष पराई स्त्री गमन के दोष से रहित हों और किसी कारण से दूसरे

की स्त्री से लोगों के सामने अथवा एकान्त में भाषण करे तो वह अपराधी न होने के कारण दण्ड पाने के योग्य नहीं है।[42] जो पुरुष पराई स्त्री से मोहवश तीर्थ या नदी के तटवर्ती वन में या गांव के बाहर निर्जन उपवन में नदियों के संगम स्थान में रहस्य भाषण करे उसे राजा संग्रहण का दण्ड (एक सहस्र पण) करें।[43]

इस दृष्टि से मोहवश परस्त्री के पास माला, फूल, इत्र आदि भेजना, उसके साथ हँसी मजाक करना आलिंगन करना, उसका वस्त्र भूषण छूना, उसके साथ चारपाई पर बैठना ये सब क्रियाएँ संग्रहण कही गई हैं।[44] कोई मोहासक्त व्यक्ति परस्त्री के स्पर्श न करने योग्य अंग का स्पर्श करे अथवा उसके अपने अंग को स्पर्श करने पर कुछ न बोले यह सब परस्पर के अनुमोदन से होने वाला संग्रहण ही है।[45]

यदि मोहान्ध कोई शूद्र द्विजाति की स्त्री के साथ संग्रहण करे तो वह प्राणदण्ड देने योग्य है। चारों वर्णों को सबसे अधिक अपनी स्त्रियों की ही रक्षा करनी चाहिए।[46]

गृहस्थ पुरुष ने जिस पुरुष को मना कर दिया हो तो वह उस गृहस्थ की पत्नी से बात न करे। ऐसा निषिद्ध भाषण मोहवश जो व्यक्ति करता है वह सोलह मासा सुवर्ण दण्ड का पात्र होता है।[47]

यद्यपि नटों की स्त्रियों के साथ संभाषण निषिद्ध नहीं है, तथापि ऐसी स्त्रियों के साथ भी एकान्त में बात करने वाले पुरुष को राजा कुछ दण्ड करे। वैसे ही दासियों, वैरागियों और ब्रह्मचारिणों के साथ जो पुरुष रहस्य संभाषण करे, उसे भी राजा कुछ दण्ड करे।

किञ्चिदेव तु दाप्यः स्यात् संभाषां ताभिराचरन्।
प्रेष्यासु चैक भवतासु रहः प्रव्रजितासु च।। — मनु० 8/363

जो मोहान्ध मनुष्य किसी कन्या पर बलात्कार करके उसे दूषित करता है, वह तत्काल बध करने योग्य होता है, परन्तु उस कन्या की इच्छा से उसे यदि कोई दूषित करे और वह पुरुष उस कन्या का सजातीय हो तो वह बध के योग्य नहीं होता।[48]

उत्तम वर्ण की कन्या अथवा स्त्री के साथ समागम करने वाला नीच वर्ण का व्यक्ति बध के योग्य है। समान वर्ण की कन्या के साथ समागम करने वाला, यदि उस कन्या का पिता चाहे तो शुल्क देकर छूट सकता है। इसका अभिप्राय यह है कि उसी व्यक्ति के साथ उस कन्या का विवाह हो जाता है।[49]

परदाराभिमर्शन से दूषित मोहग्रस्त व्यक्ति दण्डित होने पर यदि एक वर्ष बाद

पुनः वैसा अपराध करे तो उसे पहले से दूना दण्ड देना चाहिए। व्रात्य पुरुष की स्त्री और चाण्डालिन के पास आने जाने वाले के लिए राजा इसी दण्ड की व्यवस्था करे। अर्थात् जो पुरुष वर्ष के अनन्तर फिर उसी व्रात्य स्त्री का चण्डालपत्नी में गमन करे तो राजा उनके पूर्व दण्ड का दुगना दण्ड करे।[50]

यदि कोई मोहान्ध ब्राह्मण रक्षित ब्राह्मणी के साथ बलात् सहवास करे तो उन्हें एक हजार पण दण्ड देना चाहिए और यदि वह सकामा हो तो उसके साथ संगम करने पर राजा उसे पाँच सौ पण दण्ड करे।[51] अबध्य होने के कारण ब्राह्मण के सिर के बाल मुड़ा देना ही उसका प्राणान्तक दण्ड है।[52]

याज्ञवल्क्य[53] ने भी मनु के समान ही परदाभिमर्श अपराध के सम्बन्ध में स्त्रीसंग्रहण प्रकरण 24 (व्यवहाराध्याय) में गम्भीरता पूर्वक विचार किया है। इनके विचारानुसार पति, पिता, भाई आदि ने जिस पुरुष के साथ बोलने के लिए मना किया हो उससे बोलने पर स्त्री सौ पण और इसी प्रकार का निषेध किये जाने पर भी किसी स्त्री से बोलने या सम्बन्ध रखने वाले पुरुष से दो सौ पण दण्ड दे। दोनों को वर्जित किया गया हो तो उन्हें वही दण्ड विहित होता है जो उपर्युक्त संग्रहण आदि में होता है।

याज्ञवल्क्य के मतानुसार मोह प्रेरित मनुष्य द्वारा सजातीय परायी स्त्री के सहवास करने पर उत्तम साहस का दण्ड होता है। वर्ण की अनुलोमता होने पर अर्थात् अपने से छोटी जाति की स्त्री से व्यभिचार करने पर मध्यम साहस का दण्ड होता है। वर्ण की प्रतिलोमता (अपने वर्ण से उच्च जाति की स्त्री के साथ व्यभिचार करने) पर दोषी पुरुष का बध कर देना चाहिए। और अपने से निम्न वर्ण के पुरुष के साथ व्यभिचाररत स्त्रियों का कान आदि काट लेना चहिए।[54] मनु के समान याज्ञवल्क्य ने भी सद्यः परिणीता अथवा जिसका विवाह होने वाला हो उस आभूषण युक्त सवर्णा कन्या को मोह से प्रेरित होकर अपहरण करने वाले को उत्तम साहस के दण्ड का विधान किया है, अन्यथा व्याही जाने वाली कन्या न होने पर अधम साहस का दण्ड विधान निश्चित किया है।[55]

याज्ञवल्क्य के मतानुसार[56] कन्या का प्रेम होने पर भी उसके (पुरुष) निम्न जाति की होने पर दोष नहीं देता, अन्यथा (कन्या का प्रेम न होने पर) प्रथम साहस कस दण्ड होता है। यदि ऐसी कन्या को बलपूर्वक नखक्षत आदि से दूषित करने या हाथ काटने और अपने से उच्च वर्ण की अनचाहती कन्या को दूषित करने पर बध का दण्ड होता है।

वाग्दत्ता कन्या को न देना अथवा उसका अपहरण करना

जिस कन्या को देने का बचन देकर बाद में मोहवश उस व्यक्ति को वह कन्या न देना अर्थात् अन्य किसी को कन्या देना, मनु की दृष्टि में एक गम्भीर अपराध है। श्रेष्ठ सामाजिक परम्परा को ध्यान रखते हुए वे कहते हैं—

एतत्तु न परे चक्रुर्नापरे जातु साधवः।
यदन्यस्य प्रतिज्ञाय पुनरन्यस्य दीयते।। — मनु० 9/99

समाज में यह अपराध न हो अतः इस सम्बन्ध में मनु का स्पष्ट निर्देश है—

न दत्त्वा कस्यचित्कन्यां पुनर्दशद्विचक्षणः।
दत्त्वा पुनः प्रयच्छन्हि प्राप्नोति पुरुषानृतम्।। — मनु० 9/71

कन्यादान का वचन देकर उसे सम्बन्धित व्यक्ति (वर) को न देकर अन्य किसी को देने अथवा वाग्दत्ता कन्या का अपहरण करने से अपराध में मनु तो दण्ड विधान में मौन है, किन्तु याज्ञवल्क्य के मतानुसर स्पष्टतः रूप से वाग्दत्ता कन्या अथवा जिसका विवाह होने वाला हो उस अलंकृता सवर्णाकन्या का अपहरण करने वाले अपराधी को उत्तम साहस का दण्ड होता है, अन्यथा (व्याही जाने वाली कन्या न होने पर) मध्यम साहस का दण्ड होता है, उच्च जाति की कन्या का अपहरण करने वाले पुरुष का बधकर देना चाहिए—

अलंकृता हरन्कन्यामुत्तमं ह्यन्यथाधनम्।
दण्डं दद्यात्सवर्णासु प्रातिलोम्ये बधः स्मृतः।। — याज्ञ० व्यव० 287

किन्तु यदि सानुरागा हीनवर्ण की कन्या का कोई अपहरण करता है तो दोषाभाव से दण्ड नहीं है,[57] किन्तु वाग्दत्ता कन्या की अनिछा से यदि कोई उसका अपहरण करता है तो उसे प्रथम साहस का दण्ड देना चाहिए।

इसी प्रकार मोह-मद से प्रेरित होकर यदि कोई उस कन्या को दूषित करता है तो अपने से हीन वर्ण की हो तो कन्या दूषणकर्ता के हाथ काटने और यदि कन्या उस दूषणकर्ता से उच्च वर्ण की हो तो उसका बध दण्ड होता है।

दूषणेतु करच्छेद उत्तमायां वधस्ततथा। — याज्ञ० व्यव० 288

समीक्षा

इस प्रकार हम देखते हैं कि मोह-मद प्रेरित विविध अपराधों (मिथ्या साक्ष्य/कथन) प्रस्तुत करना, धनधान्य, सूत कपास एवं पशु अपहरण करना, स्त्री व

ब्रह्मचारी का मदिरा पान करना, ब्रह्मचारी का मैथुन करना, परदाराभिदर्शन, वाग्दत्ता कन्या को किसी अन्य को देना अथवा उसका अपहरण करना आदि) के सम्बन्ध में मनु और याज्ञवल्क्य दोनों समाज-परिष्कारार्थ सजग और गम्भीर हैं तथा इन अपराधों के समुचित दण्ड सुनिश्चित करते हैं। देश काल पात्र को ध्यान में रखते हुए इन दोनों धर्मशास्त्रियों ने इन अपराधों के दण्ड विधान में कहीं कहीं कठोरता अथवा उदारता का परिचय दिया है।

मनु एवं याज्ञवल्क्य इन दोनों महान् धर्मशास्त्रकारों ने उपर्युक्त इन सभी अपराधों से समाज को अप्रदूषित रखने एवं सदाचारी होने की दिशा में दण्ड- विधान की समुचित व्यवस्था की है। समाज के प्रत्येक वर्ग के प्रत्येक व्यक्ति के व्यवहार और आचरण में शुचिता, नैतिकता तथा नियमानुकूल धार्मिकता का पूर्णतः समावेश होना इन दोनों धर्मशास्त्रियों का प्रमुख ध्येय एवं अभिप्रेत है। अतः उपर्युक्त अपराधों के सम्बन्ध में मनु एवं याज्ञवल्क्य का दण्ड विधान सर्वथा समुचित एवं समीचीन ही है।

सन्दर्भ

1. ऋग्वेद 7/86/3— मनु० 8/118, लोभान्मोहाद्भया मैत्रात्! क्रोधान्तथैव च।
2. लोभात्सहस्रं दण्ड्यस्तु मोहात्पूर्वं तु साहसम्।
   भयाद्वौ मध्यमौ दण्डौ मैत्रात्पूर्वं चतुर्गुणम्।। — मनुस्मृति 8/120
   कामाद्वेषगुणं पूर्वं क्रोधात्तु त्रिगुणं परम्।
   अज्ञानाद्द्वे शते पूर्णे बालिश्याच्छतमेव तु।। — मनुस्मृति 8/121
3. कौटसाक्ष्यं तु कुर्वाणांस्त्री-वर्णान्धार्मिको नृपः।
   प्रवासयेद्दण्डयित्वा ब्राह्मणं तु विवासयेत्।। — मनु० 8/123
4. विष्णु० 5/179
5. बृहस्पति 22/15
6. याज्ञ० व्यवहारा० 8/69
   तपस्विनो दानशीलाः कुलीनाः सत्यवादिनः।
   धर्मप्रधाना ऋजवः पुत्रवन्तो धनान्विताः।।
   त्र्यावराः साक्षियो ज्ञेयाः श्रौतस्मार्त क्रियापराः।
   यथाजाति यथावर्णं सर्वे सर्वेषु वा स्मृताः।।
7. स्त्रीबाल वृद्ध कितवोन्मत्ताभिशस्तकाः।
   रङ्गावतारिपाखण्डि कूटकद् विकलेन्द्रियाः।।
   पतिताप्तार्थ सम्बन्धिसहायरिपुस्तस्काराः।
   साहसीदृष्टदोषश्च निर्धूताधास्त्वसाक्षिणः।। — याज्ञ० व्यव० 7

8. याज्ञवल्क्य व्यव०, 76
अब्रुवन् हि नरः साक्ष्यं वृणं सदश बन्धकम्।
राजा सर्वं प्रदाप्यः स्यात् षट्चत्वारिंशकेऽहनि।।
9. याज्ञ० व्यव० 77
न ददाति हि यः साक्ष्यं जानन्नपि नराधमः।
स कूट साक्षिणां पापैस्तुल्यो दण्डेन चैव हि।।
10. याज्ञ० 3/82
यः साक्ष्यं श्रावितोऽन्येभ्यो निह्नुते तत्तमोवृतः।
सः दाप्योऽष्टगुणं दण्डं ब्राह्मणं तु विवासयेत्।।
तुलनीय मनु० 7/123
कौटसाक्ष्यं तु कुर्वाणांस्त्रीन्वर्णान्धार्मिको नृपः।
प्रवासयेद्दण्डयित्वा ब्राह्मणं तु विवासयेत्।।
11. याज्ञ० 3/83
वर्णिनां हि वधो यत्र तत्र साक्ष्यनृतं वदेत्।
तत्पावनाय निर्वाप्यश्चरूः सारस्वतो द्विजैः।।
12. कात्यायन— उद्धृत दाय भाग 6/9
13. नारद उद्धृत मिताक्षरा, याज्ञवल्क्य 2/275
14. मनुस्मृति 8/320-323
15. मनुस्मृति 8/332
16. सूत्रकार्पाससकिण्वानां गोमयस्य गुडस्य च।
दहनः क्षीरस्य, तक्रस्य पानीयस्य तृणस्य च।। —मनुस्मृति 8/326
वेणु वैदलभण्डानां लवणानां तथैव च।
मृन्मयानां च हरणे मृदो भस्मन एव च।।—मनुस्मृति 8/327
मत्स्यानां पक्षिणां चैव तैलस्य च घृतस्य च।
मांसस्य मधुनश्चैव यच्चान्यत्पशुसमभवम्।। —मनुस्मृति 8/228
अन्येषां चैव मादीनां मद्यानामोदनस्य च।
पक्वान्नानां च सर्वेषां तन्मूल्यादि द्विगुणो दमः।। —मनुस्मृति 8/329
17. मनु० 8/325
गाषु ब्राह्मणसंस्थासु धुरिकायाश्च भेदने। पशूनां हरणै....
18. मनु० 8/324
महापशूनां हरणे शस्त्राणामौषधरय च।
कालमांसाद्य कार्यं च दण्डं राजा प्रकल्पयेत्।।
19. मनु० 9/256
द्विविधांस्तस्करान् विधात् परद्रव्यापहारकान्।
प्रकाशांश्चाप्रकाशांश्च चारचक्षुर्महीपतिः।।

20. बौधायन धर्म सूत्र 1/10/18/18
21. बौधायन धर्म सूत्र 1/10/18/11
22. गौतम धर्म सूत्र 3/3/1
    ब्रह्महा सुराप गुरुतल्पग मात्टपित्टयोनि सम्बन्धया।
    स्तेन .... पतिताः।।
23. मनु० 9/84
    प्रतिविद्यापि चेद्या तु मद्यमभ्युदवेष्वपि।
    प्रेक्षा समाजं गच्छेद्वा सा दण्ड्या कृष्णलानि षट्।।
24. मनु० 9/13
    पानं दुर्जन संसर्गः पत्या च विरदोऽटनम्।
    स्वप्नोऽन्यगेहवासश्च नारसिं दूषणानि षट्।।
25. याज्ञ० प्रायश्चिता० 227
    ब्रह्महा मद्यपः स्तेनस्तथैव गुरुतल्पगः।
    एते महापातिकिनो यश्च तैः सह संवेसेत्।।
26. याज्ञ० प्राय० 239
    आत्मनोऽर्थे क्रियारम्भो मद्यपस्त्री निषैवणम्।
    याज्ञ० प्राय० 242
    भार्याया विक्रयश्चैषामेकैकमुपपातकम्।।
27. मनु० 11/96
    अमेध्यो वा पतेन्मत्तो वैदिकं वाप्युदाहरेत्।
    अकार्यमन्यत् कुर्याद्वा ब्राह्मणो मदमोहितः।।
28. मनु० 11/90
    सुरां पीत्वौ द्विजो मोहादग्नि वर्णां सुरांपिबेत्।
    तया स कार्येत् निर्दग्धे मुच्यते किल्विषात्ततः।।
29. मनु० 2/177
    वर्जयेन्मधुमांसं च गन्धं माल्यं रसान् स्त्रियः।
    शुक्तानि यानि सर्वाणि प्राणिनां चैव हिंसनम्।।
30. मनु० 2/179
    द्यूतं च जनवादं च परिवादं तथानृतम्।
    स्त्रीणां च प्रेक्षणालम्भमुपधातं परस्य च।।
31. मनु० 2/180
    कामाद्धि स्कन्दयन्रेतो हिनस्ति व्रतमात्मनः।।
32. याज्ञवल्क्य० आचाराध्याय, 33
    मधु मांसाञ्जनोच्छिष्ट शुक्त स्त्री प्राणिहिंसनम्।
    भास्करालोकनाश्लील परिवान्दादि वर्जयेत्।।

33. मनुस्मृति 2/181
स्वप्ने सिक्त्वा ब्रह्मचारी द्विजः शुक्रमकामतः।
स्नात्वार्कमर्चयित्वा त्रिः पुनर्माभित्यृचंजपेत्।।
34. मनु॰ 2/192
उदकुम्भं सुभनसो गोशकृन्मृत्तिका कशान्।
आहन्नेद्यावदर्थानि भैक्षं चाहरहश्चरेत्।।
35. कौटिल्य 4/13, याज्ञवल्क्य 2/293
36. **P.V. Kane, The History of Dharmashastra, Vol. III, p. 535.**
37. अर्थशास्त्र 4/13, याज्ञवल्क्य 2/291
38. मत्स्य 227/141
तथा प्रव्रजिता नारी वर्णोत्कृष्टा तथैव च।
इत्यगम्यांश्च निर्दिष्टास्तासां तु गमने नरः।।
39. मनुस्मृति 8/352
परदाराभिमर्शेषु प्रवृत्तान्नृन्महीपतिः।
उद्वेजनकरैर्दण्डैश्छिन्नयित्वा प्रवासयेत्।।
40. मनुस्मृति 8/353
तत्समुत्थो हि लोकस्य जायते वर्णसंकरः।
येन मूलहरोऽधर्मः सर्वनाशाय कल्पते।।
41. मनुस्मृति 8/354
परस्य पत्न्या पुरुषः संभाषां योजयन्रहः।
पूर्वमाक्षारितो दोष्यैः प्राप्नुयात् पूर्वसाहसम्।।
42. मनु॰ 8/355
यस्त्वनाक्षारितः पूर्वाकभिभाषेत् कारणात्।
न दोषं प्राप्नुयात् किञ्चित्न हि तस्य व्यतिक्रमः।।
43. मनु॰ 8/356
परस्त्रियं योऽभिनदेत्तीर्थेऽरण्ये वनेऽपि या।
नदीनां वापि संभेदे स संग्रहणप्नुयात्।।
44. मनु॰ 8/357
उपचार क्रिया केलिः स्पर्शो भूषणवाससाम्।
सह खट्वासनं चैव सर्वं संग्रहणं स्मृतम्।।
45. मनु॰ 8/358
स्त्रियं स्पृशेद्देशे यः स्पृष्टो मर्तयेत्तथा।
परस्परस्यानुमते सर्वं संग्रहणं स्मृतम्।।
46. मनु॰ 8/359

अब्राह्मणः संग्रहणे प्राणान्तं दण्डमर्हति।
चतुर्णांमपि वर्णानां दारा रक्ष्यतमाः सदा।।

47. मनु० 8/361
न संभाषां परस्त्रीभिः प्रतिषिद्धः समाचरेत्।
निषिद्धो भाषमाणस्तु सुवर्णं दण्डमर्हति।।

48. मनु० 8/364
योऽकामां दूषयेत्कन्यां स सद्यो वधमर्हति।
सकामां दूषयंस्तुल्यो न गवधं प्राप्नुयात् नरः।।

49. मनु० 8/366
उत्तमां सेवमानस्तु जघन्यो वधमर्हति।
शुल्कं दद्यात्सेवमानः समामिच्छेत् पिता यदि।।

50. मनु० 8/373
संवत्सराभिशस्तस्य दुष्टस्य द्विगुणो दमः।
व्रात्यया सह संवासे चाण्डाल्या तावदेव तु।।

51. मनु० 8/378
सहस्रांब्राह्मणो दण्ड्यो गुप्तां विप्रां बलात्व्रजन्।
शतानि पंच दण्ड्यः स्यादिच्छन्त्या सह संगतः।।

52. मनु० 8/379
मौण्ड्यं प्राणान्तिको दण्डो ब्राह्मणस्य विधीयते।
इतरेषां तु वर्णानां दण्डः प्राणान्तिको भवेत्।।
मनु० 8/380
न जातु ब्राह्मणं हन्यात्सर्वपापेष्वापि स्थितम्।
राष्ट्रादेनं बहिःकुर्यात्समग्रधनमक्षतम्।।

53. याज्ञ० व्य० 285
स्त्री निषेधे शतं दद्यात् द्विशतं तु दमं पुमान्।
प्रतिसंधे तथोर्दण्डो यथा संग्रहणे तथा।।

54. याज्ञ० व्य० 286
सजातावुत्तमो दण्डः आनुलोम्ये तु मध्यमः।
प्रातिलोम्ये बधः पुंसो नार्याः कर्णादिकर्त्तनम्।।

55. याज्ञ० व्य० 287
अलंकृतां हरन्कृन्यामुत्तमं ह्यन्यथाऽधमम्।
दण्डं दद्यात् सवर्णासु प्रातिलोम्ये बधः स्मृतम्।।

56. याज्ञ० व्य० 288
सकामास्वनुमोलासु न दोषस्त्वन्यथा दमः।
दूषणे तु करच्छेद उत्तमाया बधस्तथा।।

57. याज्ञ० व्य० 288

सकामास्वनुलोमासु न दोषस्त्वन्यथा दमः।
यदि सानुरागां हीनवर्णां कन्या भयहरति तदा दोषाभावान्न दण्डः।।
अन्यथा त्वनिछन्तीमपहरतः प्रथम साहसो दण्डः।।
(मिताक्षरा-विज्ञानेश्वरः) याज्ञ० पृ० 380

नवम अध्याय

सामाजिक जनों एवं राजपुरुषों द्वारा राज सम्बन्धित अपराधों तथा तद्विषयक दण्डों की तुलनात्मक समीक्षा

मनु तथा याज्ञवल्क्य जैसे प्राचीन स्मृतिकारों ने समाज में शासन द्वारा विहित विधि का सामाजिक जनों तथा राजपुरुषों द्वारा उल्लंघन किये जाने के अपराध करने पर निश्चित दण्ड को सुनिश्चित किया है। ये अपराध अनेक प्रकार के हैं— जिनमें निक्षेप का ऋण न लौटाना, निक्षेप का मिथ्या कथन, साक्ष्य के अभाव में मिथ्या साक्ष्य देना, राजकर्मियों द्वारा प्रजाजनों से किसी कार्य के लिये उत्कोच्च ग्रहण करना, जाली और खोटे सिक्के चलाना, जालसाजी, राज्य सेवकों द्वारा सेवा की अवज्ञा, राजकोष से चोरी करना, राजपत्नी के साथ व्यभिचार, राजद्रोह, करना, अधिकारियों द्वारा अपराध बिना ही दण्ड देना, राजपथ तथा सीमा सम्बन्धी नियमों के भंग के अपराध उल्लेखनीय हैं।

निक्षेप तथा ऋण न लौटाना

जो मनुष्य जिस प्रकार जिसके हाथ में जो धन या वस्तु आभूषण आदि सौंपे वह उसी प्रकार उससे ले[1] क्योंकि जैसा लेना वैसा देना यही नीति है। यदि धरोहर देने वाला धरोहर रखने वाला, धरोहर रखने वाले से अपनी धरोहर मांगे और यदि एसे न दे तो न्यासकर्ता[2] निक्षेप रखने वाले से वह धन या वस्तु मांग सकता है, निक्षेप रखकर निक्षेप रखने वाला यदि मांगने पर उसे नहीं लौटाता है। तो न्यायकर्ता वैदिक शपथ और सामाजिक उपायों से जाँच कर सत्यता का पता लगाकर सत्यासत्य का निरूपण करें।[3] जो धरोहर रखकर नहीं देता और धरोहर न सौंपकर मांगता है ये दोनों

चोर के समान अपराधी होने से दण्डनीय हैं।[4] और इनके उस वस्तु या धन के बराबर जुर्माने को दण्ड देना चाहिये। निक्षेप हड़पने वाले को राजा उस निक्षेप के बराबर द्रव्य दण्ड करे वैसे ही उपनिधि हरने वालों को भी उसी के समान जुर्माना करे।[5]

याज्ञवल्क्य के अनुसार निक्षेप में रखी हुई वस्तु छुड़ाने आने पर उसकी वस्तु निक्षेपकर्ता को दे देनी चाहिये। ब्याज के लोभवश उसे नहीं टालना चाहिये, अन्यथा चोर के समान निक्षेप वापस न करने वाले को दण्डभागी होना चाहिये। जिसके पास कोई वस्तु बन्धक रखी हो उसके उपस्थित न होने पर उसके कुल के किसी दूसरे व्यक्ति को ब्याज सहित धन सौंपकर निक्षेप की हुई वस्तु प्राप्त कर ली जा सकती है।[6] मनु के समान याज्ञवल्क्य भी उपनिधि या निक्षेप न लौटाने पर उस वस्तु या धन के बराबर वापिस दिलाने का प्रावधान सुनिश्चित करते हैं, यदि वापस मांगने पर वह वस्तु नहीं लौटायी जाती तो उपनिधि रखने वाले को उस वस्तु के बराबरा दण्ड चुकाना होता है।[7] याज्ञवल्क्य का अभिमत है कि जो अपनी इच्छा से उपनिधि अथवा निक्षेप किये हुए धन को भोग करता है, उसे उसके लाभ के साथ निक्षेप या उपनिधि वापस दिलाये और साथ ही दण्ड भी दे।[8] यही नियम याचित, न्यास, और निक्षेप में दी गई वस्तुओं में भी लागू होते हैं। मनु ने[9] भी इसी प्रकार ऋणी से धन दिलावा देने के लिये महाजन से प्रार्थी होने पर राजा उसे निश्चित धन कर्जदार से विविध अपायों से वापस दिलवा दे।[10] यदि ऋणि ऋण स्वीकार न करे और प्रमाणों से उसका ऋण लेना सावित हो तो राजा उससे धनी का धन दिलाये और यथाशक्ति कुछ दण्ड भी दे।[11] न्यायालय में ऋणी से ऋण मांगने पर यदि वह यह कहे मैं इसका कुछ भी नहीं धारता तो महाजन साक्षियों से सच्ची बात कहलावे और प्रमाणों में पत्रादि पेश करे।[12] ऋणी धन लेकर जितना धन न लेने का बहाना करे और धनी कर्जदार पर अधिक झूठा दावा करे तो इन दोनों अपराधी अधर्मियों पर उसका दूना अर्थ दण्ड करे।[13] इस सम्बन्ध में याज्ञवल्क्य का भी ऐसा ही विचार है।[14]

मिथ्या साक्ष्य देना

विविध प्रकरणों (निक्षेप या उपनिधि, बन्धक अथवा ऋण आदि) से सम्बन्धित वादों के विषयों में झूठी गवाही देना गम्भीर अपराध मनु तथा याज्ञवल्क्य दोनों स्मृतिकार स्वीकार करते हैं तथा मित्या साक्ष्य देने पर निश्चित दण्ड विधान की व्यवस्था देते हैं। मनु का विचार है कि जो लोभ, मोह, भय, मित्रता, काम, क्रोध, अज्ञान और बालपन में गवाही दी जाती है वह झूठी होती है।[15] इसके लिये

लोभ से मिथ्या साक्ष्य देने पर एक हजार पण मोह से साक्ष्य में झूठ बोलने पर प्रथम साहस, भय से झूठ बोलने पर दो मध्यम साहस, मित्रता से झूठी गवाही देने पर प्रथम साहस का चौगुना दण्ड है।[16] कामवश झूठी गवाही देने से प्रथम साहस का दस गुना, क्रोध से झूठ बोलने वाले पर मध्यम साहस का तिगुना, अज्ञान से दो सौ पण और मूर्खता से मिथ्या साक्ष्य देने पर एक सौ पण दण्ड देना चाहिए।[17] मिथ्या साक्ष्य देने वाले क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र पूर्वोक्त प्रकार से आर्थिक दण्ड देकर देश से निकाल दें किन्तु ब्राह्मण को विवासित ही करना चाहिये।[18] मनु के समान याज्ञवल्क्य का भी मिथ्या अथवा कूट साक्ष्य देने के अपराध में दण्ड देने का प्रावधान अभिव्यक्त किया है।[19]

मिथ्यासाक्ष्य देने के अपराध से बचने के लिये मनु तथा याज्ञवल्क्य दोनों ने साक्षियों की सत्पात्रता पर भी पर्याप्त विचार किया है। गृहस्थ, पुत्रवान्, पड़ौसी, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र ये लोग वादी के कहे जाने पर साक्ष्य दे सकते हैं किन्तु निरापद अवस्था में जिस जिस का साक्ष्य नहीं लिया जा सकता।[20] इसी प्रकार सब वर्णों में सत्यवक्ता, धर्म के ज्ञाता और निर्लोभी लोग जो हो वे लेन देन के व्यवहार में साक्ष्य देने के योग्य होते हैं और इसके विरुद्ध गुणवाले लोग हों उनका साक्ष्य नहीं लेना चाहिये।[21]

जिनके साथ धन का सम्बन्ध हो, इष्ट मित्र हों, सहायक हो, शत्रु हो, जिनका दोष पहले देखा गया हो और व्याधि पीड़ित हों, पाप से दूषित हों, इनको कभी साक्षी नहीं मानना चाहिये।[22] इसी प्रकार राजा, कारीगर, नट, श्रोत्रिय, (वेदध्यायी कर्मकाण्डी ब्राह्मण) ब्रह्मचारी को भी साक्षी नहीं मानना चाहिये।[23] दास, विहित कर्म के त्याग से लोगों में जिसकी निन्दा होती हो, कुकर्मी, निषिद्ध कर्म करने वाला, बूढ़ा, बालक, अन्त्यज और विकलेन्द्रिय इनमें एक को ही गवाही न करें कम से कम तीन हों।[24] शोकार्त, मत्त, पागल, भूख प्यास से पीड़ित, परिश्रम से थका हुआ, कामातुर, क्रोधी और चोर को भी साक्षी न करें।[25] स्त्रियों के अभियोग में स्त्रियों को गवाही करें। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य के उनके सजातीय हों और शूद्रों के शूद्र, चण्डाल जाति वालों के उनकी जाति वाले हों।[26] घर या जंगल में चोर, लुटेरों का उपद्रव होने पर या किसी के द्वारा शरीर पर चोट किये जाने पर वहाँ जो कोई हो उसी को साक्ष्य करना चाहिये।[27] उपर्युक्त सन्दर्भ में मनु की इन साक्ष्य सम्बन्धी पात्रता पर याज्ञवल्क्य ने भी साक्षी प्रकरण में पर्याप्त विचार किया।[28]

जो साक्षी देखी सुनी बात को जानता हुआ भी सत्य साक्ष्य नहीं देता, वह वस्तुतः पाप का भागी होता है, कहा जाता है कि ऐसे झूठी गवाही देने वाले को सौ

जन्म तक वरुण-पाश से बद्ध होकर कष्ट भोगना पड़ता है।[29] यदि निरोग साक्षी त्र्यपादि व्यवहार में तीन पक्ष के भीतर साक्ष्य न दे तो उसी से सब ऋण महाजन को दिलाना चाहिये और वह साक्षी सम्पूर्ण ऋण का दसवाँ हिस्सा दण्ड स्वरूप राजा को दे।[30] इस सम्बन्ध में याज्ञवल्क्य का भी ऐसा ही अभिमत है। उन्होंने दसमांश धन सहित छियालीसवें दिन देने का निर्देश दिया है।

अब्रुवहिनरः साक्ष्यमृणं सदशबन्धकम्।
राज्ञा सर्वे सुदाप्यैः स्यात्षटचत्वारिंशके द्रहनि।। — याज्ञ० 2/7

मिथ्या साक्ष्य देने वाले अपराधियों के लिये चार प्रकार के दण्ड मनु ने इस प्रकार निर्धारित किये हैं, (1) वाक्-दण्ड (डाँटने दपटने का), (2) धिक्कारना, (3) धन-दण्ड, (4) शरीर-दण्ड आदि हैं। अंगच्छेदनादि शारीरिक दण्ड देने पर भी इन अपराधियों का निग्रह न कर सके तो चारों दण्डों का प्रयोग करना चाहिये।[32] धन-दण्ड में ताँबा, चाँदी और सोना इनकी पणादि जो संज्ञायें लोक व्यवहार में प्रचलित हों उन्हें लोकार्थ दण्ड में पूर्णतः अनुमोदित किया गया है।

राजपथ सम्बन्धी अपराध

राजपथ सम्बन्धी नियमों का सम्यक् पालन न करने से सामाजिक जन तथा राजपुरुष समान रूप से अपराधी होकर राज्य शासन द्वारा दण्डनीय होते हैं। यदि सामान्य मार्ग अथवा राजपथ के आसपास आवागमन करते हुये आस पास के खेतों की सम्पत्ति फसल आदि का पशुओं द्वारा चरवाकर नुकसान करता है। मनु इस प्रकार मार्ग के यात्रियों पशुपालकों को भी इस प्रकार के अपराध से विरत रहने का निर्देश देते हैं। यदि राजपथ का अथवा सामान्य मार्ग का पशुपाल मार्ग के आसपास खेत में प्रवेश कर फसल का नुकसान करता है और यात्री साथ में रहकर पशु को खेत में घुसने से नहीं रोकता है, तो राजा ऐसे मार्गयात्री पशु पालक पर 100 पण का दण्ड दे सकता है।[33] राजमार्ग या उसके आस पास वृक्षों अथवा वनस्पति का विनाश करने वाले यात्री भी अपराधी होकर राजदण्ड भागी होते हैं।[34] राजमार्ग में आवागमन करने वाले रथ, सारथी और रथ स्वामी के दस अपराधों को छोड़ और अपराधों में दण्ड का विधान किया गया है,[35] ये क्षम्य दस अपराध निम्नलिखित हैं— नाथ कट जाने, जुआ टूटने, गाड़ी अपने पथ से बाहर होने, धुरी या पहिया टूट जाने, चमड़े को बंधन, सवारी के गले की रस्सी और रास के टूटने पर, सारथी यदि चिल्लाकर कहे, हटो हटो, उस पर भी यदि कोई अनिष्ट हो जाये तो सारथी या गाड़ी. हाँकने वाला दण्डभागी नहीं होता है।[36]

राजपथ पर जहाँ गाड़ी हाँकने वाले के दोष से गाड़ी रास्ते से हटने पर कुछ हानि हो तो वहाँ उसके स्वामी को 200 पण दण्ड देना चाहिये।[37] यदि गाड़ी हाँकने वाला होशियार है तो वह 200 पण उसी को ही देना होगा और यदि सारथी अयोग्य होने से कोई अनिष्ट घटना हो तो गाड़ी के सभी सवारों को सौ सौ पण दण्ड देना होगा।[38] यदि वह सारथी गौ आदि पशुओं से या दूसरे रथ से रास्ता रुद्ध हो जाने पर भी अपने रथ को नहीं रोकता है, और उससे यदि कोई प्राणी की हिंसा हो जाती है तो बिना विचारे ही उसे दण्ड देना चाहिये।[39] राजपथ पर गाड़ी हाँकने वाले की गफलत से यदि कोई मनुष्य गाड़ी के नीचे दब कर मर जाय तो गाड़ीवान को चोर का पाप लगता है। अतः राजा को उसे चोर का दण्ड देना चाहिये, किन्तु गाय, हाथी, ऊँट, घोड़े आदि बड़े पशु के कुचल कर मरने पर उसका आधा अपराध होता है, किन्तु छोटे प्राणियों की हिंसा पर गाड़ीवान को 200 पण और हिरन, शुक, सारिका आदि पक्षियों के मरने पर 50 पण का दण्ड देना होगा।[40] गधे, बकरे, भेड़ आदि को मारने पर गाड़ीवान को 5 माषे भर चाँदी और श्वान-शूकर के मारने पर एक माषा चाँदी दण्ड देना होगा।[41]

राजपथ के यातायात सम्बन्धी नियमों का उल्लंघन होने वाले अपराध

राजपथ के यातायात सम्बन्धी नियमों का उल्लंघन होने वाले अपराधों पर गम्भीरता पूर्वक सूक्ष्म विचार कर इनके दण्ड की जिस प्रकार व्यवस्था मनु ने की है उतनी याज्ञवल्क्य ने नहीं तथापि कहीं कहीं मार्गों के आस पास पशुओं से चरवाहे द्वारा आवागमन में जो नुकसान करने का अपराध किया जाता था उसके दण्ड की व्यवस्था याज्ञवल्क्य ने संक्षेप में इस प्रकार दी है।[42] गांव के निकट मार्ग में और पशुओं के बाड़े के पास जितनी फसल चरे या नष्ट किये हों उतने का फल खेत के स्वामी को मिले। चरवाहे को पीटना चाहिये और गाय के स्वामी से उपयुक्त दण्ड लेना चाहिये। गांवों के निकट मार्ग में और पशुओं के बाड़े से सटे हुए खेत में आने जाने में भूल से पशुओं के पड़ जाने पर कोई दोष नहीं होता है किन्तु मार्ग के आस पास खेत में पशुओं को जानबूझ कर छोड़ने वाला चोर के समान दण्डनीय होता है। यह दण्ड विधान मनुस्मृति से मिलता जुलता है।[43]

राज-सीमा सम्बन्धी अपराध

तत्कालीन राष्ट्र में नागरिकों के मध्य सीमा सम्बन्धी गम्भीर विवाद तथा अपराध होते रहते थे। सामान्यतया दो गांव की सीमा के निमित्त विवाद उत्पन्न होने

पर जेठ मास में सीमा पर लगे सीमा वृक्षों— वट, पीपल, पलाश, सेर, सखुआ, ताल खीरी आदि वृक्ष को देख कर सीमा का पता लगाना चाहिये।[44] सीमा पर लगे गूलर के पेड़ बांस विविध भांति के संमीय वृक्ष लतायें सर्पत और टेढ़े वृक्ष रहे तो सीमा नष्ट नहीं होती है।[45] सीमा के सन्धि स्थान में पोखर कुयें, बावली, नहर और देव मन्दिर बनवाने चाहिये।[46] सीमा सम्बन्धी स्थल चिह्नों को समाप्त करने के अपराधों को रोकने के लिए राजा को चाहिये कि वह सीमा के अनेक गुप्त चिह्न करा दें।[47] गुप्त चिह्नों में पत्थर के खण्ड, हड्डी, चामर, भूसी, राख, खोपड़ी, सूखे कंडे, ईंट, कोयले कंकड़ और बालू तथा ऐसे अन्य पदार्थ भी जिन्हें पृथ्वी अपने में न मिला सके उन्हें राजा सीमा के सन्ध गुप्त, रीति स्थान में गड़वा दें।[48] सीमा सम्बन्धी अपराध करने वाले और विवादियों की समस्या सुलझाने के लिए राजा ग्रामवासियों के सामने ग्राम की सीमा के चिह्न पूछे तथा पूछे जाने पर वह साक्षी लोग सीमा के सम्बन्ध में जो निर्णय बतायें, राजा उसी तरह सीमा के चिह्न, चित्र, साक्षियों के नाम एक राजपत्र पर लिख ले। सीमा साक्षी सत्य सत्य सीमा बतलाने पर निर्दोष होते हैं, परन्तु सीमा के सम्बन्ध यदि ये साक्षी मिथ्या भाषण का अपराध करे तो राजा उन्हें 200 पण का दण्ड करे।[49] साक्षियों के अभाव में समीपवर्ती गांव के प्रधान लोग सीमा सम्बन्धी विवाद का निर्णय करें इस सम्बन्ध में झगड़ते हुये पुरुष के ग्रामवासी गवाह यदि झूठ बोले तो राजा हर एक को अलग अलग मध्यम साहस दण्ड करे।[50] जो भय दिखाकर या जानबूझकर सीमा स्थिति दूसरे का घर, पोखर, बाग और खेत ले लें तो राजा उस पर 500 पण का दण्ड करे और जाने बिना ले तो 200 पण दण्ड करे।[51] अतः सीमा सम्बन्धी विवादों और अपराधों को रोकने के लिए साक्षी और चिह्नों के अभाव में धर्मज्ञ राजा स्वयं ही दो गांवों के बीच विवाद ग्रस्त भूमि परोपकार के लिए उन लोगों को दे दें। मनु के समान याज्ञवल्क्य ने भी सीमा विवाद के सम्बन्ध में गम्भीरता पूर्वक विचार किया है। मनु के समान याज्ञवल्क्य में सीमा सम्बन्ध निपटारे में गांव के प्रमुख वृद्धजनों के संयोग की अपेक्षा की है।[52] याज्ञवल्क्य ने भी मनु के समान सीमाओं पर सेतु, वापी, नीम, पीपल, वटादि वृक्षों की पहिचान स्वरूप आवश्यक स्वीकार किया है।[53] सीमा निर्धारण में साक्षी हेतु चार ग्राम-प्रमुखों के स्थान पर याज्ञवल्क्य ने आठ अथवा दस ग्राम-वृद्ध जो लाल वस्त्र और माला पहने हों, आवश्यक बताये हैं।[54] इन साक्षियों के झूठ बोलने पर राजा के द्वारा इन्हें मध्यम साहस का दण्ड देना चाहिये और ज्ञात चिह्नों के अभाव में स्वयं ही राजा को सीमा निर्धारण करना चाहिये। यदि ग्रामवासी सीमा अतिक्रमण का अथवा मर्यादा उल्लंघन का अपराध करे तो क्रमशः अधम, उत्तम, मध्यम साहस का दण्ड समझना

चाहिये। सीमा सम्बन्धी अपराधों में मनु के अनुसार जो राज्य में रक्षा के लिये नियुक्त हों या सीमा पर रक्षक रूप में तैनात किये गये हों यदि वे ही चोरी कराने में सम्मिलित हों तो राजा शीघ्र उन्हें चोर के तुल्य दण्ड दे।[55]

इस प्रकार हम देखते हैं कि सीमा सम्बन्धी राज अपराधों और दण्ड विधान में मनु और याज्ञवल्क्य दोनों ने समान स्तर पर विचार कर व्यवस्था दी है।

राजकोष का अपहरण करना

यदि सामान्य प्रजा के लोग या राज्य कर्मचारी प्रतिकूल आचरण करते हुए राजकोष का अपहरण करे और राजा के शत्रुओं को उकसायें तो राजा विविध दण्डों से उन्हें दण्डित करे जिसमें मृत्युदण्ड भी शामिल है।[56] राजकोष की चोरी करने में सामान्य चोरों की भाँति सेंध मारकर चोर चोरी करते हैं तो राजा उनके दोनों हाथ काट कर सूली पर चढ़ा दें[57] और यदि कपड़े बंधे हुए द्रव्य या स्वर्ण की गांठ खोलकर उड़ाने वाले चोर की पहले बार उठाने पर अंगुलियाँ और दूसरी बार हाथ कटवा दें। तीसरी बार चोर बध के योग्य होता है।[58] यदि चोर को आग-भोजन, हथियार और ठहरने की जगह कोई देता है या राजकोष की चोरी का माल कोई रखता है तो राजा चाहे, चोर के समान दण्डित करे।[59]

मनु के समान यद्यपि राजकोष हरण के अपराध के सम्बन्ध में स्पष्ट उल्लेख याज्ञवल्क्य ने नहीं किया है तथापि टीकाकार विज्ञानेश्वर ने राजोऽनिष्टप्रवक्तारं..... ....प्रवासयेत्। 2/302 की टीका में कोषापहरणादौ पुनर्बध एव। (मनु० 9/275) राजकोष अपहरण में प्राण दण्ड कहा है के दृष्टिकोण का सर्वथा समर्थन किया है।

इस प्रकार राजकोष के अपहरण विषयक अपराध और दण्ड में मनु और याज्ञवल्क्य का समान दृष्टिकोण है। राजकोष, मंदिर की वस्तु, गज, घोड़ा चुराने पर मृत्युदण्ड दिया जाता है।[60]

राजकर्मियों द्वारा कार्यार्थियों से घूस लेना

राजकर्मचारियों द्वारा अथवा अधिकारियों द्वारा प्रजाजनों के कार्य हेतु उनसे घूस को न ले इसके लिये राजा को सदैव सजग होकर के इन धनापहारियों से प्रजा की रक्षा करनी चाहिये। (मनु० 7/123) यदि कोई राज्य कर्मचारी कार्यार्थियों से घूस लेता है तो राजा सर्वस्व हरण कर देश मे निकाल दे।[61] अतः राजा को चाहिये कि अपने विभिन्न कार्यों में नियुक्त कर्मचारी गणों की दैनिक वृत्ति और पद (कार्य) निश्चित कर दे।[62] जिससे वे प्रियजनों से उनके कार्य कराने के लिये उत्कोच (घूस)

न ले सके। कर्मचारी घूस लेकर कार्यकर्ताओं के कार्य को नष्ट करें ते राजा उनका सर्वस्व हरण करके उन्हें दरिद्र कर दें।[63] घूसखोर को राजा देश के कंटक स्वरूप प्रकट चोर की तरह समझें।[64]

याज्ञवल्क्य ने इस सम्बन्ध में राजकर्मियों के उत्कोच लेने के अपराध और दण्ड का कोई उल्लेख नहीं किया है। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि याज्ञवल्क्य के काल में राजकर्मचारी अधिक ईमानदार होते थे, जिससे उनमें घूस लेने की प्रवृत्ति उस समय पनपी न होगी।

राजद्रोह

जो द्वेष भाव से राजा पर आक्रमण करे उसे ब्रह्महत्या से बढ़कर भी अपराध माना गया है। (नारद, 15/16) राजा दुर्ग, कोष, सेना आदि राज्य की प्रकृतियों के प्रति शत्रुभाव रखने वाले को मनु,[65] कौटिल्य[66] आदि धर्मशास्त्रकार जिन्दा अग्नि में जला देने का निर्देश देते हैं। मनु एवं बृहस्पति राजा के प्रति शत्रुभाव रखने वाले को देश निष्कासन का दण्ड देते हैं।

प्राचीन भारत में राजा के प्रति विद्रोहभाव, शत्रुता रखने तथा विद्रोह को बढ़ावा देने वाले को शरीरिक दण्ड दिया जाता था।[67] राजद्रोह के अन्तर्गत याज्ञवल्क्य रानी के प्रति अमानुषिक व्यवहारों पर मृत्युदण्ड देने के निर्देश देते हैं।[68] राज्य के हाथी, अश्व, अस्त्र-शस्त्र आदि को ध्वस्त करने का प्रयत्न करना भी राजद्रोह के समान दण्डनीय अपराध माना गया है।[69] वास्तव में मनु के अनुसार अज्ञान से राजा के साथ शत्रुता रखता है या द्रोह करता है वह निस्सन्देह नाश को प्राप्त होता है, उसके विनाशार्थ राजा शीघ्र अपने मन को नियुक्त करता है।

याज्ञवल्क्य राजद्रोह करने वाले आन्तरिक प्रजाजनों से ही नहीं, वरन् इस सन्दर्भ में पड़ोसी राज्यों से सतर्कता रखने का निर्देश राजा को देते हैं।[70]

राजा की निन्दा या गाली देना

राजा की निन्दा करना अथवा गाली देना एक गम्भीर अपराध माना गया है, अतः राजा को गाली देने में याज्ञवल्क्य देश निकाला अथवा जुर्माना देने का विधान निश्चित करते हैं।[71अ] जबकि कौटिलय ने राजा को गाली देने पर जिह्वाच्छेदन करना आवश्यक बताया है।[71ब] किन्तु मनु ने राजा के क्रोध से बचने के लिए उसकी निन्दा न करने अथवा अनादर न करने का परामर्श दिया है।[72] नारद और कात्यायन ने राजा को गाली देने के अपराध में दण्ड देने का विधान किया है।[73]

राज सिंहासन पर बैठने का दण्ड

यदि राजा की अवज्ञा अथवा अवहेलना कर कोई राजा की सवारी (रथ, हाथी, घोड़ा आदि) अथवा सिंहासन पर उसकी अवहेलना कर बैठ जाता है तो ऐसे अपराधी को उत्तम साहस का दण्ड देने का विधान किया गया है।[74] अतः धर्मशास्त्रियों ने राजा के यान अथवा सिंहासन पर बैठने के अपराध से विरत रहने और उसका निरादर न करने का निर्देश दिया है।

राजकर्मचारियों द्वारा कर्तव्य की अवहेलता करना

यदि राज्याधिकारी सौंपे हुये उत्तरदायित्वों का सम्यक् निर्वाह नहीं करते हैं तो उन्हें कठोर दण्ड देने का भी निर्देश दिया है। इस सम्बन्ध में मनु के अनुरूप ही याज्ञवल्क्य का दृष्टिकोण है, जिसमें राजकर्मियों द्वारा कर्तव्य की अवहेलना करने पर कठोर दण्ड का विधान इन दोनों धर्मशास्त्रियों ने किया है।

समीक्षा

किसी भी समाज और राज्य में शान्ति, समृद्धि एवं सुव्यवस्था के लिए यह परम आवश्यक है कि उसमें सामाजिक जनों तथा राजपुरुषों द्वारा राजनियमों अथवा राजधर्म के उल्लंघन से अनेक अपराध प्रायः नित्य प्रति होते रहते हैं। मनु और याज्ञवल्क्य ने सामाजिकों एवं राजपुरुषों द्वारा राजसम्बन्धित अनेक अपराधों निक्षेप या ऋण का न लौटाना, निक्षेप या मिथ्या कथन, मिथ्या साक्ष्य देना, राजपथ तथा राजसीमा विवाद, राजद्रोह, राजा की निन्दा करना, राजसिंहासन पर बैठना, राजकर्मचारी द्वारा घूस लेना, राजपत्नी के साथ व्यभिचार करना, राजकोष की चोरी करना आदि पर गम्भीरता से विचार करते हुए समुचित दण्ड व्यवस्था निर्धारित की है।

इन अपराधों के करने वाले चाहे वे किसी भी वर्ण और कुल के क्यों न हों— भले ही अपराधी ब्राह्मण अथवा राजकुल का प्रभावी व्यक्ति क्यों न हो, अदण्ड्य नहीं था। इससे तत्कालीन निष्पक्ष एवं आदर्श न्याय एवं दण्ड व्यवस्था का पता चलता है, जिसमें अपराध रूपी कण्टक को राजा निर्ममता पूर्वक कुचल कर राज्य की अराजकता और प्रजा के असन्तोष को दूर करता था। राज्य और समाज में वर्णाश्रम धर्म की स्थापना, जनता में निर्भयता, सुरक्षा का भाव और सुख शान्ति तभी संभव है, जब कोई निरपराधी भूल से दण्डित न हों और अपराधी उचित राजदण्ड से बच न पाये। इस दृष्टि से सामाजिक स्थिरता के लिए मनु और याज्ञवल्क्य का दण्ड विधान सर्वथा समुचित एवं समीचीन ही है।

सन्दर्भ

1. मनु० 8/188, यो यथा निक्षिपेद्धस्ते यमर्थ यस्य मानवः।
2. मनु० 8/181

   सातथैव गृहीतव्योयथा दायस्तथा गृहः।

   यो निक्षेपं याच्यमानो.........सन्निसेप्तुरूपनिधौ।।
3. मनु० 8/190

   निक्षेपस्यापहर्त्तारमनिक्षेप्तारमेव च।

   सर्वेरूपायैरन्विच्छेच्छपथैश्चै व वैदिकैः।।
4. मनु० 8/191, यो निक्षेपं नार्पयति..........तत्समंदमम्।।
5. मनु० 8/192

   निक्षेपस्यापहर्त्तारं दापयेद्धनम्।

   तथोपनिधिहर्तारमविशेषेण पार्थिवः।।
6. याज्ञवल्क्य स्मृति 2/62

   उपस्थितस्य भोक्तव्य आधिः स्तेनोऽन्यथा।

   प्रयोजकेऽसति धनं कुले न्यस्याधिमाप्नुयात्।।
7. याज्ञवल्क्य स्मृति उपनिधि प्रकरण 2/66

   न दाप्यो अपहृतं तं तु राजदैविकतस्करैः।

   देद्यश्चेन्मार्गितेऽदान्ते दाप्यो दण्डं च तत्समम्।।
8. याज्ञवल्क्य स्मृति 2/67

   आजीवनस्वैच्छयादण्डो दाप्यस्तं चापिसोदयम्।

   याचितान्वाहितन्याससनिक्षेपादिष्वयं विधिः।।
9. मनु० 8/47

   अधमर्णार्थसिद्धयर्थमुत्तमर्णेन चोदितः।

   दापयेद्धनिकस्यार्धमधमर्णाद्विभावितम्।।
10. मनु० 8/49

    धर्मेण व्यवहारेण छलेनाचरितेन च।

    प्रयुक्तं साधमेदर्थ पञ्चमेन बलेन च।।

11. मनुस्मृति 8/51

अर्थेऽपव्ययमानं तु करणेन विभावितम्।

दापयेद्धनिकरस्वार्थ दण्डलेशं च शक्तितः।।

12. मनुस्मृति 8/52

अपह्नवेऽथमर्णस्य देहीत्यक्तस्य संसदि।

अभियोक्तादिरोद्देश्यं करणं वान्यदुद्दिशेत्।।

13. मनुस्मृति 8/59

यो यावन्निह्नवीतार्थ मिथ्या याचति वा वैदेत्।

तौ नृपेण ह्यधर्मज्ञौ दाप्यौ तद्द्विगुणं दमम्।।

14. याज्ञवल्क्य स्मृति 2/66

भ्रेषश्चेन्यार्णितेऽदन्ते दाप्यो दण्डः च तत्समम्।

आजीवन्स्वेच्छया दण्ड्यो दाप्यस्तं चापि सोदयम्।।

15. मनुस्मृति 8/118

याचितान्वाहितन्यासनिक्षेपादिपचयं विधिः।

लोभा-मोहा ....वितथमुच्यते।।

16. मनुस्मृति 8/120

लोभात्सहस्त्रं दण्डस्तु, मोहात्पूर्वं तु साहसम्।

भयाद्द्वौ मध्यमौ दण्डौ मैत्रात्पूर्वं चतुर्गुणम्।।

17. मनुस्मृति 8/121

कामाद्दिशगुणं पूर्वं क्रोधास्तु त्रिगुणं परम्।

अज्ञानाद्द्वे शते पूर्णे बालिश्याच्छतमेव तु।।

18. मनुस्मृति 8/123

कौटसाक्ष्यं तु कुर्वाषांस्त्रीन्वर्णान्धार्मिको नृपः।

प्रवासयेद्दण्डयित्वा ब्राह्मणं तु विवासयेत्।।

19. याज्ञवल्क्य स्मृति 2/81

पृथक्पृथक् दण्डनीयाः कूटकृत्साक्षिणस्तथा।

विवादाद् द्विगुणं दण्डं विवास्यो ब्राह्मणस्मृतः।।

20. मनुस्मृति 8/62

गृहिणः पुत्रिणो मौलाः क्षत्रविट्शूद्रयोनयः।

अर्थ्युक्ताः साक्ष्यमर्हंति न ये के चिदनापदि।।

21. मनुस्मृति 8/63

आपाः सर्वेषु वर्णेषु कार्याः कार्येषु साक्षिणः।

सर्वे धर्मविदोऽलुब्धा विपरीतास्तु वर्जयेत्।।

22. मनुस्मृति 6/64

नार्थसम्बन्धिनो नाप्ता न सहाया नवैरिणः।

न दृष्टदोषाः कर्तव्या न व्याध्यार्ता न दूषिताः।।

23. मनुस्मृति 8/65

न साक्षी नृपतिः कार्यो न कालककुशीलवौ।

न श्रोत्रियो न लिंगस्यो न संगेभ्योविनिर्गतः।।

24. मनुस्मृति 8/66

नाध्याधीनो न वक्तव्यो न दस्युर्न विकर्मकृत।

न वृद्धो न शिशुर्नैको नान्त्यो न विकलेन्द्रियः।।

25. मनुस्मृति 8/67

नार्तौं न मत्तो नोन्मत्तो न क्षुन्तृबोपपीडितः।

न श्रमार्तौ न कामार्तो न क्रुद्धोनापि तस्करः।।

26. मनुस्मृति 8/68

स्त्रीणां साक्ष्यं स्त्रियः कुर्यु द्विजानां सदृशा द्विजाः।

शूद्राश्च सन्तः शूद्राणामन्त्यानामन्त्यऽयोनपः।।

27. मनुस्मृति 8/69

अनुभावी तु यः कश्चित्कुर्यात्साक्ष्यं विवादिनाम्।

अंनृर्वेश्मन्यरण्ये वा शरीरस्यापि चात्यये।।

28. याज्ञवल्क्य स्मृति 2/68, 69......72 तक।

29. मनुस्मृति 8/82

साक्ष्येऽनृतं व्यदन्पाशैर्वध्यते वारुणैर्भृशम्।

विविशः शतमाजातीस्त स्मात्साक्ष्यं वदेदृतम्।।

30. मनुस्मृति 8/107

त्रिपक्षाद् ब्रुवन्साक्ष्यमृणादिषु नरोऽगदः।

तदृणं प्राप्नुयांत्सर्वं दसबन्धं च सर्वतः।।

31. मनुस्मृति 8/129

वाक् दण्डं प्रथमं कुर्याद्धिग्दण्डंतदन्तरम्।
तृतीयं धनदण्डं सुवधदण्डमतः परम्।।

32. मनुस्मृति 8/130

बधेनापि यदा त्वेतान्निगृहीतुं न शक्तुपात्।
तदैषु सर्वमप्येतत्प्रयुञ्जीत चतुष्टयम्।।

33. मनुस्मृति 8/240

पथि क्षेत्रपरिहृत्ते ग्रामान्तीयेऽथवा पुनः।
स पालः शतदण्डार्हो विपालान्वारयेत्पशून्।।

34. मनुस्मृति 8/285

वनस्पत्तिनां सर्वेषामुपभोगं यथा यथा।
तथा तथा दयः कार्यो हिंसायामिति धारणा।।

35. मनुस्मृति 8/290

यानस्य चैव यातुश्च यानस्वामिन एव च।
दशातिवर्तनान्याहुः शेषदण्डो विधीयते।।

36. मनुस्मृति 8/291

छिन्ननास्ये भग्नयुगे तिर्यक्प्रतिभुत्वागते।
अक्षभङ्गे च यानस्य चक्रभङ्गे तथैव च।।

मनुस्मृति 8/292

छेदने च यन्त्राणां योक्त्रारम्यो स्तथैव च।
आक्रन्दे चाप्यपैहींति न दण्डं मनुरब्रवीत्।।

37. मनुस्मृति 8/293

यत्रापवर्तते युग्यं वैगुण्यात्प्राजकस्य तु।
तत्र स्वामी भवेद्दण्ड्यो हिंसायां द्विशतं दमम्।।

38. मनुस्मृति 8/294

से चेत्त पथि संरुद्धः पशुभिर्वा रथेन वा।
प्रमापयेत्प्राणनृततस्तत्र दण्डोऽविचारितः।।

39. मनुस्मृति 8/295

प्राजकश्चेद्भवेदाप्तः प्राजको दण्डमर्हति।
युग्यस्थाः प्राजकेऽनाप्ते सर्वेदण्ड्याः शतं शतम्।।

40. मनुस्मृति 8/297

क्षुद्रकाणां पशूनां तु हिंसायां द्विशतो दमः।
पश्चाशत्तु भवेद्दण्डः शुभेषु मृगपक्षिषु।।

41. मनुस्मृति 8/298
गर्दभाजाविकानां तु दण्डः स्यात्पञ्चमाषिकः।
माषिकस्तु भवेद्दण्डः श्र्वसूकरनिपातने।।

42. याज्ञवल्क्य स्मृति 2/161
यावत्सस्यं विनश्येत्तु तावत्स्यात्क्षेत्रिणः फलम्।
गोपस्ताड्यश्च गोपी तु पूर्वोक्तं दण्डमर्हति।।

43. याज्ञ० स्मृति 2/162
पथिग्राम विवीतान्ते क्षेत्रे दोषो न विद्यते।
अकामतः कामचारे चौरवद्दण्डमर्हति।।

44. मनुस्मृति 8/246
सीमां वृक्षांश्चकुर्वीत न्यग्रोधाश्वत्थ किंशुकान्।
शाल्मलीन्ताल तालांश्च क्षीरिधश्चैव पादयान्।।

45. मनुस्मृति 8/247
गुल्मान्वेणूंश्च विविधन्छमी वल्लीस्थलानि च।
शशच्कुब्जकगुल्मांश्च तथा सीमा न नक्ष्यति।।

46. मनुस्मृति 8/248
तडागान्युद्यानापि वाप्यः प्रस्त्रवणानि च।
सीमासंधिषु कार्याणि देवतायतनानि च।।

47. मनुस्मृति 8/249
उपच्छन्नानि चान्यानि सीमालिंगानि कारस्येत्।
सीमाज्ञाने नृणां वीक्ष्य नित्यं लोके विपर्ययम्।।

48. मनुस्मृति 8/250
अश्मनोऽस्थीनि गोवालास्तुषा भस्मकपालिकाः।
करीषु भिष्टकाङ्गारांच्छर्करा वालुकास्तथा।।

49. मनुस्मृति 8/251
यानिचैवं प्रकाराणि कालम्भूमिर्निभक्षयेत्।
तानि संधिषु सीमायामप्रकाशानि कारयेत्।।

50. मनुस्मृति 8/263
सामन्ताश्चेन्मृषा ब्रूयः सेतौ विवादतां नृणाम्।
सर्वे पृथक्पृथग्दण्ड्या राज्ञा मध्यमसाहसम्।।

51. मनुस्मृति 8/264
गृहं शतानि तडागमारामं क्षेत्रं वा भीषया हरन्।
शतानि पञ्च दण्ड्यः स्यादज्ञानाद द्विशतोदमः।।

52. याज्ञ० 2/150

सीम्नो विवादे क्षेत्रस्य सामन्ताः स्थविरादयः।
गोपाः सीमा कृषाणा ये सर्वे च वनगोचराः।।

53. याज्ञ० 2/151
नेययुरेते सीमानं स्थलाङ्गारतुषद्रुमैः।
सेतुवल्मीकनिम्नास्थियैत्यादौ रूपलक्षिताम्।।

54. याज्ञ० 2/152
सामन्ता वा समग्रामाश्चत्वारोरष्टौ दशापिवा।
रक्तस्रग्वसनाः सीमां नयेयुः क्षितिवारिणः।।

55. मनु० 9/272
राष्ट्रेषु रक्षाधिकृतान्सामन्तांश्चैव चोदितान्।
अभ्याधातुषु मध्यस्थान्छिष्याच्चौशनिव द्रुतम्।।

56. मनु० 9/275
राज्ञः कोषापहर्तृश्च प्रतिकूलेषु च स्थितान्।
घातयेद्विविधैर्दण्डैररीणां चोपजापकान्।।

57. मनु० 9/276
संधि छित्वा तु ये चौर्य रात्रौ कुर्वन्ति तस्कराः।
तेषां हित्वा नृपो तस्तौतीक्ष्णे शूले निवेशयेत्।।

58. मनु० 9/277
अंगुलीर्गृन्थिभेदस्य छेदयेत्प्रथमे गृहे।
द्वितीये हस्तचरणौ तृतीये बधमर्हति।।

59. मनु० 9/278
अग्निदान्भक्तदांश्चैव तथा शस्त्रावकाशदान्।
संनिधातृंश्च योषस्य हन्याच्चौरभिवेरैश्वरः।।

60. याज्ञ० 2/273
वन्दिग्राहास्तथा वाजिकुञ्जराणां च हारिणः।
प्रसह्यधातिनश्चैव शूलानारोपयेन्नरान्।।

61. मनु० 7/124
ये कार्मिकेभ्योऽर्थमेव गृहीयुः पापचेतसः।
तेषां सर्वस्वमादाय राजा कुर्यात्प्रवासनम्।।

62. मनु० 7/125
राजा कर्मसु युक्तानां स्त्रीणं प्रेष्यजनस्य च।
प्रत्यहं कल्पयेद्वृति स्थानं कर्मानुरूपतः।।

63. मनु० 9/231
ये नियुक्तास्तु कार्येषु हन्युः कार्याणि कार्यिणाम्।
धनोभणा पच्यमानास्तान्त्रिः स्वान्कारयेन्नृपः।।

64. मनु० 9/258 से 260 तक— उत्कोचकाश्चोषधिका..............त्रार्यलिङ्गितः।।

65. मनु० 9/275
    राज्ञः कोषापहर्तृश्च प्रतिकूलेषु च स्थितान्।
    घातयेद्विविधैर्दण्डैररीणां चोपजापकान्।।
66. कौटिल्य अर्थशास्त्र 4/2/2/27
67. मनु० 9/232
    कूटशासन कर्तृय प्रकृतीनां दूषकान्।
    स्त्रीबालक ब्राह्मणानांश्च हन्याद्द्विट्सोविन स्तथा।।
68. याज्ञ० 2/282
    क्षेत्रवेश्मवनग्राम विवीतखलदाहका:।
    राजपल्वभिगामी च दग्धव्यास्तु कटाग्निना।।
69. मनु० 9/275
    राजः कोषापहर्तृश्च ....चोपजापकान्।।
    मनु० 9/280
    कोष्ठागारायुधागारदेवतागारभेदकान्।
    हस्त्यश्चरथहर्तृंश्चरथहर्तृंश्च हन्यादेवाविचारयन्।।
70. याज्ञ० स्मृति राजधर्म प्रकरण (आचार) 9/345
    अरिर्मित्रयुदासीनोऽनन्तर स्तत्परः परः।
    क्रमशो मण्डलं चिन्त्यं सामादिभिरूपक्रमैः।।
71अ. याज्ञ० 2/22-2/303
    राजो अनिष्टप्रवक्तारं ....प्रवासयेत्।।
71ब. कौटिल्य अर्थशास्त्र 4/11/228
72. मनु० 7/13
    तस्माद्धर्मं यमिष्टेषु स व्यस्येन्नराधिपः।
    अनिष्टं चाप्यनिष्टेषु तं धर्मं न विचालयेत्।।
73. नारद 18
74. याज्ञवल्क्य स्मृति 2/303
    राजयानासनारोदुर्दण्ड उत्तमसाहसः।।

उपसंहार

निष्कर्षों का मूल्यांकन

धर्मशास्त्रों में निरूपित अपराध और दण्ड विधान के बीज वैदिक वाङ्मय से ही परिलक्षित होने लगते हैं। वैदिक विधि "ऋत" पर आधृत थी, जो सृष्टि को संचालित करने वाली नैसर्गिक विधि के रूप में विद्यमान है। "ऋत" की अवहेलना से पापबोध तथा इस पाप बोध की निष्कृति हेतु ऋत के संरक्षक वरुण अथवा अन्य देवताओं की प्रार्थना के मूल में पश्चात्ताप की भावना है, यही प्रायश्चित का पूर्व रूप है। "ऋत" की अवहेलना को अपराध माना जाने लगा, जिसका प्रत्यक्ष स्वरूप सप्तमर्यादाओं (निषेधों) के निर्धारण में देखा जा सकता है। धीरे धीरे यह सूची बढ़ी तथा परवर्ती काल में परिगणित होने वाले अठारह विवाद पदों के बीज वैदिक वाङ्मय में अन्वेषित किये जा सकते हैं।

स्मृति वैदिक मन्तव्य की व्याख्या करती है। इसे धर्मशास्त्र कहा गया है। स्मृतियाँ वेदों पर आधृत होकर भी समकालीन लोकाचार एवं सामाजिक मर्यादाओं को ग्रहण करती हैं, जिससे वे कुछ बिन्दुओं पर वेदों से मत वैभिन्य रखती हैं, इनमें श्रुति–परम्परा तथा सामाजिक रीति–रिवाज एवं आचार–व्यवहार का अच्छा समन्वय प्रतिपादित किया गया है। समस्त स्मृतियों में मनु एवं याज्ञवल्क्य स्मृति का धर्मशास्त्र साहित्य में प्रमुख स्थान रहा है, क्योंकि परवर्ती धर्मशास्त्र ग्रन्थों में इन्हीं दोनों का अनुकरण समयानुकूल संशोधन एवं परिवर्तन के साथ होता रहा है।

मनु और याज्ञवल्क्य दोनों ने ही धर्मशास्त्रीय एवं अर्थशास्त्रीय विचारधाराओं में समन्वय की चारु चेष्टा की है तथा विरोध की स्थिति में धर्मशास्त्र को ही प्रमाण माना है।

अपराध और दण्ड विधान में प्रायः यही मन्तव्य स्पष्टतः परिलक्षित होता है।

इन स्मृतिकारों ने समाज में घटित होने वाले प्रत्येक प्रकार के अपराध एवं उनके प्रति दण्ड विधान पर गम्भीरता पूर्वक विचार किया है। अतः कतिपय पाश्चात्य विद्वानों का यह आरोप सर्वथा निराधार है कि भारतीय विचारधारा मात्र धर्म और दर्शन प्रधान थी तथा राजशास्त्र जैसे लौकिक विषयों का उसमें समावेश नहीं था।

मनु और याज्ञवल्क्य दोनों स्मृतिकारों ने न केवल अपराधों की प्रकृति, प्रवृत्ति आदि का वर्णन किया है, अपितु उनके समुचित वर्गीकरण का सुनियोजित प्रयास भी किया है, जिसमें ऋणादन, निक्षेप, अस्वामि-विक्रय, सम्भूयसमुत्थान, दत्तस्यानापकर्म, वेतनादान, संविद व्यतिक्रम, क्रय-विक्रयानुशय, स्वामिपाल विवाद, सीमा-विवाद, वाक्पारुष्य, दण्डपारुष्य, स्तेय, स्त्री-संग्रहण, स्त्रीपुंधर्म, दायभाग, द्यूतसमाह्व्य आदि 18 सामाजिक विवादपदों का उल्लेख मिलता है।

इन दोनों स्मृतिकारों ने अपराध के परिमाण, अंश और मात्रा पर भी पर्याप्त ध्यान दिया है। अपराध के अनुरूप समुचित दण्ड व्यवस्था ही इनके अनुसार न्यायोचित धर्म है। यद्यपि अपराध की मापन प्रक्रिया व्यावहारिक प्रत्यक्ष साक्ष्य एवं प्रमाण पर प्रायः आधारित है, किन्तु अपराध के अनुरूप यथेष्ट दण्ड के लिए अपराध के मूल कारण और तद्नुरूप दण्ड व्यवस्था के प्रति उत्साह एवं आग्रह इन दोनों स्मृतियों में परिलक्षित होता है।

अपराध और दण्ड का सम्बन्ध मानव के स्वभाव से है, क्योंकि उसके अपराधी स्वभाव के कारण ही समाज को दण्ड-विधान की आवश्यकता हुई। मनु एवं याज्ञवल्क्य जैसे धर्मशास्त्र चिन्तकों ने इस अपराधोन्मुखता को मानव की सहज स्वाभाविक प्रवृत्ति मानकर इस समस्या का समुचित समाधान सुलभ ढंग से किया है।

मनु और याज्ञवल्क्य स्मृति में कर्मसाधना का विशेष आग्रह है। कर्मों का औचित्य अन्तःकरण की शुद्धि और आत्मिक विकास का चरमध्येय है। न्याय और दण्ड विधान कर्म के मानदण्ड पर ही केन्द्रित है। सत्कर्म एक श्रेष्ठ साधना है। और लोकजीवन की परमशक्ति और उपलब्धि है। यह कार्मिक मूल चेतना सार्वद्रेशिक, सार्वकालिक मानवीय नैतिक मूल्यों का आह्वान और स्वागत करती है। जिनसे समाज का उपकार हो और जिसमें अशेष अध्यात्मिक उच्चताओं का संस्पर्श किया जा सके।

समाज में अपराध स्वतः प्रेरित अथवा परप्रेरित होते हैं, किन्तु पाप स्वतः प्रेरित होते हैं। अपराध प्रायः बोधजनित स्थिति में होते हैं, किन्तु पाप अत्यन्त उपेक्षा अथवा प्रसादवश होते हैं। अपराध के मूल में ओजना, व्यग्रता तथा प्रतिहिंसा की प्रतिक्रिया

होती है। अपराध और पाप दोनों ही मानव की स्वाभाविक वृत्तियाँ हैं। अपराध का दण्ड राजा अथवा राज्य विधान देता है, किन्तु पाप के प्रायश्चित के लिए मनुष्य में स्वयं उत्कण्ठा एवं प्रेरणा प्रायः देती है। प्रायश्चित भी एक प्रकार का दण्ड है, जिसको पापी स्वयं ही स्वीकार कर पापफल से बचना चाहता है। पाप एक प्रकार का दोष है, किन्तु अपराध एक व्यापार है। अतः पाप का परिमार्जन प्रायश्चित से हो जाता है, जबकि अपराध के लिए दण्ड अपेक्षित है।

मनु और याज्ञवल्क्य स्मृति के आधार पर अपराधों और दण्डों का वर्गीकरण सर्वथा संभव है, क्योंकि इनकी प्रवृत्ति और प्रकृति में समरूपता होती है। पाप की सीमाएँ अपराधों की अपेक्षा अधिक विस्तृत है। मनु-स्मृति में यम नियम का पालन करना कर्तव्य माना गया है। करणीय धार्मिक कर्तव्यों से ज्ञान अथवा अज्ञानवश किये गये पापों का परिहार स्वतः हो जाता है। याज्ञवल्क्य स्मृति के अनुसार प्रायश्चित न करने पर एवं कुकर्म या दुष्कर्म करने पर पश्चात्ताप न करने से कष्टमय नरक लोकों की प्राप्ति होती है। मनु और याज्ञवल्क्य स्मृति में भारतीय न्याय एवं दण्ड व्यवस्था का उच्चकोटि का आदर्श प्रस्तुत है, जिसके अनुसार विधि के समक्ष कोई भी अपराधी अदण्ड्य नहीं है, भले ही वह ब्राह्मण अथवा राजा ही क्यों न हो। अतः प्राचीन भारतीय दण्ड व्यवस्था विश्व की अन्य दण्ड-व्यवस्थाओं से अधिक विकसित कही जा सकती है।

मनु और याज्ञवल्क्य के अनुसार अपराधों के बाह्य दण्ड चार प्रकार के होते थे। वाग्दण्ड, धिग्दण्ड, धन दण्ड तथा बधदण्ड। साधारण और कठोर डांट फटकार को क्रमशः वाग्दण्ड एवं धिग्दण्ड कहा गया है। धनदण्ड दो प्रकार का होता था— निश्चित जिसमें धन की मात्रा निर्धारित होती थी, जैसे प्रथम साहस, 250 पण, मध्यम 500 पण तथा उत्तम साहस 1000 पण, जबकि अनिश्चित धनदण्ड में अपराधी की सम्पूर्ण सम्पत्ति तक का अपहरण कर लिया जाता था। बध दण्ड मुख्यतया तीन प्रकार का होता था— पीड़न, अंगच्छेदन तथा मृत्युदण्ड। पीड़न दण्ड चार प्रकार से किया जाता था— ताड़न, दग्धन, अंकन, बन्धन या अवरोधन तथा विडम्बन एवं देश निष्कासन। बध दण्ड दो प्रकार का होता था— शुद्ध एवं मिश्र। शुद्ध बध में मात्र मृत्युदण्ड दिया जाता था। यह विचित्र और अविचित्र दो प्रकार का होता था। मिश्रबध में मृत्यु दण्ड के साथ धनदण्ड भी दिया जाता था।

दण्ड सम्बन्धी उपर्युक्त वर्गीकरण में मृत्युदण्ड कठोरतम है, जो हत्या, राजद्रोह, क्रूरतम साहस, व्यभिचार आदि घोर अपराधों के लिए दिया जाता था।

इसका विशेष सम्बन्ध राजनैतिक और सामाजिक अपराधों से है। राज्य के विघटनकारी तत्त्वों को प्रेरित करने वाले अपराधी मृत्युदण्ड के भागी होते थे। देश-निष्कासन प्रायः राजनैतिक अपराधों के लिए निर्धारित था। इसके अतिरिक्त सामाजिक वे अपराधी जिन्हें मृत्यु दण्ड जैसे कठोर दण्ड देने का विधान नहीं था, इस दण्ड के पात्र होते थे। उदाहरणार्थः ब्राह्मण प्रायः मृत्युदण्ड से सुरक्षित था अतः उसे देश निष्कासन का दण्ड दिया जाता था।

मनु एवं याज्ञवल्क्य स्मृति में सामान्यतः कारावास दण्ड की व्यापक व्यवस्था नहीं दिखाई देती, फिर भी समाज या राज्य में वे उपद्रवकारी अपराधी जो घोर अपराध करते थे, किन्तु अंगच्छेदन, दग्धन अथवा देश निष्कासन दण्डों के द्वारा दण्डित नहीं किये जा सकते थे, उनके लिए कारावास का दण्ड-विधान था। वाग्दण्ड और धिग्दण्ड सामान्य दण्ड थे। जो अपराधी ताड़न आदि से दण्डित नहीं किये जा सकते थे, उन्हें राजा कठोर बचनों से चेतावनी देकर दुष्कर्मों के लिए अपराधी को अपमान बोध कराता था।

मनु और याज्ञवल्क्य दोनों स्मृतिकारों के दण्ड विधान के मूल में जो उद्देश्य या आशय निहित है, उनमें से प्रतिशोध की भावना का शमन सर्वप्रमुख प्रयोजन हैं। उदाहरणार्थ : किसी की हत्या करने पर प्रतिशोध स्वरूप उसकी भी हत्या की भावना उत्पन्न होती है, किन्तु सभी यदि अपराधी को दण्ड देने लगे तो समाज अव्यवस्थित हो जायेगा। अतः इन दोनों धर्मशास्त्रकारों ने प्रतिकारी दण्ड विधान की स्थापना की है। इसके अतिरिक्त इन्होंने इस बात पर भी पूर्णतया ध्यान दिया है कि अपराधियों को ऐसे दण्डों को विधान किया जाये कि समाज में अपराध की पुनरावृत्ति न हो। संभवतः इसीलिए "अंगच्छेदन" की व्यवस्था दी है। जैसे यदि कोई कठोर भाषणकारी अपराधी गाली गलौच करता है तो उसकी जिह्वाच्छेदन का दण्छविधान है, जिससे पुनः वह कठोर भाषण न कर सके।

दण्डविधान के मूल में तीसरा उद्देश्य समाज में भय और आतंक उत्पन्न करना भी है, जिसके लिए इन धर्मशास्त्रकारों ने दग्धन एवं अंकन दण्ड निर्धारित किया है। यथा— व्यभिचार अपराध करने पर अपराधी के ललाट पर जलते लोहे से स्त्री योनि का चिह्न अंकित किया जाता था। समाज में सुख, शान्ति, सुव्यवस्था बनी रहे, अपराध और पनपने न पायें तथा नियमों का परिपालन किया जावे, इस उद्देश्य पूर्ति के लिए प्रायश्चित के लिए दण्ड का विधान किया गया है।

दण्ड सिद्धान्त निर्धारित करने में मनु और याज्ञवल्क्य दोनों ने यह ध्यान

अवश्य रखा है कि अपराध किन परिस्थितियों में किया गया है तथा दण्ड विधान वर्णानुक्रम के अनुरूप है या नहीं। कहीं दण्ड की व्यवस्था वर्णाश्रम को बाधित तो नहीं करती? गुरुतर अपराध के लिए कहीं न्यून दण्ड की व्यवस्था तो नहीं की गई अथवा अल्प अपराध के लिए अपेक्षाकृत कठोर दण्ड नहीं दिया गया एतदर्थ इन स्मृतियों में प्रतिष्ठित अप्रतिष्ठित, मुद्रित तथा शासित का विस्तृत विवेचन भी मिलता है। याज्ञवल्क्य ने कुल, श्रेणी,गण पूग स्थानीय न्यायालय माने हैं।

न्याय प्रशासन में सर्वोत्तम अधिकारी राजा होता था, किन्तु इन स्मृतियों में यह व्यवस्था दी गई है कि राजा यदि व्यस्ततावश विवादों को न देख सुन सके तो वह "प्राड्विवाक", के रूप में किसी विद्वान् सच्चरित्र ब्राह्मण को नियुक्त कर दे। प्राड्विवाक् का सामाजिक स्तर राजा से कम समादृत नहीं था। क्योंकि वह न्याय करने में राजा के विधान के प्रति नहीं अपितु धर्मशास्त्र के प्रति उत्तरदायी था।

मनु और याज्ञवल्क्य स्मृतियों में अभियोग का समानार्थी शब्द "व्यवहार" प्रयुक्त हुआ है, जिसके चार पाद प्रतिज्ञा, उत्तर, क्रिया और निर्णय माने गये हैं। न्यायालयों में न्यायधीश व्यवहार को सभी वादों को न्याय नियमों को पूर्ण कर निष्पक्ष निर्णय बिना लोभ (उत्कोच न लेकर) और बिना मैत्री-सम्बन्ध से प्रभावित न होकर उचित न्याय करते थे। यदि कोई न्यायधीश उत्कोच लेकर अनुचित न्याय देता था तो उसे देश निष्कासन का दण्ड विहित है। जिस व्यवहार या वाद में न्यायाधीश एकमत हों वह निःशल्य तथा उसमें मतभेद प्रकट होने पर "सशल्य" निर्णय होता है। वादी-प्रतिवादी के असन्तोष की कुछ विशेष परिस्थितियों में पुनर्न्याय की भी व्यवस्था की गयी है।

मनु और याज्ञवल्क्य का दण्ड विधान मूलतः धर्म के अधीन है। मनु ने "दशकं धर्म लक्षणम्", (मनु० 6/92) अर्थात् धर्म के दस लक्षण बताते हुए सामाजिक सदाचार के इन दस मानदण्डों की अवहेलना से अपराध की स्थिति उत्पन्न होना माना है। मनु ने स्पष्टतः चार कामज व्यसन समुदाय (मद्यपान, जुआ, स्त्रियां और शिकार) तथा तीन क्रोधज व्यसन समुदाय (दण्ड प्रयोग, कटुवचन, अर्थदूषण) को कष्टदायक माना है। (मनु० 7/50-51) याज्ञवल्क्य भी सामाजिक सुव्यवस्था के लिए निर्धारित सदाचरणों की अह्वेलना को अपराध मानते हुए उसके नियंत्रण के लिए कठोर दण्ड-विधान निधारित करते हैं।

इन दोनों स्मृतियों की दण्ड व्यवस्था में बहुसंख्यक दण्डों के स्थान पर आधुनिक भारतीय दण्ड व्यवस्था में मात्र मृत्युदण्ड, आजीवन कारावास, सम्पत्तिहरण

तथा वैरदेय (जुर्माना) का ही प्रचलन है। स्मृतिकालीन तथा आधुनिक दण्ड व्यवस्था का तुलनात्मक अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि आधुनिक दण्ड व्यवस्था अपेक्षाकृतं अधिक उदार है। स्मृतियों के कतिपय दण्ड-ताड़न, विडम्बन, अंगच्छेदन, दग्धन, अंकन, विचित्रबध और देश-निष्कासन आज पूर्णतया समाप्त कर दिये गये हैं। मृत्युदण्ड भी आज सुदीर्घ न्यायिक प्रक्रिया पूर्ति के पश्चात् अपरिहार्य स्थिति में दिया जाता है। अधिकांशतः अपराधी को कारावास में रखकर सुधारने का प्रयास किया जाता है। इस प्रकार धर्मशास्त्रीय दण्ड व्यवस्था जहाँ प्रतिकारात्मक कठोर थी, वहीं आज की दण्ड व्यवस्था सुधारात्मक और उदार अधिक है। अपराधी के प्रति बढ़ती उदारता और सहानुभूति आज अपराधवृत्ति को प्रोत्साहन दे रही है। अतः इस पर पुनर्विचार की आवश्यकता है।

वस्तुतः स्मृतिकालीन प्राचीन और अर्वाचीन दण्ड-विधान में शताब्दियों के अन्तराल से देशकालजनित में अन्तर होना स्वाभाविक ही है, किन्तु आधुनिक अपराधशास्त्र एवं दण्ड संहिताएँ देशकाल के अनुरूप परिवर्तित होकर भी मूलतः मनु और याज्ञवल्क्य जैसे प्रमुख धर्मशास्त्रियों की न्याय चेतना से जुड़ी हुई हैं।

मनु एवं याज्ञवल्क्य इन दोनों महान् धर्मशास्त्रियों ने पूर्व विवेचित सभी अपराधों से समाज को सर्वथा अप्रदूषित रखने और सदाचारी बनाने की व्यापक दिशा में दण्ड विधान की समुचित व्यवस्था की है। समाज के प्रत्येक वर्ग के प्रत्येक व्यक्ति के व्यवहार और आचरण में शुचिता, नैतिकता तथा नियमानुकूल धार्मिकता का पूर्ण समावेश करना इन दोनों धर्मशास्त्रियों का प्रमुख ध्येय एवं पावन अभिप्रत है। हतः समस्त सामाजिक अपराधों के उन्मूलन और नियन्त्रण की दृष्टि से मनु और याज्ञवल्क्य का दण्ड विधान सर्वथा समुचित, समीचीन एवं वर्तमान न्याय व्यवस्था के लिए भी दिग्बोधक सिद्ध होता है।

परिशिष्ट

सहायक ग्रन्थ-सूची

(अ) आधार ग्रन्थ

अथर्ववेद (सायण-भाष्य सहित) सं० विश्वबन्धु, वि०वै०शो०सं० होशियारपुर, 1962

अथर्ववेद संहिता : श्रीपाद दामोदर सातवलेकर, पारडी (सूरत) प्रथम सं०

अष्टाविंशत्युपनिषदः सं० स्वामी द्वारकादास शास्त्री, प्रा०भा०प्र०, वाराणसी, 1965

आपस्तम्ब धर्मसूत्र : सं० डॉ० उमेशचन्द्र पाण्डेय, चौखम्बा सं० वि० वाराणसी, 1983

ऋग्वेदसंहिता : (सायण भाष्य) वैदिक संशोधन मंडल, पूना, प्रथम सं०

ऋग्वेदसंहिता : सं० श्री राम शर्मा, संस्कृति संस्थान, बरेली, प्रथम सं०

ऐतरेय ब्राह्मण : (सायण भाष्य), आनन्दाश्रम, पूना, 1931

कौटिलीय अर्थशास्त्रम् : वाचस्पति गैरोला, चौखम्बा, वाराणसी, 1962

कौटिलीय अर्थशास्त्रम् : सं० पं० गुरुप्रसाद शास्त्री, चौ० सं० सी०, वाराणसी, प्रथम सं०

गौतमधर्मसूत्राणि : सं० उमेशचन्द्र पाण्डेय, चौ० सं० सं०, वाराणसी, 1986

दण्डविवेक : (वर्धमानकृत), गायकवाड़ ओ० सी०, बड़ौदा, 1931

धर्मशास्त्रसंग्रह : खेमराज श्री कृष्णदास, बम्बई, 1913

नारद-स्मृति : सं० जूलियस जॉली एसियाटिक सो०, कलकत्ता, 1885

निरुक्तम् (यास्क कृत) : मेहर चन्द लच्छमनदास पब्लि०, दिल्ली, 1985

पाराशर स्मृति : सं० शिवदत्त मिश्र शास्त्री, ठाकुर दास व सन्स बुक्सेलर, वाराणसी, 1969

बृहदारण्यकोपनिषद् : गीता प्रेस गोरखपुर, 1969

बौधायन धर्मसूत्र (गोविन्द स्वामी भाष्य) : सं० उमेशचन्द्र पाण्डेय, चौ० सं० सी०, वाराणसी, 1983

मनुस्मृति (कुल्लूक भट्ट टीका सहित) सं० हरगोविन्द शास्त्री, चौ० सं० सी०, वाराणसी, 1970
मनुस्मृति : सं० ए० एन० माण्डलिक, बम्बई, प्रथम सं०
मनुस्मृति : पं० जनार्दन झा, हिन्दी पु० एजेन्सी, कलकत्ता, 1959
मनुस्मृति : सं० डॉ० गंगानाथ झा, इलाहाबाद, प्रथम सं०
पराशरस्मृति : बम्बई संस्कृत सी०, बम्बई, प्रथम सं०
मनुस्मृति (षष्ठ अध्याय) : सम्पादक, डॉ० कृष्णकान्त त्रिपाठी, कानपुर, 1990
भविष्य पुराणम् : आनन्दाश्रम, पूना (महाराष्ट्र), प्रथम संस्करण
महाभारतम् (भाग 1-6) : गीता प्रेस, गोरखपुर, प्रथम सं०
यजुर्वेद संहिता : सं० पं० दामोदर सातवलेकर, पारडी, प्रथम सं०
याज्ञवल्क्य-स्मृति : (दाय भाग प्रकरणम्) सं० डॉ० कैलाशनाथ द्विवेदी, मेरठ, 1966
याज्ञवल्क्य-स्मृति : सं० डॉ० उमेशचन्द्र पाण्डेय, चौ० सं० सी०, वाराणसी, 1983
याज्ञवल्क्य-स्मृति : (मिताक्षरा, बालम्भट्टी अपरार्क टीका), निर्णय सागर प्रेस, बम्बई, 1949
याज्ञवल्क्य-स्मृति : (अपरार्क टीका), आनन्दाश्रम, पूना, भाग— 1, 2, 1904
विष्णु-स्मृति : (बैजयन्ती टीका सहित), जुलियस जॉली, चौ० सं० सी०, वाराणसी, 1962
वीरमित्रोदय (मित्रमिश्र) : चौ० प्रकाशन, वाराणसी, 1914, 1916
शुक्रनीति : सं० ब्रह्मशंकर मिश्र, चौ० सं० सी०, वाराणसी, 1968
स्मृतिचन्द्रिका (भाग 1-3) : देवण महोपाध्याय, नाग प्र०, दिल्ली, 1988
स्मृतिसंदर्भ (भाग 1-6) : नाग प्रकाशन, दिल्ली, 1988
बीस स्मृतियाँ (भाग 1 तथा सं० 2) सं० श्रीराम शर्मा, बरेली
वशिष्ठ-धर्मसूत्र : बॉम्बे संस्कृत एण्ड प्राकृत सीरीज, बम्बई, प्रथम सं०
विष्णु-धर्मसूत्र : बॉम्बे संस्कृत एण्ड प्राकृत सीरीज, बम्बई, प्रथम सं०
बृहस्पति-स्मृति : (जॉली द्वारा अनुदित), सै०बु०ई० वाल्यूम, 33
बृहस्पति-स्मृति : गायकवाड़ औरियण्टल सी०, बड़ौदा, प्रथम सं०
कात्यायन-स्मृति : सं० डॉ० पी०वी० काणे, पूना, 1933
स्मृतीनां समुच्चय : आनन्दाश्रम संस्कृत सीरीज, पूना, प्रथम सं०
बाल्मीकि रामायणम् : गीता प्रेस, गोरखपुर, (सं० रामनारायण पाण्डेय शास्त्री, गोरखपुर, प्रथम सं०
रघुवंश महाकाव्यम् : सं० डॉ० रेवाप्रसाद द्विवेदी, बी०एच०यू० संस्करण, 1978

मृच्छकटिकम् (शूद्रककृत) : डॉ० कृष्णकान्त त्रिपाठी, कानपुर, 1989
विवाद-रत्नाकर : (शंख कृत) निर्णय सागर, बम्बई, प्रथम सं०
यशस्तिलकचम्पू (सोमदेव कृत) : चौ० संस्कृत सी०, वाराणसी, प्रथम सं०
राजतरंगिणी (कल्हण कृत) : सं० रघुनाथ सिंह, चौ० सं० सी०, वाराणसी
व्यास-स्मृति : गायकवाड़ ओरियण्टल सीरीज, बड़ौदा, प्रथम संस्करण।

(ब) सन्दर्भ ग्रन्थ

अथर्ववेद का सांस्कृतिक अध्ययन : डॉ० कपिलदेव द्विवेदी, वाराणसी, 1988
अपराध और दण्डशास्त्र : कौशल कुमार राय, चौ० वि० वाराणसी, 1965
अपराध एवं आपराधिक न्याय प्रशासन : प्रो० एन०वी० परांजपे, भोपाल, 1971
अपराध एवं दण्ड (स्मृतियों एवं धर्मसूत्रों के परिप्रेक्ष्य में): डॉ० प्रतिभा त्रिपाठी, राका प्रकाशन, इलाहाबाद, 1993
धर्मशास्त्र और इतिहास : डॉ० पी०वी० काणे (अनु० अर्जुन चौबे काश्यप (भाग 1-5) हिन्दी समिति, लखनऊ, 1980, 1984
प्रमुख स्मृतियों का अध्ययन : लक्ष्मीदत्त ठाकुर, लखनऊ, 1971
धर्मशास्त्रों का समाजदर्शन : डॉ० गीतारानी अग्रवाल, वाराणसी, 1983
प्राचीन भारत की दण्ड व्यवस्था : डॉ० वाचस्पति शर्मा त्रिपाठी, नाग प्रका०, दिल्ली, 1989
प्राचीन भारत में अपराध और दण्ड : डॉ० हरिहरनाथ त्रिपाठी, चौ० वि० म० वाराणसी, 1964
प्राचीन भारत में अपराध और दण्ड : डॉ० साधना शुक्ला, प्र० प्र० कानपुर, 1987
प्राचीन भारतीय स्मृतिकार और नारी : डॉ० अच्युतानन्द विल्डियाल तथा अन्य, वाराणसी, 1974
मनु का राजधर्म : श्याम लाल पाण्डेय, लखनऊ
मनु की समाज व्यवस्था : सत्यमित्र दुबे, मैक० इ० लि०, दिल्ली, 1981
हिन्दू विधि एवं स्रोत : डॉ० वेदप्रकाश उपाध्याय, इण्टरनेशनल एजेंसी, इलाहाबाद, 1986
अपराध, अपराधी और अभियुक्त : डॉ० परिपूर्णानन्द वर्मा, आगरा, 1963
अपराध शास्त्र और सामाजिक विघटन : वात्सायन, मेरठ, 1974
पतन की परिभाषा : डॉ० परिपूर्णानन्द वर्मा, लखनऊ, 1956
धर्मशास्त्रीय निबन्धावलि : डॉ० महेश ठाकुर
प्राचीन भारत में राज्य एवं न्याय पालिका : डॉ० हरिहरनाथ त्रिपाठी, दिल्ली, 1965

प्राचीन भारतीय शासन पद्धति : अनन्त सदाशिव अल्तेकर, इलाहाबाद, 1976
प्राचीन भारतीय साहित्य का इतिहास : एम० विण्टरनिट्ज़, दिल्ली, 1975
हिन्दू राजतंत्र : काशी प्रसाद जायसवाल, काशी ना० प्र०, काशी, 1955
हिन्दू संस्कार : राजवली पाण्डेय, चौ० वि० म०, वाराणसी, 1966

Manu and Yajnavalkya, K.p. Jayaswal, Delhi, I edition.

Manu Dharm Shastra, Kewal Motiwani, Ist edition.

Code Procedure in Ancient India, Mahesh Kumar Sharma.

International Law and Custom in Ancient India, P.N. Benerjee, Calcutta.

Studies in Ancient Indian Law and Justice, R.K. Chaudhury, Patna, Ist edition.

Crime and Punishment in Ancient India, Das and Shukla, Delhi, I edition.

The Panal Law of India Vol. I, Shri H.S. Gaur, Allahabad, 1966.

Hindu Law in Its Sources, Ganganath Jha, Allahabad, 1933.

International Law and Custom in Ancient India, R.D. Benerjee, Bombay, I ed.

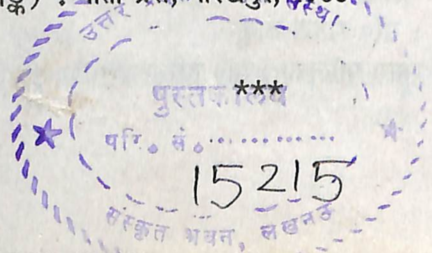
कोश ग्रन्थ

अमरकोश (अमरसिंह) : सं० पं० शिवदत्त शर्मा, दिल्ली, 1985
धर्मकोश (व्यवहार काण्ड) : सं० लक्ष्मण शास्त्री, प्र० पा० म० सतारा, 1937-41
हिन्दूधर्मकोश : डॉ० राजबली पाण्डेय, उ० प्र० हि० सं० लखनऊ 1988
संस्कृत वाङ्मयकोश (भाग 1-2) : डॉ० श्री०वा० वर्णेकर, कलकत्ता, 1988

पत्र-पत्रिकाएँ

सागरिका : सं० रामजी उपाध्याय, वाराणसी (धर्म-समाज-दर्शन-विशेषांक)
डॉ० गंगानाथ झा, केन्द्रीय सं० विद्यापीठ शोध पत्रिका : सं० डॉ० माया मालवीय, इलाहाबाद।
शोध-प्रभा : (लाल बहादुर शास्त्री केन्द्र० सं० वि० शोधपत्रिका) : डॉ० मण्डन मिश्र, दिल्ली।
दूधाधारी वचनामृत : डॉ० गिरीश चन्द्र त्रिपाठी, हरिद्वार (उ०प्र०)
कल्याण (धर्माङ्क) : गीता प्रेस, गोरखपुर, 1966

***



संस्कृत ग्रन्थागार

46, संस्कृत नगर, रोहिणी सेक्टर-14,
दिल्ली-110085
दूरभाष : 7862183